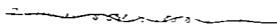


अनुक्रमणिका.

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
१ जीवविचार.	१	१६ तपकुलक.	१५७
२ नवतत्त्व.	१३	१७ ज्ञावकुलक.	१६१
३ दंडक.	३७	१८ उपदेशरत्नकोश.	१६५
४ संग्रहणी.	४४	१९ शाश्वताजिन नामादि	
५ चैत्यवंदन ज्ञाप्य.	५१	संख्या स्तवन.	१७०
६ गुरुवंदन ज्ञाप्य.	६७	२० त्रणलोकना चैत्यविं	
७ पञ्चस्काण ज्ञाप्य.	७८	संख्या यंत्र.	१७६
८ इन्द्रियपराजयशतक.	९२	२१ शत्रुंजय लघुकल्प.	१७९
९ वैराग्यशतक.	११४	२२ रत्नाकरपचीशी.	१८५
१० अन्नव्यकुलक.	१३७	२३ समाधिगतक.	१९२
११ पुण्यकुलक.	१३९	२४ सज्जनचित्तवृत्त.	२१७
१२ पुण्यपापकुलक.	१४१	२५ श्रीवीरजीन स्तवन.	२२७
१३ गौतमकुलक.	१४४	२६ श्रीमंथरस्वामोनुंस्तवन	२२९
१४ दानकुलक.	१४९	२७ गुरुप्रदक्षिणा.	२३१
१५ शीलकुलक.	१५३	२८ जीवोनुं शास्तिकुलक.	२३२



॥ श्री महावीरस्वामीने नमः ।

॥ प्रकरणमाला ॥

॥ जीवविचार प्रकरण पहिलें ॥

ग्रंथकर्त्ता मंगळाचरणपूर्वक प्रयोजन सूचने वे.

जुवणपईवं वीरं, नमिजाण् जणामि अबुह बोहत्तं ॥
जीवसरुवं किंचिवि, जह् जणियं पुबसूरीहिं ॥ १ ॥

शब्दार्थ—त्रणजुवनमां दीवा समान श्री वीरप्रजुने नमस्कार करीने जेम पूर्वना आचायोंए कह्युं वे तेम अज्ञानि जीवोने बोध थवाने अर्थे कांइक पण जीवतुं स्वरूप हुं कहुं वुं. ॥ १ ॥

हवे जीवना भेदो कहे छे.

जीवा मुत्ता संसा-रिणो य तस थावरा य संसारी ॥
पुढवि जल जलण वाऊवाणस्सई थावरा नेअ्रा ॥१॥

शब्दार्थ—जीवो वे प्रकारना वे एक मुक्तिना भने बीजा सं-सारी, संसारी जीवो वे प्रकारनां एक त्रम अने बीजा स्थावर, पृथ्वीकाय, अष्काय, तेजकाय, वातवाय अने वनस्पतिकाय ए पांच स्थावर जाणवा. ॥ १ ॥

हवे पृथ्वीकायना भेदो कहे छे

फलिहमणिरयाणविहुम ॥ हिंगुलहरियालमणामिल्लरसिंदा
कणगाइधान् सेंढी, वन्नि अरणेट्टय पळेवा ॥ ३ ॥

(२)

अप्रय तूरी कसं, मद्यो पाहाणजाइउ णेगा ॥

सोवीरंजण लूणा-इ पुढविजेआइ इच्चाइ ॥ ४ ॥

शब्दार्थ-स्फटिक, मणि, रत्न, प्रवालां, हिंगलो, हरताल, मणतिल, पारो, सोनादि सात धातुउ, खडी, रमजी, पापा-
णनी साथे मलेली धोली माटी, पारेवो पापाण, पांच वर्णनो अ-
वरख, तेजंतुरी, खारीमाटी, माटी, अनेक पापाणनी जातियो,
सुरमो अने सिंघव आदि, इत्यादि पृथ्वीकायना जेदो जाणवा. ४

इहे अप्कायना भेदो कहे छे.

जामंतरिकमुदगं, उसा हिम करग हरितणू महिआ ॥

हुंति घाणोदहिमाई, जेया णेगा य आउस्स ॥ ५ ॥

शब्दार्थ-पृथ्वीनुं पाणि, आकाशनुं पाणि, उसनुं पाणि, हि-
मनुं पाणि, करानुं पाणि, लीला घास उपरनुं पाणि, धुवरनुं पाणि
अने घनोदधिनुं पाणि, इत्यादि अप्कायना अनेक जेदो होय छे. ५

इहे अधिकाय जीवोना भेदो कहे छे.

इंगालजालमुम्मुर-उक्कासणिकाणगविज्जुमाईआ ॥

अगणिजिआणं जेआ, नायघा निउणवुधौण ॥ ६ ॥

शब्दार्थ-अंगारनो अग्नि, जालनो अग्नि, जरसादनो अग्नि,
उक्कासनो अग्नि, वज्जनो अग्नि, कणियानो अग्नि अने वि-
ज्जुनो अग्नि, इत्यादि अग्निकाय (तत्रकाय) जीवोना जेदो तृ-
ष्टम बुद्धिो जाणवा, ॥ ६ ॥

इहे वायुकायना भेदो कहे छे

उप्लामगउद्वल्लिया, मंमल्लिमदमुदगुंजयाया य ॥

घाणुदणुवापाइया, जेया मज्जु याउकायम्य ॥ ७ ॥

शब्दार्थ-उप्लामकवायु, उद्वल्लितवायु, मंदल्लिवायु, मदा-
वायु, शुद्धवायु, गुंजायु करतो वायु अने घनवायु तथा तनवायु

विगेरे चायुकायना जेदो निश्चे जाणवा. ॥ ० ॥

इवे वनस्पति कायना भेदो को छे.

साधारणपत्तेया, वाणसइजीवा इहा सुए जणिआ ॥

जेसिमणांताणं तणु, एगा साधारणा तेक ॥ ७ ॥

शब्दार्थे—साधारण अने प्रत्येक एवा वनस्पतिकाय जीवोना वे जेदो मूत्रमां कत्यावे. तेमां जे अनंत जीवोनुं एक शरीर होय ते साधारण जाणवा. ॥ ७ ॥

इवे साधारण वनस्पतिकायना भेदो को छे.

कंदा अंकुरकिमल यपागगा सेवाल जूमिफोमा य ॥

अध्रतियगङ्गामो—त्र वनुला थंगपल्लंका ॥ ९ ॥

शब्दार्थे—मूरण विगेरे सर्व जातिनां कंद, अंकुरा, कुंपलो, पांचवर्णनी लोलफुल, सेवाल, घोलाडोना टोप अने थण जातनुं आड्ड, गाजर, मोथ, यमुलो, धेक, पल्लंकारी जार्जी. ॥ ९ ॥

कोमलफलं च सधं. गूढसिराइ सिगाइपनाइ ॥

थोदरिकुंआग्निगुगुलि—गलोयपमुहा य विद्वरुता १०

शब्दार्थे—गली सर्व जातिनां कोमल फल, जेनो कलमलो, नलो, सांधो प्रगट न देखातो होय ते, शण विगेरेनां पांश्टां, सर्व जातनो थोर, गुगल, गली ए विगेरे जे वेया बतां फरी उगे ते. १०

इचाइगो आगोंगे, एवंति जेया छ्राणंतकायाणं ॥

तेसिं परिजाणाणं, लरकाणम्यं सुए जणियं ॥११॥

शब्दार्थे—इत्यादि अनंतराय जीवोना अनेक जेदो होय वे. तेमने जाणवा भांटे आ नीच लगेतुं लहाण मूत्रमां कर्तुं वे. ११

इवे अंतर्गत वनस्पति कायना भेदो को छे.

गूढमिरसंधिपणं, समजंगमहीरुगं च विद्वरुतं ॥

साधारणां शरीरं, नखियनीयं च पत्तेयं ॥ १३ ॥

(४)

शब्दार्थ—जेनां कणसला, सांधाके गांथ्यो नदेखाती होय, ज्ञागी नाखवाथी जेना सरखा वे ज्ञाग श्रता होय, जे रेसा वि-
नाना होय, तथा जे ठेदीने वावीएतो पण फरोने जगे ते साधा-
रण वनस्पति कायनां शरीर कहेवाय अने तेनाथी विपरीत
लक्षणवाली वनस्पति होय ते प्रत्येक जाणवी. ॥ १२ ॥

हवे प्रत्येक वनस्पतिकायनुं लक्षण कहे छे.

एगशरीरे एगो, जीवो जेसिं तु ते य पत्तेया ॥

फलफूलठल्लिकछा, मूलगपत्ताणि वीयाणि ॥ १३ ॥

शब्दार्थ—वली जेमनां एक शरीरने विषे एक जीव होय ते
प्रत्येक जाणवा. ते प्रत्येक वनस्पति कायना सात जेदठे. सर्व
जातिनां फल, फुल, ठाल, लाकडां, मूल, पांडडां अने बीज ए सर्व
प्रत्येक वनस्पतिकाय जाणवा. ॥ १३ ॥

हवे पांच स्थावर सूक्ष्मनुं वर्णन करे छे.

पत्तेयतरु मुत्तं, पंचवि पुढवाइणो सयललोण ॥

सुहुमा हवंति नियमा, अंतमुहुत्ताञ्च अहिस्सा ॥१४॥

शब्दार्थ—प्रत्येक वनस्पतिकायने मूकीने चौद राजलोकने
विषे सूक्ष्म एवा पांचे पृथ्वीकायादि निम्हे अंतमुहूर्तनां आयुष्य-
वाला अने अदृश्य (चर्मचक्षुथी न देखी शकाय तेवा) होयठे.

हवे ये इंद्रिय जीवोना भेद कहे छे.

संखकवद्मय गंडुल—जलोपचंदणगअलसलहगाई ॥

मेहरिकिमिपूअरगा, वेइंदिय माइवाहाई ॥ १५ ॥

शब्दार्थ—संख, कोडा, गंमोला, जलो, चंदनक (अरिया)
अलसिया, सालीया, मेर, (लाकमाना कोमा) करमीया, पोरा
अने चूडेल विगेरे वैदिय जीवो जाणवा. ॥ १५ ॥

(५)

इवे तैन्द्रिय जीवोना भेद कहे छे.

गोमोमंकाणजूआ, पिपीळि उदेहिया य मकोमा ॥

इन्द्रियघयमिन्द्रोत्त, सावय गोगोमजाईत्त ॥ १६ ॥

गढहय चोरकोमा, गोमयकीमा य धन्नकीमा य,

कुंथुगुवालियइन्द्रिया. तेइ दिय इंदगोवाई ॥ १७ ॥

शब्दार्थ—कानखजूरा, मांकड, जू, कीमोयो, उघइ, वली मंकोमा, एलो, घोमेलो, सवा, गोगोमानी जातियो. गधैया, चोरकोडा, ढाणनाकोडा, धान्यनाकीडा, कुंथुआ, गोपालिका, एलो अने इंडगोप ए मयें तेरिंदिय जीवो जाणवा. ॥ १६-१७ ॥

इवे चउरिंदिय जीवोना भेद कहे छे.

चउरिंदिया य विच्छू, ढिंकुणजमरा य जमरिया तिमा

भन्धियमंसा मसगा, कंसारी कविलमोलाई ॥ १८ ॥

शब्दार्थ—वली विंछी, बगाई, जमरा तेमज जमरी, तीम, मांखी, डांस, मछर, कंसारी, कपिल अने खममाकनी ए चउरिंदिय जीवो जाणवा. ॥ १८ ॥

इवे पंचेन्द्रिय जीवोना भेद कहे छे.

पंचिंदिया य चउहा, नारयतिरिया मनुस्सदेवा य ॥

नेरइया सत्तविहा, नायवा पुढविजेण्णं ॥ १९ ॥

शब्दार्थ—वली पंचेन्द्रिय जीवो चार प्रकारना ठे. तेमा १ नारकी, २ तिर्यंच, ३ मनुष्य अने ४ देवता. तेमां नारकी जीवो रत्नप्रजादि पृथ्वीना जेदयी सात प्रकारना जाणवा. ॥ १९ ॥

इवे पंचेन्द्रिय तिर्यचना भेद कहे छे.

जलपरथलपरखपरा, तिविहा पंचेदिया तिरिस्का य ॥

सुसुमारमञ्जकञ्जव—गाहा मगराइ जलचारी ॥ २० ॥

शब्दार्थ—वली तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवो अण प्रकारना ठे ते

शब्दार्थ—सातमी तमस्तमःप्रज्ञा पृथ्वी आदिकमां रहेनारा नारको जीवो पाचसो धनुष्यनां शरीर प्रमाणवाला ठे. त्यार पगी अर्द्ध अर्द्ध उग शरीर प्रमाणवाला जीवो रत्नप्रज्ञा नामनी प-हेलो नरक सुधी जाणवा. ॥ २९ ॥

जोयणसहस्समाणा, मन्ना उरगा य गप्राया हुंति ॥

धाणुअपुहुत्तं पखिखसु, जुयचारी गाउअपुहुत्तं ॥३०॥

शब्दार्थ—गर्जज एवा मत्स्य अने सर्पादि उरपरि सर्प एक हजार जोजन शरीर प्रमाणवाला होय ठे. पक्षीयोनां शरीरनुं प्रमाण वे धनुष्यथो मांडीने नव धनुष्य सुधीनुं होय ठे अने नो-लीया विगेरे जुजपरि सर्पनुं शरीर प्रमाण वे गाउथो नव गाउ सुधीनुं होय ठे.

खयरा धाणुअपुहुत्तं, भुयगा उरगा य जोयणपुहुत्तं ॥

गाउयपुहुत्तमिता, समुच्चिमा चउपया जणिया ॥३१॥

शब्दार्थ—समुच्चिम एवा खेचर (पक्षीयो)नां शरीरनुं प्र-माण वे धनुष्यथी मांडीने नव धनुष्य सुधीनुं होय ठे अने सं-र्पादि उरपरि सर्पनां शरीरनुं प्रमाण वे जोजनथी मांडीने नव जोजन सुधीनुं होय ठे. समुच्चिम हाथी विगेरे चार पगवाला जीवोनां शरीरनुं प्रमाण वे गाउथी नवगाउ सुधीनुं कह्युं ठे. ३१

उच्चैव गाउआइं, चउप्पया गप्राया मुण्येयवा ॥

कोसतिगं च मणुसा, उक्कोससरीरमाणेणं ॥३२॥

शब्दार्थ—गर्जज चार पगवाला हाथी विगेरे जीवो ठ गा-उनां शरीर प्रमाणवाला मनाय ठे अने मनुष्यो उक्कष्ट शरीरना प्रमाणे करीने त्रण गाउ होय ठे. ॥ ३२ ॥

ईसाणंतसुराणं, रयणीउ सत्त हुंति उच्चतं ॥

शब्दार्थ-त्रीजा ईशान देवलोकनां श्रंत सुधीना ज्वनपति,
यंतर, ज्योतिषी देवोनां शरीरनी उंचाइ सात हाथनी ठे. न्यार
गी वे, वे, वे, चार, नव ग्रैवेयक श्रने पांच श्रनुत्तर ए देवलो-
केमां श्रनुक्रमे एक एक हाथ शरीर प्रमाण उठुं जाणवुं. ॥३३॥
एवे छ गाथावटे सवें जीवांनुं आयुष्य करे ठे.

अवीसा पुढवीण, सत्तय आउस्स तिन्नि वाउस्स ॥
ससहसा दस तरु-गणाण तेउ त्तिरित्तान ॥३४॥

शब्दार्थ-पृथ्वीकायनुं वावीस हजार वर्षनुं, अष्कायनुं सात
वर्षनुं, वायुकायनुं त्रण हजार वर्षनुं, प्रत्येक वनस्पतिकायनुं
हजार वर्षनुं श्रने तेउकायनुं त्रण अदोरात्रनुं उठुए आयुष्य
ठे ए सवें जीवांनुं जघन्यथी श्रंतमुंहूर्त्तनुं आयुष्य होय ठे.
गणि वारसाऊ, वेइंदियाणां तेइंदियाणां तु ॥

गणापन्नदिगाइं, चत्तरिंदीणां तु ठम्मासं ॥३५॥
शब्दार्थ-चंडिय जीवोनुं आयुष्य वार वर्षनुं, तेरिंदिय जी-
गणपचास दिवसनुं श्रने चत्तरिंदिय जीवोनुं ठ मासनुं
श्रा सवें उठुए आयुष्य जाणवुं श्रने ए सवें जीवांनुं ज-
श्रंतमुंहूर्त्तनुं आयुष्य जाणवुं. ॥ ३५ ॥

इयाण विइं, उक्कोसा सागराणि तित्तीसं ॥
तिरियमाणुस्सा, तिन्नियपल्लियोवमा हुंति ॥३६॥

शब्दार्थ-देवता श्रने नारकीयोनी उठुए आयुष्यस्थिति
गरोपमनी होय ठे श्रने चार पगवाला तिर्येच तर्था म-
उठुए आयुष्यस्थिति त्रण पड्योपमनी होय ठे. ॥३६॥
रनुपगाणां, परमाऊ होइ पुढकोमीउ ॥

गण जणिउ, श्रसंखजागो श्र पल्लियन्म

शब्दार्थ—सुसुमार विंगेर जलचर, सर्प विंगेर उरपरिस
 अने नोलीया विंगेरे जुजपरिसर्प ए सर्वेनुं उत्कृष्ट आयुष्य ए
 पूर्वकोडीनुं होयवे. तेमज पक्षीयोनुं उत्कृष्ट आयुष्य पद्मयोपम
 असंख्यातमां जाग जेटलुं काणुं वे. ॥ ३७ ॥

सद्ये सुहुमा साहा—शाया य संमुच्छिमा मनुस्सा य ॥

उकोसजहन्नेगां, अंतमुहुत्तं चिय जियंति ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ—पृथ्वीकायादि पांचे सूक्ष्म तथा साधारण जीव
 तेमज समृद्धिम मनुष्यो उत्कृष्ट अने जघन्यथी एक अंतमुहुत्तं
 निश्चे जीवे वे. ॥ ३८ ॥

उगाहणात्तमागां, एवं संखेवन्न समस्कायं ॥

जे पुगा इन्न विसेसा, विसेसमुत्तान्न तेनेया ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ—एवी रीते अवाहणा अने आयुष्यनुं मान संके-
 पत्री काणुं. वली एमां जे कांइ विशेष जाणवानुं होय ते विशेष
 सूत्रथी जाणो लेवुं. ॥ ३९ ॥

इये पे गाथाथी श्रीनुं स्वकायस्थितिद्वार कहं छे.

एगिंदिया य सद्ये, असंखन्नस्सपिणां सकायंमि ॥

उववज्जंति चयंति अ, अणंतकाया अणांतान्न ॥४०॥

शब्दार्थ—वली सर्वे एकेंद्रिय जीवो पोतानी कायामां असं-
 ख्य उत्सर्पिणी अवसर्पिणी फाल सुधी उत्पन्न थाय वे अने चवे
 वे तेमज अनंतकाय जीवो पण अनंतीचार पोतानी कायामां
 उत्पन्न थाय वे अने चवे वे. ॥ ४० ॥

संस्किज्जासमा विगला, सत्तञ्जवा प्पगिंदिति रिमणुया ॥

उववज्जंति सकाये, नारपदेवा अ नो चेव ॥४१॥

शब्दार्थ—चिगेंद्रिय जीवो संख्याता वर्ष सुधी लागट पो-

१ चेंद्रिय, तेंद्रिय, पगेंद्रिय.

नी कायामां उत्पन्न पाप. पंचेंद्रिय, तिर्यंच अने मनुष्यो सात
ठ जव तेज गतिमां लागट उत्पन्न पाप अने नारकी तथा
ता तेज जवमां लागट वे वखत पण उत्पन्न थता नथी. ॥४१॥

इहा जियाण पाणा, इंदि उसासाज जोग बलरूवा ॥
एगिदिणसु चउरो, विगलेसु ठसतअठेव ॥४२॥

शब्दार्थ-जीवोने इंडिय, श्वातोच्छ्वास्त, आयुष्य, मन, वचन
ने काया ए त्रण जोगनां त्रण बल मलो दश प्राणो होय ठे.
मां एकेइयने चार, तथा विगलेइयने ठ, सात अने आठ प्राण
नुक्रमे होय ठे. ॥ ४२ ॥

असन्निसन्निसंचि-दिणसु नवदश कमेण बोधवा ॥
तेहिं सह विप्यजगो, जीवाणं जणए मराणं ॥४३॥

शब्दार्थ-असंज्ञो पंचेंद्रिय अने संज्ञो पंचेंद्रिय जीवोने विपे
नुक्रमे नव अने दश प्राणो होय ठे. ते प्राणोनी साथे जे विपोग
या ते जीवोनुं मरण केहवाय ठे. ॥ ४३ ॥

एवं अणोरपारे. संसारे सायरंमि जीमंमि ॥

पतो अणंतखुतो, जीवेहिं अपत्तधम्मेहिं ॥४४॥

शब्दार्थ-धर्मने नहि पामेला जीवोए ए प्रमाणे अपार अने
प्रपंकर एवा संसार समुद्रमां अनंतीवार जन्ममरण प्राप्त करथुं.
तह चउरासी लस्का, संखा जोणोण होइ जीवाणं ॥
पुढवाइण चउएहं, पत्तेयं सत्तसत्तेव ॥४५॥

शब्दार्थ-तेवीज रीते जीवोनी योनीनी संख्या चोरासी
खाख ठे. तेमां पृथ्वी आदि चार निकायना दरेक जीवोनी योनी-
नी संख्या सात सात लाखनी ठे. ॥ ४५ ॥

दस पत्तेयतरूणां, चउदसलस्का हवंति इपरेसु ॥

विगलिदिणसु दोदो, चउरो पंचिदित्तिरिपाणं ॥४६॥

काशास्तिकाय जाणवो. पुज्जलो चार प्रकारनावे. ते संघ, वे
प्रदेश तथा परमाणुं निभयथी जाणवा. १०

पुज्जल्लुं लक्षण करे छं.

(अनुष्टुप् वृत्तम्)

मदंधयार उज्जोअ, पजा वाया तवेहि आ ॥

यत्तमंधय्या फासा, पुग्गलाणां तु लस्काणं ॥ ११

अर्थ-मदंध, अंधकार रत्नादिकनो प्रकाश, अंध विगे
कीने, वाया तडहो अथवा गणो, गंध, रस अने स्पर्श ए वली
इतरेणुं सरुणवे. ॥ ११ ॥

इं एक गृहर्णं सु रस्य करे छं

गृणा कोदि मनगच्छि-अस्का सत्तहुत्तरी सलस्सा य ॥

शोपगया सोल्लहिया, आयाल्लिया इगमुहत्तम्मि ॥ १२

अर्थ-गृहकोड, गदगठ्याण, गच्छांतरद्वार अने य
इतरेणुं सरुणवे. ॥ १२ ॥

नेम वाचने वाणी गिते करे छं

विद्विग्गय्या मन, यगयाणि तेहत्तरे च उम्मासा ॥

एण सुहृत्तो ज्ञाणोत्त, मंथेदिं अणान्तनार्णादिं ॥ १३

अर्थ-मदंध अनेन ज्ञानियाण, अणद्वार, मातशो अने
तेर इतरेणुं सरुणवे. ॥ १३ ॥

इं वाचने रस्य करे छं

सत्तहुत्तरी सुहृत्ता, दीत्ता पस्का य माग वग्गिमा य ॥

अस्सिद्ध पल्लिया माग, उम्माथियाणी मग्गियाणी कात्तिया ॥

अर्थ-सत्तहुत्तरी, सुहृत्ता, दीत्ता पस्का य माग वग्गिमा य
इतरेणुं सरुणवे. ॥ १४ ॥

इवे पुण्यनञ्चना पेंतालीश भेद करे छे.

सा उच्चगोत्र माण्डुग, सुरडुग पंचेदिजाइ पाणदेहा ॥
आइतितण्णुवंगा, आइमसंघयणसंघाणा ॥१५॥

शब्दार्थ—सातावेदनी कर्म, उच्चगोत्र, मनुष्यद्विक, सुरद्विक, पंचेदिजाति अने पांच देह. तेमां पहेला त्रेण शरीरना श्रंगे अने त्रेपांग, अने पहेलुं [वज्ररूपजनासाच] संघयण तथा पहेलुं [समचतुरस्र] संस्थान. ॥ १५ ॥

वण चनकागुरुल्लहु. परघा कसास आय बुज्जोअं ॥
सुज्जखगइ निमिण तसदस, सुरनरतिरिआज तिठयरं ॥

शब्दार्थ—वर्णचतुष्क नामकर्म, अगुरु लघु, परघात, श्वातो-श्वास, आताप, उद्योत, हंस वृषज्जनो पेठे सारी चालते शुज्ज विहायोगति, सुघाट रूप निर्माण, त्रसदसक, देव, मनुष्य अने तिर्यचनुं आयुष्य अने तीर्थंकर नामकर्म. ॥ १६ ॥

इवे प्रम दशकनुं स्वरूप करे छे.

तस वापर पज्जतं, पत्तेय थिरं सुज्जं च सुज्जगं च ॥
सुस्सर आइज्ज जसं, तसाइदसगं इमं होइ ॥ १७ ॥

शब्दार्थ—त्रस, वादर, पर्याप्ती प्रत्येक, स्थिरता, शुज्ज, सौजा-ग्य, सुस्वर, आदेय अने जस. पुण्यना जेदमां आ त्रस विगेरे दश नाम कर्म होयठे. ॥ १७ ॥ इति पुण्यतत्त.

इवे पापकर्मता बासी भेद करे छे.

णाणंतरायदशगं, नव वीए नीअ्रसायमिच्चतं ॥
थावरदस नरयतिगं. कसायपाणवीस तिरियडुगं ॥१८॥

१ आदारिक, वैक्रिय, आहारक. २ वे हाय, वे पग, पीठ, मस्तक. उदर अने हृदय. ३ आगली विगेरे. ४ आ प्रस दशनुं स्वरूप आगली गापामां करेते.

शब्दार्थ—ज्ञानावरणीनां पांच अने अंतरायनां पांच एम वने मलीने दश पापकर्मना जेद, बीजा दर्शनावरणीं कर्मना नवजेद, नीच गोत्र पापकर्म, अशातावेदनी पापकर्म, मिथ्यात्व पापकर्म, 'स्यावर दशक पापकर्म, 'नरकत्रिक पापकर्म, पञ्चीश कयाय रूप पापकर्म, तिर्यचद्विक पापकर्म. ॥ १८ ॥

इगवितिचञ्जार्इत्त, कुखगइ उवघाय हुंति पावस्स ॥

अपसत्तं वणचक, अपढम संघयणसंठाणा ॥१९॥

शब्दार्थ—एकेंडिय, वेंडिय, तेरिंडिय अने चोरेंडिय जातिरूप पापकर्म, उंट विगेरेनी पेठे अशुच विहायोगति पापकर्म, उपघात नाम पापकर्म, माठा एवा रूप, रस, गंध अने स्पर्श रूप पापकर्म, तेमज पदेला संघयण अने पदेला संस्थान विनाना बीजा संघयण अने संस्थान रूप पापकर्म. ॥ १९ ॥

इवे स्यावर दशकनुं स्वरुप कहे छे.

थावर सुहुम अपज्जं—साहाराणमथिरमसुचुज्जगाणि ॥

उस्सग्गाइज्जसं, थावरदशगं विवज्जत्तं ॥२०॥

शब्दार्थ—स्यावर नामकर्म, सूक्ष्म नामकर्म, अपर्याप्त नाम कर्म, साधारण नामकर्म, अस्थिर नामकर्म, अशुच नामकर्म, दानांग्य नामकर्म, उःस्वर नामकर्म, अनादेय नामकर्म, अजश नामकर्म. था स्यावर दशक त्यजी देवाना अर्थरूप छे. ॥२०॥

इवे बीजा दर्शनावरणीं कर्मना नव पेद कहे छे

चम्फुदिदि अचम्फु, सेसिंदिअउदि केवलेदिं च ॥

दंमाणिद ममत्ते, तस्मावराणं तयं चउत्ता ॥२१॥

शब्दार्थ—चहुदर्शन, अचहुदर्शन, अयधिदर्शन अने केवल

१ था स्यावर दशकनुं स्वरुप भागती गाथायां कहेने

२ वाचकदि, नरकानुर्दि अने नरकायु

दर्शन. आ ठेकाणे दर्शन ते सामान्यज्ञान. ते ज्ञाननुं जे आवर्ण,
ते आवर्ण चार प्रकारनुं ठे. ॥ २१ ॥

सुहृपमिवोहा निहा, निहानिहा य दुस्कपमिवोहा ॥

पयला ठि उवविठस्स, पयलपयलाउं चंकमउं ॥२३॥

शब्दार्थ—सुखे जगाय ते निज्ञ, दुःखे जगाय ते निज्ञ निज्ञ,
उज्जा उज्जा तथा वेग वेग उंघे ते प्रचला अने हालता चाखता
उंघे ते प्रचला प्रचला कहेवाय. ॥ २३ ॥

दिणचित्तिअठकणी. ठीणदी अद्वचकिअद्वला ॥

एवं जिणेहिं जणियं, वित्तिसमं दंसणावरणं ॥२४॥

शब्दार्थ—दिवसे चिंतवेला कार्यने [रात्रीये उंघमां] करना-
री ठीणदी नामनी निज्ञ अर्द्धचकी वासुदेवर्था अर्द्ध बलवाली ठे.
आ प्रमाणे जिनेश्वरोए उर्द्धादार समान दर्शनावरण कहुं ठे. ॥२४॥

• एवं कपायनी स्थिति तथा फल करे ठे.

जावजीववग्सचउमा—स पस्कृग्यनिरयतिरियनरअमरा॥

समाणुं सव विरइ—अहस्क्रायचरित्त घायकरा ॥२५॥

शब्दार्थ—अनंतानुबंधो कपायनी स्थिति जीवित सुधी,
अप्रत्याख्यान कपायनी स्थिति एकवर्ष सुधी, प्रत्याख्यान कपाय
नी स्थिति चारमास सुधी, संजलना कपायनी स्थिति एक पख-
वाहीया सुधी होय ठे. तेमां अनंतानु बंधो कपाय नरक गतिरूप
फल आपे ठे. अप्रत्याख्यानी कपाय तिर्यच गतिरूप फल आपे ठे,
प्रत्याख्यानी कपाय मनुष्य गतिरूप फल अने संजलनो कपाय
देवगतिरूप फल आपे ठे. वली ते चारे कपायो अनुक्रमे समकौ-
तन. अणुव्रतने, सर्व विरतिने अने यथाख्यात चारित्रने
रनाग ठे. ॥ २५ ॥

जलरेणु पुढवि पवय-राईसरिसो चउबिहो कोहो ॥
तिणसलयाकठ्ठीअ-सेलठंजोवमो माणो ॥१६॥

शब्दार्थ-जलमां, रजमां, पृथ्वी उपर अने पर्वत उपर
रेली रेखा सरखो कोय चार प्रकारनो ठे अने तृणना, सलीन
काष्टना, दाडकाना अने पश्ररना स्थंज सरखो मान ठे. १६

माया वलेहिगोमुत्ति-मिढसिंगघणवंसिमूलसमा ॥
लोहो हलिदखंजण-कदमकिमिरागसारिठो ॥१७॥

शब्दार्थ-माया वांसनो ठाल, वृषजतुं मूत्र, बोकडानुं
गहुं अने नोचिड एवा वांसना मूल सरखी ठे. वली लोच हल
गामानी मली, कादव अने करमजी रंग सरखो ठे. ॥१७॥

जस्मुदया होइ जिण, हासरइअरईसोगजयकुठ्ठा ॥
मनिमित्तमन्नदा वा, तं इह हासाईमोहणियं ॥१८॥

शब्दार्थ-जीवने जेना उदयथी निमित्त सहित अथवा
मिन विना दास्य, रति, अगति, शोक, जय अने दुर्गंठा होय
तेन अदि दास्यादिक मोहनीय जाणवुं. ॥ १८ ॥

पुगिणि ज्ञोतजुजयंपइ, अहिल्लासो जघसा हवइ सोइ
ज्ञोनरनपुंवेउदउ, कुंफुमतगानगरदाहममो ॥१९॥

शब्दार्थ-जे कर्मना यशथी पुरुषनो, स्त्रोनो अने ते बने
पण अज्ञिज्ञाय होय ठे. ते अनुक्रमं स्त्रोवेद, पुरुषवेद अने नपुंसक
बकगनां लोडी, घाम अने नगरना दाइ मरयो जाणयो. ॥१९॥

इते संययनानां नाम तथा स्पष्ट्य करे ठे

संययणामज्ञिचउ, तं उत्रा यज्ञगिमदनागर्यं ॥
तद गिमदनागर्यं, नागर्यं अद्वनागर्यं ॥२०॥

शब्दार्थ-संययण ते दास्यानो समूह. ते उ प्रकारनो ठे
बदइयननागर्य तेनज उ अद्वनागर्य, ३ नागर्य, ॥ अद्वनाग

(३५)

इंदिअकसायअद्वय-जोगा पंच चउपंचतित्रि कमा ॥
किरिआउ पणवोसं, इमा उ ताउ अणुक्रमसो ॥३४॥

शब्दार्थ-इंदिय, कपाय, अवत अने जोग ते अनुक्रमे पांच,
चार, पांच अने त्रण ठे अने क्रियाउ पंचवोश ठे. ए सर्वे मलने
आश्रयना वेतालोश जेद थया. वलो कोयाउ अनुक्रमे आ हवे पर्वा
कहेयादो ते जाणवो. ॥ ३४ ॥

इवं पर्वात क्रियाओ कहे छे.

काइअ अहिगरणीया, पाउसिया पारितावणी किरिया
पाणाइयाया रंजिय-परिग्गहिया माववतीया ॥३५॥

शब्दार्थ-कापिकी, अधिकरणिकी, प्राठेपिकी, पारितापनि
की, प्राणातिपातिकी, आरंजिकी, परिग्रहिकी अने माया प्रत्ययिकी
मिन्नादंमाणवतो, अप्पन्नस्काणा दिठि पुठिअ ॥

पाठुअ सामंतो-याणीअ नेसत्यिमाहृत्यी ॥३६॥

शब्दार्थ-मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी, अप्रत्याख्यानिकी, दृष्टि
की, स्मृष्टिकी, प्रातिन्यकी, सामंतोपनिपातिकी, नेसत्यिकी अने
स्वदृष्टिकी. ॥ ३६ ॥

आणवणिविआरणिआ, आणजोगा-आणवकंखपचइअ
अत्रा पउगसमुदा-गपिऊदोमेरिआवदिआ ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ-आनपनिकी, विदारणिका, अनाजोगिकी, अनवकां
अन्वदिकी, ए विना धोत्री ते प्रायोगिकी, समुदानकी, प्रेमिकी
हेविकी अने पर्यायिकी ॥ ३७ ॥

इवं संकल्पवरा गणवत भेद कहे छे.

मनिइ गुनि परीमद, तउधम्मो जावणा चरिणाणि ॥

५३५ ॥ १०-पंच नेणदिं मगवत्रा ॥३८॥

(२३)

शब्दार्थ—समिति, गुप्ति, परीसह, पतिधर्म, ज्ञायना अने चारित्र्य ते अनुक्रमे पांच, घण, बावीस, दश, वार अने पांच एवा जे दोए करीने संवरना सत्तावन जेदो ठे. ॥ ३७ ॥

हे पांच गणिति अने प्रण गुप्ति करे ठे.

(अनुष्टुप् वृत्तम्)

इरिया ज्ञासेसाणादाणे—उच्चारं समिद्सु अ ॥

माणगुप्ति वयगुप्ति, कायगुप्ति तद्देव य ॥३८॥

शब्दार्थ—इर्यासमिति, ज्ञापासमिति, एपणासमिति, आदानसमिति, उच्चारसमिति ए पांच समिति. वली मनगुप्ति, वचनगुप्ति तेमज कायगुप्ति ए त्रण गुप्ति जाणवो. ॥ ३८ ॥

हे शबोत परीसह करे ठे.

खुहा पिवासा सी उएहं, दंसा चेला रईत्विउ ॥

चरित्रा निसिद्धिया सिद्धा, अक्रोस वह जायणा ४०

शब्दार्थ—खुहा, पासा, सीत, उष्ण, दंस, अवेल, अरति, स्त्री, चर्पा, नियया, सप्या, आक्रोश, वष अने याचना. ॥ ४० ॥

अलाज्जरोगताणफासा, मलसक्कार परीसहा ॥

पन्नाज्जाणसम्मत्तं, इअ बावीस परीसहा ॥४१॥

शब्दार्थ—अलाज्ज, रोग, तृणस्पर्श, मल, सत्कार, प्रज्ञा, अज्ञान अने सम्यक्त्व ए प्रकारे बावीस परिसह जाणवा. ॥४१॥

हे दस प्रकारे पतिधर्म करे ठे.

खंती मदव अज्जय, मुत्ती तवसंजमे अ बोधधे ॥

सच्चं सोअं अर्किं—चाणं च वंजं च जइधम्मो ॥४२॥

शब्दार्थ—कमा, मादेव, अर्जव, मुक्ति, तप, संयम, सत्य, शौच अर्किंचन अने ब्रह्मचर्य ए दश प्रकारे पतिधर्म जाणवो.

हे बार भावनानुं स्वरूप करे ठे

(७४)

पठममणिञ्च मसरणां, संसारो एगया य अ
असुइत्तं आसव सं-वरो अ तह णिऊरा

शब्दार्थ-पहेली अनित्य, बीजी असरणा,
चोथो एकत्व, पांचमी अन्यत्व, ठो असुचित्व, सा
आठमी संवर, तेमज नवमी निर्झरा जावना जाण
लोगसहावो बोही, डुद्धहा धम्मस्स साहर
एआठ जावणाठ, जावेअवा पयत्तेणं ।

शब्दार्थ-दशमी लोकं स्वजाव, अग्यारमी ठे
धर्मनी साधकं अरिहंत जावना डुद्धज ठे. ए जाव
रीने जाववी. ॥ ११ ॥

इहे पांच प्रकारनां चारित्र्यं वर्णन करे छे.

सामाइ अन्न पठमं, ठेठवठावणां जये बोअ
परिहारविसुद्धीअं, सुद्धमं तह संपरायं च

शब्दार्थ-अहिं पहेलुं सामायक, बीजुं ठेदोपस्थ
परिहार विशुद्धि, अने तेमज चोथुं सुद्धमसंपराय च
ततो अ अहस्कायं, खायं सवमि जीवलो
जं चरिणा सुविहिया, वञ्चति अयगमरं ठ

शब्दार्थ-बली त्यारपणी सर्व लोकमां प्रति
यथाग्यात चारित्र्ये के, जे चारित्र्ये पाली सुविहित
स्थानेन पामेठे. ॥ ४६ ॥

इहे नित्रोपासना बार भेद ठे.

आणामाणमुणोअरिया, वित्तीमंवेवाणं रम्मज
कायकिञ्जेमा मंजो-णया य धज्जा तयो हो

शब्दार्थ-अनशन, उतोदरिका, वृत्तिरक्षेप, र

(११)

क्लेश, अने संतानता ए ठ प्रकारे बाह्य तप होय ठे. ॥ ४७ ॥

पायन्त्रितं विण्णं. वेयावच्चं तहेव सक्षात्त ॥

जाणं उस्सग्गोवि अ, अप्पिंतरत्त तवो होइ ॥४८॥

शब्दार्थ-प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य, तेमज स्वाध्याय,
ध्यान अने कायोत्सर्ग ए आन्तर तप होय ठे. ॥४८॥

हवे आन्तर तपसांना मायधित तपनुं स्वरूप कहे ठे.

(अनुष्टुप्वृत्तम्)

आलोयण पडिक्कमाणो-न्नयविवेगमुसग्गो ॥

तवत्तेयमूलअणव-ठयाय पारंचिय चव ॥४९॥

शब्दार्थ-आलोयण लेवी, पडिक्कमण करवुं, आलोयण अने
पडिक्कमण ए वत्ते कर्मां, विवेक राखवो, कायोत्सर्ग करवो, वली
तप, व्रत पर्यायछेद, सर्व व्रत पर्यायछेद अने गच्छद्धार, क्षेत्रद्धार,
तथा लीगद्धार रहेवुं. ॥ ४९ ॥

हवे विनयनुं स्वरूप कहे ठे.

(आर्यावृत्तम्)

नत्ती बहुमाणो व-एजणाणं ज्ञासणमन्नवायस्स ॥

आसायणपरिहाणो, विण्णं संखेवत्त एसो ॥५०॥

शब्दार्थ-नत्ती करवी, हृदयमां प्रेम राखवो, गुण गावा,
अवर्णवादनं गोपवुं, आज्ञातनानो त्याग करवो. ए प्रमाणे संके-
पथो विनय कह्यो ठे. ॥ ५० ॥

हवे दत्त प्रकारे वैयावच्च कहे ठे.

आपरियत्तवज्झाय-तवस्सिसेहे गिलाणसाहुसु ॥

समणुत्तसंघकुलगाण-वेयावच्चं ह्वइ दसहा ॥५१॥

शब्दार्थ-आचार्यनी, उपाध्यायनी, तपस्वीनी, डिप्पनी,
रोगीनी, साधुनी, साधर्मीनी, संघनी, एक साधुनी अने गणनी

(२६)

एम वैयावच्च दश प्रकारे थायठे ॥ ५१ ॥

हवे ध्यानना भेद कहे छे.

झाणं चञ्चविहं खलु, अत्तं रूढं तहेव धम्मं च ॥

सुकं पुण पत्तेयं, चञ्चविहं चैव नायव्वं ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ-ध्यान निश्चय चार प्रकारनुं ठे. आर्तध्यान, रौ-
द्ध्यान तेमज धर्मध्यान अने शुक्लध्यान. वली ते प्रत्येक चार प्र-
कारनुं निश्चय जाणवुं. ॥ ५२ ॥

हवे निर्जरा तत्त्वनो विचार कहे छे.

वारसविहं तवो नि-ज्जराय वंधो य चञ्चविगप्पोय ॥

पयइठोइअणुजागो-पयेसजेएहिं नायव्वो ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ-आ उपर कहेलुं वार प्रकारनुं तप ते निर्जरा
जाणवो. अने वंध ते चार प्रकारनो ठे, ते प्रकृतिबंध, स्थितिबंध,
अनुज्ञागबंध अने प्रदेशबंध एवा जेदोये करीने जाणवो. ॥ ५३ ॥

पूर्व कहेला बंधतत्त्वना चार भेदनुं वर्णन करे छे.

(अनुष्टुप् वृत्तम्)

पयइ सहावो वुत्तो, विइ कालावहारणं ॥

आणु जागो रसो होउ, पएसो दलसंचउ ॥ ५४ ॥

शब्दार्थ-प्रकृतिबंध ते स्वज्ञाव, स्थितिबंध ते कालनो
निश्चय, अनुज्ञागबंध ते रस जाणवो अने प्रदेशबंध ते दलसमूह
जाणवो. ॥ ५४ ॥

हवे आठे कर्मनो प्रत्येके उत्तर मन्तनीनो संख्या कहे छे.

(आर्षावृत्तम्)

इइ नाणदंसाणावर-णावेयमोहाकनामगोअ्राणि ॥

विग्धं च पाणनवडुअ-ठवीसचउ तीसयडुपाणविहं ५५

शब्दार्थ-आहिं ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनी, मोहनी,

(१७)

आयु, नाम अने गोत्र वली अंतराय ए आठ कर्मनी पांच, नव, वे, गायत्री, चार, एकसो व्रण, वे अने पांच, एम अनुक्रमे प्रकृति जाणवो. सर्व मली १५८ आय. ॥ ५५ ॥

एवे आठे कर्मोनी उत्कृष्ट स्थितिवंध करे छे.

नाणो अ दंशणावर-णो वेअणिए चैव अंतराय अ ॥
तीसं कोमाकोमी, अयराणं तिइ अ उक्कोसा ॥५६॥

शब्दार्थ—ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, वेदनी, अंतराय, ए वारे घातो कर्मनी उत्कृष्ट स्थिति त्रोश कोमी कोमी सागरोपम नी जाणवो. ॥ ५६ ॥

सत्तरी कोमाकोमी, मोहणीए वीस नामगोणसु ॥
तित्तोसं अयराइं, आउठिइबंध उक्कोसा ॥५७॥

शब्दार्थ—मोहनी कर्मनी सौत्तर कोमी कोमी सागरोपम-नी स्थिति जाणवो. नामकर्म तथा गोत्रकर्मनी वीश कोडा कोडी सागरोपमनी स्थिति जाणवो. वली आयुःकर्मनी स्थितिनो उत्कृष्ट बंध तेत्रोश सागरोपमनी जाणवो. ॥ ५७ ॥

एवे आठे कर्मोनी जघन्य स्थितिवंध करे छे.

वारस मुहुत्त जहन्ना, वेयणिए अठ नामगोणसु ॥
सेसाणंतमुहुत्तं, एयं बंधठिइ माणं ॥५८॥

शब्दार्थ—वेदनीय कर्मनी स्थिति जघन्य वार मुहूर्त्तनी ठे अने नामकर्म तथा गोत्रकर्मनी स्थिति आठ मुहूर्त्तनी जाणवो. वाकीना कर्मनी अंतमुहूर्त्तनी जाणवो. ए प्रमाणे बंध स्थितिनुं मान ठे. ॥ ५८ ॥ इति बंधतत्व. ॥

एवे मोक्षतत्परना नव भेद करे छे.

संतपयपरूवाणया. दवपमाणं च खित्त कुसणा य ॥
कालो अ अंतरज्ञाग—ज्ञावे अप्पावहु चैव ॥५९॥

(२६)

एम वैयाचञ्ज दश प्रकारे थायठे. ॥ ५१ ॥

इवे ध्यानना भेद करे छे.

श्राणां चञ्चिहं खलु, अतं रुहं तद्देव धम्मं च ॥

सुक्कं पुण पत्तेयं. चञ्चविहं चैव नायद्यं ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ—ध्यान निश्चय चार प्रकारनुं ठे. आर्तध्यान, गै-
इध्यान तेमज धर्मध्यान अने शुक्लध्यान. वली ते प्रत्येक चार प्र-
कारनुं निश्चय जाणवुं. ॥ ५२ ॥

इवे निर्जरा तत्त्वना विचार करे छे.

वारसविहं तवो नि-ज्जासय बंधो य चञ्चविगप्पोय ॥

पयइठीइअणुजागो—पयेसजेएहिं नायद्यो ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ—आ उपर कहेलुं वार प्रकारनुं तप ते निर्जरा
जाणवो. अने बंध ते चार प्रकारनो ठे, ते प्रकृतिबंध, स्थितिबंध,
अनुजागबंध अने प्रदेशबंध एवा जेदोये करीने जाणवो. ॥ ५३ ॥

पूँ कहेला बंधतत्त्वना चार भेदनुं वर्णन करे छे.

(अनुष्टुप् वृत्तम्)

पयइ सहावो वुत्तो, ठिइ कालावहारणं ॥

अणु जागो रसो होउं, पएसो दलसंचउं ॥ ५४ ॥

शब्दार्थ—प्रकृतिबंध ते स्वज्ञाव, स्थितिबंध ते कालनो
निश्चय, अनुजागबंध ते रस जाणवो अने प्रदेशबंध ते दलसमूह
जाणवो. ॥ ५४ ॥

इवे आठे कर्मनो प्रत्येके उत्तर प्रकृतीनो संरूपा कहे छे.

(आर्यावृत्तम्)

इह नाणदंसणावर—णवेयमोहाज्जनामगोआणि ॥

विग्धं च पाणनवडुअ—ठवीसचउ तीसयडुपाविहं ५५

शब्दार्थ—अहिं ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनी, मोहनी,

(१९)

द्वपमाणे सिद्धा-णं जीवद्व्याणि हुंति एंताणि ॥

लोगस्स असंखिल्ले, ज्ञागे एको य सवेवि ॥६३॥

शब्दार्थ—इय प्रमाण द्वार विचारे ठे सिद्धना जीवइय अनंतां ठे. वली लोकाकाशना असंख्यातमे ज्ञागे एक सिद्ध ठे. अथवा सर्व सिद्ध पण होय ठे. ॥ ६३ ॥

इवे स्पर्शनादि षण द्वार करे छे.

कुसाणा अहिया कालो, इग सिद्ध पडुच्च साइउणांतो ॥

पम्बिवाया ज्ञावाउ. सिद्धाणं अंतरं नत्ति ॥६४॥

शब्दार्थ—सिद्धना जीवोनी स्पर्शना अधिक ठे. एक सिद्धने आश्रोने काल सादि अनंत ठे अने सर्वने आश्रो अनादि अनंत ठे. वली सिद्धने चबवानो अज्ञाव ठे, माटे सिद्धने अंतर नथी. ॥

इवे भागद्वार अने ज्ञावद्वार करे छे.

सच्चजियाणमणंते, ज्ञागे ते तेसिं दंसणं नाणं ॥

खइए ज्ञावे परिणा-मिए अ पुण होइ जीवत्तं ॥६५॥

शब्दार्थ—सर्वे संसारी जीवोना अनंतमे ज्ञागे ते सिद्धना जीवो ठे. वली ते सिद्ध जीवोने क्षायिक ज्ञावने विषे केवलदर्शन अने केवलज्ञान होय ठे. वली परिणामिक ज्ञावने विषे ए सिद्धना जीवोने जीवितपणुं पण होय ठे. ॥ ६५ ॥

इवे सिद्धना पंदर भेद करे छे.

जिणअजिणतिव्वत्तिञ्जा, गिहिअन्नसल्लिगधीनरनपुंसा ॥

पतेयसयंबुद्धा, बुद्धवोहियसिद्धणिकाय ॥६६॥

शब्दार्थ—जिनसिद्ध, अजिनसिद्ध, तीर्थसिद्ध, अतीर्थसिद्ध, गृहस्थलिंगसिद्ध, अन्यालिंगसिद्ध, सल्लिगसिद्ध, स्त्रीसिद्ध, पुरुषसिद्ध, नपुंसकसिद्ध, प्रत्येकबुद्ध सिद्ध, स्वयंबुद्धसिद्ध, बुद्धवोधित सिद्ध, एकसिद्ध अने अनेक सिद्ध. ए सिद्धना पंदर ज्ञेद जाणवा. ॥६६॥

इवे ए पंदर भेडना उदाहरण कहे छे.

जिणसिद्धा अरिहंता, अजिणसिद्धाय पुंमरिआपमुह्हा ॥
गणहारि तिष्ठसिद्धा, अतिष्ठसिद्धा य मरुदेवी ॥६७॥

शब्दार्थ—जिनसिद्ध ते अरिहंतो, अजिनसिद्ध ते पुंडरिक विगेरे गणघर जाणवा, तीर्थसिद्ध ते गणवर अने अतीर्थसिद्ध ते मरुदेवी जाणवा. ॥ ६७ ॥

गिहिलिंगसिद्ध जरहो, वल्कलचीरीय अन्नलिंगम्मि ॥
साहु सलिंगसिद्धा, थीसिद्धा चंदणापमुह्हा ॥६८॥

शब्दार्थ—गृहस्थलिंग सिद्ध जरत, अन्यलिंग सिद्ध वल्कल चीरी, स्वलिंग सिद्ध साधु अने स्त्री सिद्ध चंदनवाला विगेरे जाणवा. ॥ ६८ ॥

पुंसिद्धा गोयमाई, गांगेयपमुह्हा नपुंसया सिद्धा ॥
पत्तेय सयंबुद्धा, जणिषा करकंडुकविलाई ॥६९॥

शब्दार्थ—पुरुष सिद्धते गौतम विगेरे, नपुंसक सिद्धते गांगेय विगेरे, प्रत्येकसिद्धते करकंडु अने स्वयंबुद्धसिद्धते कपील जाणवा.

तह बुधवोहि गुरुवो—हिय इगसमय इगसिद्धा य ॥
इगसमयेवि अणोगा, सिद्धा ते णोगसिद्धा य ॥७०॥

शब्दार्थ—तेमज बुधवोधित सिद्धते गुरुधी बोध पामेला, एक समयमां सिद्ध अनाराना एक सिद्ध अने एक समयमां अनेक सिद्ध थाय ते अनेकसिद्ध कहेयाय. ॥ ७० ॥

इवे नवमुं अन्ययहृत्वादार कहे छे.

योया नपुंससिद्धा, थोनरसिद्धा कमेण संखगुणा ॥
इअ मुवतत्तमेपं, नवतत्ता खेसठ जणिषा ॥७१॥

शब्दार्थ—नपुंसक सिद्धो थोनाठे. स्त्री पुरुष सिद्धो अनुक्रमे

(३१)

उरलाइसत्तगेणं, एग जिउ मुअइ फुसिय सबआणु ॥
जित्तिअकालि स थूलो, दवे सुहुमो सग्गनयरा ॥१६॥

शब्दार्थ—एक जीव उदारादिक सातेनी वर्गणाने स्पर्ग करीने सर्व प्रमाणु प्रत्ये जेटलो काल मूके, ते थूल इय पुज्ज प-
रावर्त काल थाय. इयथी सूद्धम सात बीजी वर्गणा जाणवी.

लोगपएसोसप्पिणि—समया अणुजागबंधनाणे य ॥
तहतह कममरणेणं, पुढा खित्ताइ थुलियरा ॥१७॥

शब्दार्थ—लोकाकाशना प्रदेश, उत्सप्पिणीना समय अने
अणुजाग बंधना सर्व स्थानक. तेम तेम अनुक्रम मरणे करीनेते
क्षेत्रादि स्पर्शला होय ते क्षेत्रादि स्थूल सूद्धम पड्योपम थाय.

हवे पुद्गल परावर्त्तनुं मान कहे छे.

उस्सप्पिणी अणंता, पुग्गलपरिअट्टण मुणेअवो ॥
ते णंतातीअधा, अणागयधा अणंतगुणा ॥१८॥

शब्दार्थ—अनंती उस्सप्पिणी अने अवसप्पिणी जाय ए
पुज्जल परावर्त काल जाणवी. अनंत एवा ते पुज्जलपरावर्त काल
गया अने अनंतगुणा जाशे. ॥ १८ ॥

हवे छ द्रव्य दश द्वारे कहे छे.

परिणामि जीव मुत्तं, सपएसा एक खित्त किरिअप्राय ॥
णिच्चं कारण कत्ता, सबग दमिदिरहि अपवेसे ॥१९॥

शब्दार्थ—परिणामि, जीव, मूर्ति, सप्रदेश, एक, क्षेत्र, क्रिया,
नित्यपणुं, कारण, कर्ता. ए सर्वमां रहेला विचारथी अप्रवेशपणे
रह्या ठे. ॥ १९ ॥

॥ इति नवतत्त्व. ॥

(३३)

अथ चोवीश दंडक.

धंगलाचरण पूर्वक कर्त्तव्य कहे छे.

नमिञं चतुर्वीसजिणे, तस्मुत्तवियारलेसदेसणउ ॥

दंमगपएहि ते चिय, थोसामि सुणेह जोज्जवा ॥ १ ॥

शब्दार्थ—चोवीश जिनेश्वरोने नमस्कार करीने तेमनां सू-
त्रना विवारना लेइ मात्रने कहेवाथी दंडकना पदे करोने ते जि
नेश्वरोने निश्चे हुं स्तवन करुं तुं, माटे हे ज्ञव्यजनो! तमे सांजलो. १

एवे चोवीश दंडक गणावे छे.

नेरइया असुराइ, पुढवाई वेदियादउ चेव ॥

गप्रयतिरियमाणुसा, वंतरजोइसियवेमाणी ॥ २ ॥

शब्दार्थ—१ सात नारकीनुं, १० असुरकुमारादिनां, ५ पृथ्वी-
कायादिकनां, ३ विगलेंडियनां, २ गर्जजतिर्येच अने मनुष्यनां,
३ व्यंतर, ज्योतसि अने वैमानीकनां. ॥ २ ॥

एवे शर करे छे.

संखित्तयरीउ इमा. सरीर मोगाहणा य संघयणा ॥

सन्ना संठाण कसा—य लेस इंदिय दुसमुग्घाया ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—आ संघयणी संक्षेप मात्र ठे. शरीर ५, अवगाहना
३, संघयण ६, संज्ञा ४-१०, संस्थान ६, कयाय ४, लेस्या ६, इंदिय
५, वे जेदे समुद्घात ३. ॥ ३ ॥

दिडेदंसणनाणे, जोगुवजगोववापचवाणठिइ ॥

पऊत्तिकिमाहारे, सत्री गइ आगइ वेय ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—दृष्टि ३, दर्शन ४, ज्ञान ५, योग १५, उपयोग १२,
उपपात १, चवन १, स्थिति ३, पर्याति ६, किमाहार १, संज्ञा ३,
गति १, आगति १, वेद ३. ॥ ४ ॥

इवे छ गाथायो शरीरद्वार तथा अवगाहनाद्वार कहे छे.

चञ गप्रतिरियवाऊसु, मणुआणां पंच सेस तिसरीरा ॥

थावरचउगे डुहउ, अंगुल असंखजागतणू ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—गर्भजतिर्येच अने वाउकायने विपे चार शरीर, मनुष्यने पांच शरीर, वाकीना त्रण शरीरवाला होय. (इति शरीर शर) थावर चतुष्कने विपे उक्कष्ट तथा जघन्यथी अंगुलना असंख्य जागवालुं शरीर जाणवुं. ॥ ५ ॥

सधेसिंपि जहन्ना, साहाविय अंगुलस्ससंखंसो ॥

उक्कोस पणसयधणू, नेरइया सत्तहउ सुरा ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—वाकीना वीइ दंरुकने स्वाजाविक जघन्यथी अंगुलनो असंख्यातमो जाग शरीर होयठे. नारकी जीवो उक्कष्टा पांचसो धनुष्य उंचा होयठे. देवता उक्कष्टे सात हाथ होयठे. ६

गप्रतिरि सहसजोयणा, वणस्सई अहियजोयणासहस्सं ॥

नर तेइंदि तिगाउ, वेइंदिय जोयणा वार ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—गर्भज तिर्येच एक हजार जोजन, वनस्पति एक हजार जोजनथी कांइक अधिक, मनुष्य अने तेरिंदि त्रण गाउ अने वे इंदिय वार योजनना उक्कष्ट शरीर प्रमाणवाला होयठे.

जोयणामेगं चउरिं—दिदेहमुच्चताणे सुए जणियं ॥

वेउधियेदेहं पुण, अंगुलसंखं सयारंजे ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—चउरिंदिनुं शरीर उंचपणे एक जोजन सूघने विपे वहुंठे. कती उनर वैकिय देह हमेशां अरंजे अंगुलनो असंख्यातमो जाग होयठे. ॥ ८ ॥

देवनग्घइअल्लम्कं, तिरियाणां नययजोयणामपाइं ॥

डुगुणां तु नारयाणां, जणियं वेउधियसरिंतु ॥ ९ ॥

(३५)

शब्दार्थ—देव अने मनुष्यांनुं वैक्रिय शरीर एक लाखजो ज नथी कांडक अधिक होय ठे. तिर्यंचोनुं नवसो योजननुं होय ठे. यती नारकीनुं पोताना शरीर प्रमाणथी वमणुं कहुं ठे. ॥ ए ॥

अंतमुहुत्तं निरये. मुहुत्तचत्तारि मणुअतिरिणसु ॥

देवेषु अक्षमासो. उकोसविउघाणा काळो ॥१०॥

शब्दार्थ—नरकमां एक अंतर मुहुत्तं, मनुष्य अने तिर्यंचमां चार मुहुत्तं अने देवताने विषे अक्षां भास. ए उक्कृष्ट उत्तर वैक्रिय शरीरनो काल जाणवो. (इति अक्षगाहनाद्वार) ॥१० ॥

इव एक गायथी मंघयण द्वार रुहे छे.

धावरसुरनेरझ्या. असंघयाणा य विगलठेवठा ॥

संघयाणठगं गप्पय—नरतिरिणसु मणुअघं ॥११॥

शब्दार्थ—पांच धावर, देवता अने नारकी ए सर्व संघयण रहित ठे. विगलेंडियनं सेवानं संघयण होय ठे. गर्जज मनुष्य अने तिर्यंचनं विषे व मंघयण जाणवुं. (इति मंघयणद्वार) ॥११॥

इव पे गायथी संज्ञा तथा संस्थानद्वार कहे छे.

सवेसिं चउ दह था—साणा सवे सुरा य चउरंसा ॥

नरतिग्निमंठाणा. हुंमा विगलेंदिनेरझ्या ॥१२॥

शब्दार्थ—मवं दंरुकोने चार अथवा दश संज्ञा ठे (इति संज्ञाद्वार) अने सवं देवतानं ममचतुरस्त्र ठे. मनुष्य अने तिर्यंच ठे संस्थान-वाला हाय ठे तथा विगलेंडि अने नारकी हुंम संस्थानवाला होय ठे.

नाणाविहधयसूर्ड—बुब्बुयवणावाउतेउअपकाया ॥

पुढवी मसृगचंदा—कारा संठाणानं जणिाया ॥१३॥

शब्दार्थ—वनस्पतिकाय जीवां नाना प्रकारना संस्थानवा ला ठे. वाउकाय जीवां ध्वजा सरखा संस्थानवाला ठे, अग्रिकाय जीवां मुझ्याना मसृगचंदा संस्थानवाला अने अपकाय जीवां

परपोटाना सरखा संस्थानवाला होयठे, पृथ्वीकाय जीवो ममूरनी
दाल अने चंडना सरखा संस्थानवाला कड्या ठे. (इति संस्थानद्वार)

हवे चार गाथायी कपाय, लेश्या, इंद्रिय अने ममूर्यान द्वार कडे छे.

सधेवि चञ्चकसाया, लेसठगं गप्रतिरियमाणुपसु ॥

नारयतेजवान्-विगलाविमाणियतियलेसा ॥१४॥

शब्दार्थ-सर्वे एवा जीवो पण चार कपायवाला होयठे.
(इति कपायद्वार) गर्जज तिर्यञ्च अने मनुष्य ठ लेश्यावाला होयठे.
वली नारकी, अग्निकाय, वानकाय, विगलेंडी अने वैमानिक
देवता ए सर्वे त्रण लेश्यावाला होयठे. ॥ १४ ॥

जोइसियतेजलेसा. सेसा सधेवि हुंति चञ्चलेसा ॥

इंद्रियदारं सुगमं. माणुआणं सत्त समुग्घाया ॥१५॥

शब्दार्थ-ज्योतसि तेजो लेश्यावाला ठे. वाकीना सधला
पण चार लेश्यावाला होयठे. (इति लेश्याद्वार) इंद्रियद्वार सुगम ठे.
(इति इंद्रियद्वार) मनुष्यने सात समुद्घात होयठे. ॥ १५ ॥

वेयणकसायमरणे, वेजवियतेयएय आहारि ॥

केवलियसमुग्घाए, सत्त इमे हुंति सन्नीणं ॥१६॥

शब्दार्थ-वेदना, कपाय, मरण, वैकीय, तेजस, आहारक,
अने केवली ए सात समुद्घात संज्ञी मनुष्यने होयठे. ॥ १६ ॥

एगिंदियाण केवलि-तेजआहारगविणु चत्तारि ॥

तेवेजवियवज्जा, विगला सन्नीण ते चेव ॥१७॥

शब्दार्थ-एकेंद्रियने, केवली तेजस अने आहारक वर्जिने
चार समुद्घात होयठे. ते पूर्वे कहेला त्रण अने वैक्रिय ए चार
विना वाकोना त्रण समुद्घात विकलेंद्रिने जाणवा अने असंज्ञीने
पण ते त्रणज समुद्घात निश्चे होयठे. ॥ १७ ॥

हवे वे गाथायी दृष्टि अने दर्शनद्वार कडे छे.

पण गप्रतिरिसुरेसु, नारयवाऊसु चउर तिय सेसे ॥
विगल्लुदिठो थावर-मिच्चति सेस तियदिठो ॥१७॥

शब्दार्थ—गर्जज तिर्यच अने देवताने विपे पांच, नारकी अने वाउकायने विपे चार अने वाकीनाने विपे त्रण समुद्धात होयठे. (इति समुद्धातदार) विकल्लेडि वे दृष्टिवाला ठे. थावर मिथ्यात्वी ठे अने वाकीना त्रण दृष्टिवाला ठे. ॥ १७ ॥ (इति दृष्टिदार)

थावरवितिसु अचकु, चउरिंदिसु तहुगं सुए जणियं ॥
माणुआ चउदंसणिणो, सेसेसु तिगं तिगं जणियं ॥१८॥

शब्दार्थ—स्यावर, वेइंइय अने तेरिंइयने विपे एक अचकु दर्शन होयठे. चौरिंइने विपे चहुदर्शन अने अचकुदर्शन सूत्रमां कहुं ठे. मनुष्यो चार दर्शनवाला होयठे अने वाकीनाने विपे त्रण त्रण दर्शन होयठे. ॥ १८ ॥ (इति दर्शनदार)

इवे एक गाथाथी ज्ञानदार कहे छे.

अत्राणनाणतियतिय, सुरतिरिनिरये थिरे अत्राणउगं
नाणानाण उविगले, मणुए पणनाणतिअत्राण ॥१९॥

शब्दार्थ—देवता, तिर्यच अने नारकीने विपे त्रण अज्ञान अने त्रण ज्ञान होयठे. थावरमां वे अज्ञान होयठे. विकल्लेइयने विपे वे ज्ञान अने वे अज्ञान होयठे. मनुष्यने विपे.पांच ज्ञान अने त्रण अज्ञान होयठे. ॥ १९ ॥ (इति ज्ञानदार)

इवे एक गाथाथी योगदार कहे छे.

इकारस सुरनिरये, तिरिणसु तेर पन्नर मणुएसु ॥

विगले चउ पण वाए, जोगतिगं थावरे होइ ॥२०॥

शब्दार्थ—देवता अने नारकीने विपे अगीयार, तिर्यचने विपे तेर, मनुष्यने विपे पंदर, विकल्लेइयने विपे चार, वाउकायने विपे पांच अने थावरने विपे त्रण योग होयठे. ॥२०॥ (इति योगदार)

હવે એક ગાથાથી યોગનાં નામ કહે છે.

સચ્ચેઞ્ચરમીસઞ્ચસન્ન-મોસ માણવયવેઞ્ચવિઞ્ચાહારે ॥

ઞ્ચરલંમિસા કમ્માણ, ઇય જોગા દેસિયા સમણ ॥૧૧॥

શબ્દાર્થ—સત્ય મનોયોગ, અસત્ય મનોયોગ, સત્યામૃપા મનોયોગ, અસત્યામૃપા મનોયોગ, એ પ્રમાણે મન અને વચનના યોગ જાણવા. વૈક્રિય યોગ, આહારક યોગ તેમજ ઔદારિક યોગ એ ત્રણ મિશ્ર સહિત. અને વલો કાર્મણ યોગ, તે સાતે, કાયાના યોગ આગમને વિષે કહ્યા છે. ॥ ૧૧ ॥ (ઇતિ યોગદ્વાર)

હવે બે ગાથાથી ઉપયોગ દ્વાર કહે છે.

તિઞ્ચન્નાણ નાણપણ, ચન્નદંસણ વાર જિઞ્ચલક્કણુવન્ના ॥

ઇઞ્ચ વારસ ઞ્ચવન્ના, ઞ્ચણિઞ્ચા તિલુક્કદંસીહિં ॥ ૧૩ ॥

શબ્દાર્થ—ત્રણ અજ્ઞાન, પાંચ જ્ઞાન, ચાર દર્શન, એ વાર જીવના લક્ષણરૂપ ઉપયોગ છે. એ વાર ઉપયોગ ત્રીલોક દર્શી એવા શ્રી જિનેશ્વરોએ કહ્યા છે. ॥ ૧૩ ॥

ઞ્ચવન્ના માણુણ્ણુ, વારસ નવ નિરય તિરય દેવેસુ ॥

વિગલ્લહુગે પાણ ઠક્કં, ચન્નરિંદિસુ થાવરે તિઞ્ચગં ॥૧૪॥

શબ્દાર્થ—મનુષ્યને વિષે વાર, નારકી, તિર્યંચ અને દેવતાને વિષે નવ, વેદંડિય અને તેરિંદિને વિષે પાંચ, ચોરિંદિને વિષે ઠ અને થાવરને વિષે ત્રણ ઉપયોગ હોય છે. ॥૧૪॥ (ઇતિ ઉપયોગદ્વાર)

હવે દોઢ ગાથાથી ઉત્પત્તિ અને વચનદ્વાર કહે છે.

સંસ્વમસંસ્વા સમણ, ગપ્પયતિરિવિગલ્લનારય સુરા ય ॥

માણુઞ્ચા નિયમા સંસ્વા, વણ્ણાન્તા થાવર ઞ્ચસંસ્વા ॥૧૫॥

શબ્દાર્થ—એક સમયને વિષે ગર્જજતિર્યંચ, વિકલેંદ્રિ, નારકી અને દેવતા સંસ્વાતા અને અસંસ્વાતા ઉત્પન્ન થાય છે.

नियमयो मनुष्यो संख्याता उत्पन्न धाय वे. वनस्पतिकाय अनंता
उत्पन्न धाय वे अने धावर असंख्याता उत्पन्न धाय वे ॥२५॥

असन्नो नर असंखा. जह उववान् तहेव चषणो वि ॥

हे चार गायामी स्थितिदार करे छे.

वावीससगतिदसवा-ससहस्स उक्किठ पुढवाइ ॥२६॥

शब्दार्थ-असंखी मनुष्यो असंख्याता उत्पन्न धाय वे. जे-
बो रीते उत्पन्न धवानी वात कदी तेवीज रीते चवनपणुं जा-
णवुं. (गति उत्पत्ति चवनदार) पृथ्वीकाय, अष्काय, वातकाय अने
वनस्पतिकायनुं आयुष्य अनुक्रमे वावीस हजार, सात हजार,
त्रय हजार अने दस हजार वर्षनुं उत्कृष्टुं होय वे- ॥ २६ ॥

तिदिणग्नि तिपद्धान्, नरतिरि सुरनिरय सागरतित्तीसा ॥

वंतर पद्धं जोइस. वरिसल्लखाहियं पल्लियं ॥२७॥

शब्दार्थ-त्रय दिवस अप्रिकायनुं आयुष्य होय वे- मनु-
ष्य अने तिर्यच त्रय पल्ल्योपम आयुष्यवाला होय वे, देवता अ-
ने नारकी तेवीस सागरोपमनां आयुष्यवाला होय वे. व्यंतर
देवता एक पल्ल्योपमनां आयुष्यवाला अने ज्योतसी देवता एक
लाख वर्ष अधिक एवी एक पल्ल्योपमना आयुष्यवाला होयवे.

असुराण अहियअपरं, देसूणउपद्धयं नवनिकाए ॥

वारसवासूणपणदिण-उमास उक्किठ विगल्लान् ॥२८॥

शब्दार्थ-असुर कुमारोनुं एक सागरोपमयो कांश्चक अ-
धिक आयुष्य होयवे. नव निकायनुं देसे उण वे पल्ल्योपमनुं, वि-
कल्लेइयि [वेइइ, तेरिइ अने चौरिइनुं] अनुक्रमे वारवर्ष, षण्णप-
चास दिवस अने ष मासनुं ए सर्वं उत्कृष्ट आयुष्य जाणवुं. २८

पुढवाइदसपयाणं. अंतमुहुत्तं जहन्नआजठिइ ॥

दससहसवरसठिइआ, चवणाहिवनिरयवंतरिया २९

शब्दार्थ-पृथ्वी कायादि [पांच श्रावरं, त्रण विकलेंद्रि
तिर्यंच अने मनुष्य] ए दशनी जघन्यत्री आयुष्यनी स्थिति ए
अंतमुहूर्त्तनी ठे, जवनपति, नारकी अने व्यंतर देवताउ दश
जार वर्षनी जघन्य स्थीतिवाला ठे. ॥ २९ ॥

वैमाणिय जोइसिया, पद्मनतयठंसआउआ हुंति ॥

हवे त्रण गायापी पर्याप्ति, किमाहार अने संज्ञा ए त्रण द्वार कइं छे.

सुरनरतिरिनिरएसुं, ठपज्जती थावरे चउगं ॥३०॥

शब्दार्थ-वैमानीक अने ज्योतसी देवताउ एक पद्योम अं
तेनो आठमो जाग एम अनुक्रमे आयुष्यवाला होयठे. (इति स्था
द्वार) देवता, मनुष्य, तिर्यंच अने नारकीने विषे ठ पर्याप्ती होयठे
तथा श्रावरने विषे चार पर्याप्ती होयठे. ॥ ३० ॥

विगले पंच पज्जती, ठदिसि आहार होइ सवेसिं ॥

पणगाइपण जयणा, अह सन्नीतिय जणिस्सामि ३१

शब्दार्थ-विकलेंद्रियने विषे पांच पर्याप्ती होयठे. (इति पर्याप्ति
द्वार) सर्वे जीवोने ठ दिशाने विषे आहार होयठे. पांच दिशा आदि
पदने विषे जजना ठे. (इति किमाहारद्वार) हवे त्रण संज्ञा जणीश. ॥

चउविहसुरतिरिएसु, निरएसु य दीहकालगी सणा ॥

विगले हेउवणसा, सन्नारहिआ थिरा सवे ॥३१॥

शब्दार्थ-चार प्रकारना देवता, तिर्यंच अने नारकीने विषे
दीर्घकालिकी संज्ञा होयठे. विगलेंद्रियने विषे हेतुपदेशिकीसंज्ञा
होयठे अने सर्वे श्रावरो संज्ञा रहित होयठे. ॥३१॥

माणुआण दीहकालिअ, दिछिवाउवणसिआ केवि ॥

हवे सादा छ गायापी गति संज्ञा कहे छे.

पज्जपणतिरिमाणुअ चिय, चउविहदेवेसु गउंति ॥३३॥

शब्दार्थ-मनुष्यने दीर्घकालिकी संज्ञा होयठे अने केटलाक

मनुष्यने दृष्टिवाद्योपदेशिकी संज्ञा पसा होय ठे. (इति संग्रहा)
पर्याता पंचोद्वि एवा तिर्यंच अने मनुष्य निश्चे चार प्रकारना
देवताने विभे जायठे. ॥ ३३ ॥

संखात्रपङ्क्तप-णिद्रितिरियनरेसु तहेव पङ्क्ते ॥

चूडगपतेयवणो. एणसु द्विय सुरागमाणां ॥३४॥

शब्दार्थ-संख्याता आयुष्यवाला पर्याता पंचोद्वि तिर्यंच
अने मनुष्यने विभे, तेमज पर्याता पृथ्वीकाय, अकाय अने मध्ये
क वनस्थानि काय ए पांचने विभे निश्चे देवतानुं उत्पन्न ध्रुं घायठे.

पङ्क्तसंखगप्रय-तिरीयनरा निरयसतगे जंति ॥

निरज्वश एण-सु उप्पङ्कति न सेसेसु ॥३५॥

शब्दार्थ-पर्याता अने संख्याता आयुष्यवाला गर्जज तिर्यंच
अने मनुष्यो, सात नरकने विभे उत्पन्न घायठे अने नरकमांशो
निकलेला जीवो ए वेने विभे उत्पन्न घायठे. बाकीना दंनकेने
विभे उत्पन्न न घाय. ॥ ३५ ॥

पुदवीआजवणन्सइ-मप्रे नारयविवज्जिया जीवा ॥

सवे उववङ्कति. नियनियकम्माणुनाणेणां ॥३६॥

शब्दार्थ-पृथ्वीकाय, अकाय अने वनस्थानिकापनी मध्ये
नारकीने वज्जोने सवे जीवो पोत पोतानां कर्माना अनुमानधी उ
त्पन्न घाय ठे. ॥ ३६ ॥

पुदवाइइसपणसुं. पुदवीआजवणन्सइ जंति ॥

पुदवाइइसपणहिय. तेजवाज्जनु उववाठ ॥३७॥

शब्दार्थ-पृथ्वीकायादि दहा पदनां पृथ्वीकाय, अकाय अने
वनस्थानिकपना जीवो उत्पन्न घायठे अने पृथ्वीकायादि दहा पदनां
निकलेला जीवो तेजकाय अने वायुकापने विभे उत्पन्न घायठे

तेजवाज्जगमाणां, पुढवीपमुहंमि होइ पयनवगे ॥

पुढवाइठाणदसगा, विगलाइं तिअ तहिं जंति ॥३८॥

शब्दार्थ—तेजकाय अने वाज्जकायनुं जवुं पृथ्वी कायादि नव पदने विपे होयठे. पृथ्वीकायादि दश स्थानकना जीवो त्रण वि कलेंडिय थायठे अने ते त्रण विकलेंडिय ते पृथ्वीकायादि दश पदमां जायठे. ॥ ३८ ॥

गमणागमणां गप्रय, तिरियाणां सयलजीवठाणेसु ॥

सव्वठ जंति मणुआ, तेजवाज्जसु नो जंति ॥३९॥

शब्दार्थ—गर्जज तिर्यंचोनुं सर्वे दंरुकोने विपे जवुं श्राववुं थायठे. मनुष्यो सर्वे दंरुकोने विपे जायठे. पण तेजकाय अने वा ज्जकायने विपेश्री मनुष्यो न थाय. (इति गतिद्वार) ॥ ३९ ॥

हचे त्रण गाथापो आगति द्वार कहे छे.

अंतरदीवा जुअला, तेसिं गईं हवंति इकारा ॥

दशजवणा इक्वणे, आगइं मणुअतिरिएसु ॥४०॥

शब्दार्थ—अंतरदीपना युगलीयानुं श्राववुं दश जवनप ति अने एक व्यंतर एम अग्यारमां होयठे, अने ए अंतरदीपना जुगलीयामां उत्पन्न थवुं मनुष्य अने तिर्यंचथो होयठे. ॥४०॥

असन्नितिरिए गईं, वावीसा जोइसविमाणविणा ॥

आगइं थावरपंच, विगलपंचिंदितिरियनरा ॥४१॥

शब्दार्थ—असन्नि तिर्यंचनी गति ज्योतसी अने वैमानीक विना वागीश दंरुकमां होयठे अने असन्नि तिर्यंचमां उत्पन्न थवुं ते पांच थावर, त्रण विकलेंडिय, पंचेंडियतिर्यंच अने मनुष्यो मांथी होयठे. ॥ ४१ ॥

संमुत्तिम मणुआणां, दह गईं पंचथावरा विगला ॥

पंचिंदिय तिरियनरा, आगइं तेजवाज्जविणा ॥४२॥

शब्दार्थ—समुच्चिंम मनुष्योनी गति पांच धावर, त्रण विक
लेंडिय, पंचंडिय तिर्यंच अने मनुष्य ए दशमां धायठे अने समुच्चिं
म मनुष्यमां उत्पन्न धवुं ते तेजकाय अने वातकाय विना ते ध्राठ
मांधी धायठे. ॥ ४२ ॥ (इति आगतिश्वर)

इवे एक गाथापो वेदद्वार करे छे.

वेयतिय तिरियनरेसु, ईर्वापुरिसो चन्नबिहसुरेसु ॥

धिरविगल्लनारणसु. नपुंसवेत्तं ह्वइ एगो ॥४३॥

शब्दार्थ—तिर्यंच अने मनुष्यने विषे त्रण वेद होय. चार प्र
कारना देवताने विषे म्हीवेद अने पुरुषवेद होय. पांच धावर, त्रण
विकलेंडिय अने नारकीने विषे एक एक नपुंसकवेद होयठे. ४३

इवे बे गाथापो अल बहुत्वद्वार करे छे

पल्लमाणुवायरग्गी, वेमाणीअन्नवणनिरयवंतरिया ॥

जोइसचन्नपाणतिरिअ, वेइंदितेइदिन्नूअक ॥४४॥

शब्दार्थ—पर्याप्ता मनुष्य सर्व दंडकथी घोळा, तेथी अमंग्या
त गुणा वादर अग्रिकाय, तेथी असंख्यात गुणा र्चमानीक, तेथी
असंख्यात गुणा जवनपति, तेथी असंख्यात गुणा नारकी, तेथी
असंख्यात गुणा व्यंतर, तेथी असंख्यात गुणा ज्योतर्मा, तेथी
संख्यात गुणा चन्नरिंडिय. तेथी अधिक पंचेंडिय तिर्यंच, तेथी
अधिक वेइंडिय, तेथी अधिक तेरिंडिय, तेथी असंख्यात गुणा पृ
थ्वोकाय, तेथी असंख्यात गुणा अष्कायठे. ॥ ४४ ॥

वाक्त्राणस्सइ चिय, अहिया अहिया कामेणिमे हुंति ॥

सवेवि इमे ज्ञाया, जिणा मये णंतसो पत्ता ॥४५॥

शब्दार्थ—तेथी असंख्यात गुणा वाक्त्राय अने तेथी अनंन
गुणा यनस्वत्रिकायठे. निधे ए सर्वे अनुक्रमे अधिक अधिक होय
ठे. हे जिनेश्वर! आ सर्वे पण ज्ञायो मे अनंनोवार प्राप्त इग्घाठे.

शब्दार्थ—चार, सात, आठ, नव अने अशीस एतला शिखरोनी संख्याये करीने अनुक्रमे सोल वे, वे, उगणचालीस अने वे ए पर्वतोने गुणतां सर्व मली चारसो समसठ शिखरो आयवे.

चतुतीसं विजयेसु, जसुकुमा अथ मेरुजंबूमि ॥

अथ देवकुराई, हरीकुमहरिस्सहे सधी ॥१७॥

शब्दार्थ—चोत्रीस विजयने विषे रूपज्ञशिखर चोत्रीसठे. मेरु अने जंबूवृक्ष उपर आठ आठ शिखर ठे. देवकुरुने विषे आठ शिखर, हरिशिखर अने हरिसशिखर ए सहित साठ जूमीशिखर ठे.

हे एक गाथाथी तीर्थदार कहे ठे.

मागहवरदामपजा—सं तिष्ठ विजयेसु ऐरवयजरहे ॥

चतुतीसा तिहिंगुणिया, उरुत्तरसयं तु तिष्ठाणं ॥१८॥

शब्दार्थ—चोत्रीस विजय, ऐरवत अने जतरत ए चोत्रीसमां माग प, गरदाम अने प्रजास एवा एक नामनां चोत्रीस तीर्थ ठे. तेथी ते चोत्रीसने प्रण गुणा करतां सर्व मलीने एकसोने वे तीर्थ आय ठे.

हे एक गाथाथी श्रेणीदार कहे ठे.

विज्ञाह्य अजिजगी—य सेढीउ डुत्रि डुत्रि वेअहे ॥

इय चतगाण चतुतीसा, ठतीममयं तु सेढीणो ॥१९॥

शब्दार्थ—दरेक वेताठ्य पर्वत उपर विद्याधर अने अजियो गीहेंदय तेमनी दंकेनी यवे यवे श्रेणीयो ठे; तेथी ते चार श्रेणीयो ने चोत्रीस गुणा करतां एकसो उत्रीस श्रेणीयो आयठे. ॥१९॥

हे एक गाथाथी विजयदार अने दशदार कहे ठे.

चकीनेयवाहं, विजयाहं इच्छंति चतुतीसा ॥

मह दह उ पठमाहं, कुरुमु दगगं ति मोलमगं ॥२०॥

शब्दार्थ—अदिं चक्रवर्तीये नीतित्री विजया चोत्रीसठे. तेम व अदिं पठादि म्हाडा ह्दां व ठे अने कुरुदंभमां ददा इह ठे.

(४९)

सर्व मली सोल इह प्रायठे ॥ २० ॥

इवे उ गाथायी नदीद्वार करे छे.

गंगा सिंधु रक्ता, रक्तवई चउ नइउ पत्तेयं ॥

चउदसहिं सहस्सेहिं, समगं वञ्चति जलहिमिं ॥२१॥

शब्दार्थ—गंगा, सिंधु, रक्ता अने रक्तवती ए चार नदीयो ठे.

ते दरेक नदी चौदहजार परिवार सहित समुद्रमां जायठे. चारे नदीयोना परिवार ठपन्न हजार ठे. ॥ २१ ॥

एवं अप्रंतरिया, चउरो पुण्ण अप्ठविस सहस्सेहिं ॥

पुण्णरवि ठप्पन्नेहिं, सहस्सेहिं जंति चउसल्लिला ॥२२॥

शब्दार्थ—वली एवीज रीत हिमवंतादिकनी अप्र्यंतर चार

नदीयो प्रत्येक अठवीस हजार नदीयोना परिवार सहित जाय ठे. [चार नदीयोना परिवार ११२०००] अने हरिवर्ष क्षेत्रनी

अने रम्यक क्षेत्रनी चार नदीयो प्रत्येक ठप्पन्न हजार नदीयोना परिवार सहित जायठे [चार नदीयोना परिवार—२२४०००]

कुरुमझे चउरासी, सहस्सा तहय विजय सोलसेसु ॥

वत्तीसाण्ण नईण्णं, चउदस सहस्साइं पत्तेयं ॥२३॥

शब्दार्थ—देवकुरु उत्तरकुरुमां ठ नदीयोना सर्व परिवार

चौरासी हजारना ठे अने सोल विजयमां वत्रीस नदीयो ठे, तेमां दरेकने चौदहजार नदीयोना परिवार ठे. ॥ २३ ॥

चउदस सहस्स गुणिया, अरुनीस नइउ विजयमल्लिला ॥

सीउयाए निवमंति, तहय सीयाइएमेव ॥२४॥

शब्दार्थ—ए वत्रीस नदीयोने चौदहजार गुणतां चारलाख

आरुत्रीस हजार प्राय ठे. तेमज विजयमांदेली आरुत्रीस नदी योने पण चौदहजार गुणतां सर्व मली पांचलाख वत्रीस हजार प्राय. एटली नदीयो सीतोदामां तेमज सोतामां मले ठे. २४

सीया सीतयाविय, वतीस सहस्स पंचलस्केहिं ॥

सध्वे चउदस लस्का, उप्पन्न सहस्स मेलविया ॥१५॥

शब्दार्थ—सीता अने सीतोदा ए वे नदीयो प्रत्येक पांचला ख वतीस हजारना परिवारवाली ठे. ते सर्वे एकगी करतां चौद लाख उप्पन्नहजार आय. [१४५६०००] ॥ १५ ॥

ठ जोयण सकोसे, गंगासिंधूण विन्नरो मूले ॥

दसगुणित पद्यंते, इय इडुगुणणेणं सेसाणं ॥१६॥

शब्दार्थ—गंगा अने सिंधु नदीनो मूलमां विस्तार सवा ठ जोजन ठे. तथा ठेने तेथी दश गुणो [६१॥ जोजन] विस्तार ठे ए प्रमाणे वीजी नदीयोनो तेथी बमणो विस्तार जाणवो. १६

जोयणसयमुच्चिन्ना, कणायमया सिंहरिचुद्धहिमवंता ॥

रूपिमहाहिमवंता, इसु उच्चा रूप्पकणायमया ॥१७॥

शब्दार्थ—सुवर्णमय शिखरी अने लघुहिमवंत ए वे पर्वतो एक तो योजन उंचा ठे. रूपानो रूपीपर्वत अने सुवर्णनो महाहि मवंत पर्वत ए वे वसो जोजन उंचा ठे. ॥ १७ ॥

चत्तारि जोयण सए, उच्चिन्धो निसढनोलवंतो य ॥

निसढो तवणियमउ, वेरुलित्त नीलवंतो य ॥१८॥

शब्दार्थ—नैपथ अने नीलवंत ए वे पर्वतो चारसो जोजन उंचा ठे. तेमां नैपथ तपावेला सुवर्ण सरखो अने नीलवंत लीला रत्नना वर्ण सरखो ठे. ॥ १८ ॥

सध्वेवि पध्वयरा, समयखीतंमि मंदरविहुणा ॥

धरणीतले मुवगाढा, उस्सेय चउठ जायंमि ॥१९॥

शब्दार्थ—फक्त अढीचीपना मेरु विना काल अथवा क्षेत्र ए वेयने विपे सर्वे साश्वतापर्वतो उंचपणाना चौथाजागेपृथ्वीमां उभाहोयठे.

(५१)

खंमाई गाहाहिं, दसहिं दारेहिं जंबूघीवस्स ॥

संघयाणी सम्मत्ता, रइया हरिञ्जदसूरिहिं ॥३०॥

शब्दार्थ—खंमावादिकनी गाथाए करीने दश द्वारथी हरिञ्ज
सूरिये रचेली जंबूघीपनी संग्रहणी समाप्त पर. ॥३०॥

चैत्यवंदन भाष्य.

वंदित्तु वंदाणिज्जे, सधे चिश्चंदणाइसुविचारं ॥

बहुवित्तिज्ञासत्तुणी—सुयाणुसारेण वुत्तामि ॥ १ ॥

शब्दार्थ—वंदन करवा योग्य एवा सर्वं (पांच) परमेष्ठीने
वांदीने चैत्यवंदन, गुरुवंदन अने पञ्चखाणना उत्तम विचारने बहु
वृत्ति, ज्ञाप्य अने चूर्णिरूप सूत्रना अनुसारे हुं कहीश. ॥१॥

चार गाथाथी २४ द्वार करेछे.

दहतिगअहिगम पाणंगं, दुदिसितिहुग्गहतिहाउवंदाणया
पाणिवायनमुक्कारा, वणा सोलसयसीयाला ॥ २ ॥

शब्दार्थ—१ नैपधिक आदि दशत्रिक, २ पांच अहिगम, ३
स्त्री पुरुषने उजा रदेवानी वे दिशा, ४ जघन्य अध्यम, उत्कृष्ट
त्रण अवग्रह, ५ त्रण प्रकारनुं चैत्यवंदन, ६ पांच अंगे प्रणिपात,
७ नमस्कार, ८ नवकार प्रमुख नव सूत्रना सोलसोने सुमताली
श अक्षर—॥ २ ॥

इगसीइसयं तु पया, सगनउइसंपयाउ पाणदंमा ॥

वारअहिगार चउवं—दणिज्जसरणिज्जचउहजिणा ॥३॥

शब्दार्थ—चली एनवकार प्रमुख नव सूत्रना एकसोने एका
सो पद, १० ए नवसूत्रनी सत्ताणु संपदा, ११ नमुत्तुणादि पांच
दंड, १२ द्वार अधिकार, १३ वांदवायोग्य, १४ शरण करवा योग्य,
१५ नामस्थापनादिक चार प्रकारना जिन—॥३॥

चन्द्रो थुङ् निमित्तञ्च-वारहहेतुञ्च सोलत्रागारा ॥
गुणवीसदोसञ्चस्स-ग्गमाणथुत्तं च सगवेला ॥ ४ ॥

शब्दार्थ-१६ चार प्रकारनी स्तुति, १७ पापरूपणादिक
आठ निमित्त, १८ फल साधवना वार हेतु अने १९ अपवादथी
सोल आगार, २० काञ्चस्सग्गमां उगणीश दोष, २१ काञ्चस्सग्गनुं
प्रमाण, २२ वीतरागनीस्तुति अने २३ दररोज सात वखत चैत्यवंदन
दसत्रासायणचाञ्च, सब्बे चिङ्खंदाणाइं ठाणाइं ॥

चञ्चवीसद्वारेहिं, दुसहस्सा हुंति चञ्चसयरा ॥ ५ ॥

शब्दार्थ-२४ देरामां चैत्यवंदन वखते तांबुल प्रमुख दश
आशातनानो त्याग. आ उपर चारे गाथामां कहेला चोवीश द्वारे
कर्मिने सर्वं मली चैत्यवंदननां स्थानको वे दजार अने चुमो
तर थाप ठे. ॥ ५ ॥

एवं दश प्रिकनां नाम कहेछे.

तिन्नि निसिद्धि तिन्निञ्च, पयाहिणा तिन्नि चैव य पाणामा
तिविद्धा पूया य तहा, अवत्ततियजावणां चैव ॥ ६ ॥

शब्दार्थ-१ अण निसिद्धी, २ अण प्रदक्षिणा अने ३ अण प्र
णाम, ४ अण प्रकारी पूजा, यली तेमज ५ अण अवस्थानुं जावणुं-
तिदिग्गिनिग्गणाविग्गं, पयञ्चमिपमज्जाणां च तिसकुत्तो ॥
वज्जाइतियं मुद्दा-तियं च तिविद्धं च पणिदाणां ॥७॥

शब्दार्थ-६ अण दिशामां जोयानुं विग्गण अने ७ अणवार पण
मृखवानी नृमिनुं प्रमाज्जन, ८ वर्णादिकनुं आवंयन, ९ यतो अण मु
डा अने १० अण प्रहारनुं प्रणिधान. ११ दशप्रिकनां नाम जाणवा. ॥

अण निविद्धा कये कये देहाणे करेवी ने करेछे.

घरजिणद्धरजिणपञ्चा-याशरञ्चापञ्च निग्गिद्धित्तिगं ॥

अग्गदां मज्जे. नट्टया चिङ्खंदाणागमये ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—घर, जिनमंदिर अने जिनपूजाना व्यापारना त्या गथी त्रण निसिहि थापठे. तेमां प्रथम जिनमंदिरना आगला वा रणामां, गजारासां अने चैन्यवंदनने अवसर एम त्रण निमित्ति साचववो. ॥ ८ ॥

इवे प्रणाम त्रिक करेते.

अंजलिवक्षे अक्षो—गात्र अ पंचंगत्र अ तिपाणामा ॥

सवठ वा तिवारं. सिगइनमाणे पाणामतियं ॥ ९ ॥

शब्दार्थ—१अंजलीवळ प्रणाम, २अक्षोवनत प्रणाम, ३ पंचांग प्रणाम ए त्रण प्रणाम जाणवा. अथवा सर्व प्रणाम करवाने व गते प्रणवार मस्तक नमाववुं ए पण त्रण प्रणाम जाणवा. ॥

इवे पुजा त्रिक करेते.

अंगगजावजेया, पुष्पादारग्युद्धिं पूयतिगे ॥

पंचोपयाग अक्षो—त्रयारमदोवयाग वा ॥१०॥

शब्दार्थ—पुष्प फेडागदिवे करीने अंगपूजा, फावादि मृक्या घी अमपूजा अने स्तुतिघी जायपूजा एम त्रण जातनी पूजा थापठे. अथवा पंचोपचार पूजा, अष्टोपचार पूजा अने सर्वोपचार पूजा ए पूजात्रिक थापठे. ॥ १० ॥

इवे अक्षया त्रिक करेते

जाविळ अयद्यतिपं. पिंरुपचरुख्यगतियतं ॥

उठमन्नकेयलितं. मिश्रतं चैव तस्मिन्ने ॥ ११ ॥

शब्दार्थ—हे जवजीव! तुं जगयंतनी सिंगर्यादि त्रण अय र्या जाण्य. तेमां पिंरुघ्यावरघ्याने उठरघ्यावरघ्याये, पदरघ्यावरघ्या ने फेरलीहानावरघ्याये अने रुपरघितावरघ्याने मिश्रवरघ्याये जायवी. एज निधे ते सिंगर्यावरघ्याने अर्थडे. ॥ ११ ॥

ए एव अक्षया वदी क्षारी हेमां साय करेते.

एह्यणचगेहिं ठञ्म-उवञ्च पम्हिरगेहिं केवलियं ॥
पलियं कुस्सग्गेहि य, जिणस्स ज्ञाविज्ज सिधत्तं ॥११॥

शब्दार्थ-जिनराजनी न्हवण, परखाल अने पूजाये करीने उच्चस्थावस्था ज्ञाववी; आठ प्रातिहार्ये करीने केवली अवस्था ज्ञाववी अने पलोठीवालीने काठस्तग्गने आकारे करीने सिद्धवस्था ज्ञाववी. ॥ ११ ॥

इये छ दिशायां जांवाथी निवर्तयानुं त्रिक करेछे.

उडाहोतिरियाणां, तिदिसाणनिरस्काणां चइज्जहवा ॥
पत्तिमदाहिणवामाणा, जिहामुहनउदिठिजुउ ॥१३॥

शब्दार्थ-उंचे, नीचे अने आहुं अवलुं ए त्रण दिशाए जोयुं त्यजी देयुं. अथवा पोतानी पाठल, जमणीवाजु अने डावीवाजुं जोयुं त्यजी दइ फक्त जिनेश्वरनां मुग्घने विषे दृष्टि राखवी. १३

इये भालंवन अने मुद्रा त्रिक करेछे.

वन्नतियं वन्नञ्जा-खंवाणमालंवाणां तु पम्माई ॥

जोगजिणमुत्तिसुत्ती-मुहाजेणां मुहत्तियं ॥ १४ ॥

शब्दार्थ-वर्णालंवन, अर्थालंवन, अने प्रतिमालंवन ए त्रण वर्णात्रिक जाणया. तेमां प्रतिमादिक शब्दथी ज्ञाव अरिदंताविनुं तथा श्यापनादिकनुं ग्रहण करयुं. वलो योगमुद्रा, जिनमुद्रा अने मुक्तामुक्तिमुद्रा एवा मुद्राना जेदथी मुद्रात्रिक जाणयुं. १४

अथप योगमुद्रानुं स्पष्ट करे छे.

अत्रुणंतग्गिअंगुत्ति-कोसागारेहिं दोहिं हवेहिं ॥

पिटोवरि कुप्पग्गिसं-त्रिण्हिं तद् जोगमुदत्ति ॥१५॥

शब्दार्थ-परस्पर यंत्र शायनी दमं आंगुली अंतरित कोला कर्मजना दोनाना आकारवाला तेमज पेटनी उपर यंत्र कोणीठ मूकली एवा ये दाय करीने रहयुं. ते जोगमुद्रा करेयापठ. १५

(५५)

इवे जिनमुद्रानुं लक्षण करे छे.

चत्तारि अंगुलाइं, पुरउं ऊणाइं जउ पञ्चिमउ ॥

पायाणं उस्सग्गो, एसा पुण होइ जिणमुदा ॥१६॥

शब्दार्थ—बली जेमां पगना आगला पहुँचाने परस्पर चार आंगलनो आंतरो राखीने अने पाठली पानीनी बाजुनो कांइ उंगो आंतरो राखीने जे काउस्सग्ग करवो ए जिनमुद्रा होयवे.

इवे मुक्ता शुक्ति मुद्रा करेछे.

मुत्तासुत्तीमुद्दा, जउ सुमा दोवि गप्पिआ हउ ॥

ते पुण निलाम्भेसे, लग्गा अन्ने अलग्गति ॥१७॥

शब्दार्थ—जेमां बने पणं हाथ सरखी रीते गर्जित राखी अने ते बने हाथ ललाटना मध्ये लगाइया होय (अहिं कोइ आचार्यने मते) न लगाइया होय तोपण मुक्ताशुक्तिमुद्रा कहेवाय छे.

इवे कइ मुद्राये कइ क्रिया करवी ते करे छे.

पंचंगो पणिवाउ. थयपाठे होइ जोगमुदाए ॥

वंदण जिणमुदाए. पणिहाणं मुत्तिमुदाए ॥१८॥

शब्दार्थ—जोगमुद्राये करीने पंचांग प्रणिपात अने स्तवपाठ आयवे; जिनमुद्राये वंदन अने मुक्ताशुक्ति मुद्राये प्रणिधान पायवे.

इवे प्रणिधानत्रिकुं स्वरूप करे छे.

पणिहाणतिगं चेइय—मुणिवंदणपउणासरुवं या ॥

मयवयकाएगतं, सेसतिपउो उ पपडुत्ति ॥ १९ ॥

शब्दार्थ—चैत्यवंदन, मुनिवंदन अने प्रार्थनास्वरूप ए अल प्रणिधानत्रिक जाणवुं. अथवा मन, वचन अने पणुं करवुं ते प्रणिधानत्रिक कहेवाय. तमा त्रिवनो पगटज छे. ॥१९॥

हवे वीजुं पांच प्रकारनुं अभिगमद्वार करे छे.

सचित्तद्वयमुक्ताणामचित्त माणुक्ताणामगोगतं ॥

एगसामिन्नतरासंगं—ग अंजलि सिरसि जिगादिं १०

शब्दार्थ—१ सचित्त इत्यनो त्याग, २ अचित्त वस्तुते न त-
जवानी अनुज्ञा, ३ मननुं एकाग्रपणुं, ४ एकमाडी उत्तरासंग अने
५ जिनेश्वरनां दर्शन थये मात्रा उपर अंजलि जोरवी. ए पांच
अभिगम जाणवा. ॥ १० ॥

इय पंचविहाभिगमो, अहवा मुञ्चंति रायचिन्दाइ ॥

खगं ठतोवाणह, मज्जं चमरे अ पंचमए ॥११॥

शब्दार्थ—ए पूर्वे कहेला पांच प्रकारना अभिगम देवगुरु
पासे आवता साचववा, अथवा राजचिन्ह त्यजो देवां. ते राजचि-
न्ह आ प्रमाणे. १खड्ग, २उत्र, ३मोजडी, ४मुकुट, अने ५चामर.

हवे वे दिशिनुं वीजुं अने त्रण अवग्रहनुं चोथुं द्वार कहे छे.

वंदंति जिणे दाहिणा—दिसि छिआ पुरिस वामदिसि नारी

नवकरजहन्नु सठि—करजिठ मज्जुगहो सेसो ॥१२॥

शब्दार्थ—जिनेश्वरनी दक्षिण दिशा एटले जमणी वाजुपे
उजा रहीने पुरुषो वंदना करे अने वामदिशा एटले डावी वाजुए
उजा रहीने स्त्रीयो वंदना करे. प्रजुथी नवहाथ दूर रहेवाथी ज
घन्य, साठ हाथ रहेवाथी उत्कृष्ट अने नव तथा साठनी अंदर उ
जा रहेवाथी मध्यम अवग्रह थाय वे. ॥ १२ ॥

हवे चैत्यवंदन करवानुं पांचमुं द्वार कहे छे.

नमुक्कारेण जहन्ना, चिश्वंदण मय दंम्युश्जुअला ॥

पाणदंम्युश्चउक्कग—थयपणिहाणेहिं उक्कोसा ॥१३॥

शब्दार्थ—नवकार बोली नमस्कार करवाथी जघन्य, अरि
हंत चेश्याणानुं युगल तथा चार स्तुति बोली नमस्कार करवाथी

मध्यम अने पाच नमुवृणरूप दंरुक तथा आठ स्तुतिनां स्तवन
अने त्रण प्रणिधाने करीने उत्कृष्ट चैत्यवंदना जाणवी. २३
अन्ने विंति गेणं, सकृत्त्रणं जहन्नवंदणया ॥
तद्गतिगेण मघ्रा, उक्कोसा चउहिं पंचहिं वा ॥२४॥

शब्दार्थ—केटलाक आचायां एम कहे ठे के, एकवार नमुवृण
बोलवाथी जघन्य, वे अथवा त्रणवार नमुवृण बोलवाथी मध्यम अने
चार अथवा पांचवार नमुवृण बोलवाथी उत्कृष्ट चैत्यवंदन पाय ठे.
इवे छट्टं प्रणिपात तथा सातभुं नमस्कार द्वाग करे छे.

पंचंगो पणिवाउ, दोजाणू करडुगुत्तमंगं च ॥
सुमहत्तनमुकारा, इग डग तिग जाव अठसयं॥२५॥

शब्दार्थ—त्रे हींचण वे हाथ अने मस्तक ए पांच श्रंग पृथ्वी
ने अडामी नमस्कार करवा ते पंचांग प्रणिपात कहेवाय. तेमज
एक, वे, त्रणथी मांती एकसो आठ नवकार कहेवा ते नमस्कार
कहेवाय. ॥ २५ ॥

इवे भरत, पद अने संपदानो संख्याना प्रणहार एकठा करे ते.

अमसठि अठवीसा. नयनउपसयं च डसयसगनउया॥
दोगुणातिस डसठा, डसोलअमनउयसयडयन्नसयं २६.

शब्दार्थ—१ नवकारनां अठसठ, २ इछामि खमासमणनां अ
बावीश, ३ इरिया यहियानां एकसोने नवाणुं, ४ नमुवृणनां बसोने
सचाणुं, ५ अरिहंत चेइयाणनां बसो उंगणप्रीस, ६ लोणस्सनां ब
सोने साठ, ७ पुस्करवरदीनां बसोने सोल, ८ ति.जाणं बुझाणनां
एकसो अजाणुं, ९ जावंति चेडयाइं, जावंति केविसाहु अने जयवि
राय ए प्रणनां एकसो घायन अहर ठे. सर्व भलो १६४३ घायठे.

इअ नवकारखमासण—इरियसकृत्त्राइंमेसु ॥
पणिहाणेषु अ अडस—तवन्नसोलसयसीपाला॥२७॥

शब्दार्थ—ए प्रमाणे नवकार, खमासमण, श्रियावहि, शक्र
स्तवादि दंडकमां अने प्रणिधानमां एम सर्व मली फक्त एकवार
उच्चार करेला अक्षरो सोलसोने सुडताली थाय ठे. ॥२७॥

नववत्तीसतित्तीसा, तिचत्तअरुवीससोलवीसपया ॥

मंगलश्रियासक—ठयाइसु इगसीइसयं तु पदा ॥२८॥

शब्दार्थ—नवकार, श्रियावहि अने नमुवुणादि सात पदमां
नव, वत्रीश, तेत्रीश, तेंतालीश, अठावीश, सोल अने वीश एट
ला पदो होय ठे. सर्व मलीने एकसो एकाशी पद थाय ठे. २८

अठठ नव छ य अ—ठवीस सोलस य वीस वीसामा ॥

कमसो मंगलश्रिया—सकठयाइसु सगनऊई ॥२९॥

शब्दार्थ—नवकार, श्रियावहि अने नमुवुणादिक सात सूत्र
मां अनुक्रमे आठ, आठ, नव, आठ, अठावीस, सोल अने वीश
एटला विसामा एटले संपदा होय ठे. सर्व मलीने सत्ताणुं थाय.

तेन वातने फतोयीं कहे ठे.

वणठसठि नवपय, नवकारे अठसंपया तठ ॥

सयसंपय पयतुद्धा, सत्तरकरअठमी डुपया ॥३०॥

शब्दार्थ—नवकारमां अरुसठ अक्षर, नव पद तथा आठ संपदा
होय ठे. तेमां सात संपदा तो सात पदनी ठे अने सत्तर अक्षरनी
आठमी संपदा ठेला ये पदनी ठे. ॥ ३० ॥

पणिवापअरुकराई, अठावीसं तहा य इगियाए ॥

नवनउयमरुसयं, दुतीसपय संपया अठ ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ—इष्टामिग्यमासमणनां अक्षर अठावीश तेमज इ
गियावहिनां एकसो नवाणुं अक्षर, वत्रीश पद अने आठ संपदा ठे
डुगडुगडुगचठडुगपाण—इगारुगडुगियसंपयादिपया ॥

उन्नाठरिगमपाणा—जेमणुंदिअनितम् ॥ ३२ ॥

(५९)

शब्दार्थ-इरियावहिनी आठ संपदाना अनुक्रमे वे, वे, एक चार, एक, पांच, अगीपार अने ठ एटला पदो जाणवां अने आ दि पद तो इच्छामि, इरियावहियाए, गमणागमणे, पाणक्रमणे, जे मे जीवा, एगिंदिया, अजिहया अने तस्तउत्तरी ए आठ जाणवा.

इवे इरियावहिनी आठ संपदानां नाम करे छे.

अप्रुवगमो, निमित्तं, उद्देअरहेतुसंगहे पंच ॥

जीवविराहणापनि-कमणाजेयउ तिमि चूलाए ३३

शब्दार्थ-अन्युपगम, निमित्त, उध, इतरहेतु अने पांचमी सं प्रद.वती जीव, विराचना अने प्रतिक्रमणएवा जेदथी इरियावहिनी आठ संपदा वे. तेमां प्रथमनो पांच मूलसंपदा अने पाठलनी ग्रण चूलिका संपदा जाणवी. ॥ ३३ ॥

इवे नमुच्युणना प्रत्येक संपदानां पदनी संख्या तथा आदिपद परे छे.

उतिचउपाणपाणपाणउच-उतिपदसकउपसंपयाइपया॥

नमुआइगपुरिसोलो-गअअयधम्मप्पजिणासधं ॥३४॥

शब्दार्थ-नमुच्युणनी नवसंपदामां अनुक्रमे वे, घण, चार, पांच, पांच पांच, वे, चार अने ग्रण एटला पदनी संख्या होयवे. तेमां दरेकनुं आदि पद, नमुच्युणं, आइगराणं, पुगिसुनमाणं, लो गुणमाणं, अअयदयाणं, धम्मदयाणं, अपनिहयचरनाण, जिणा णं, सव्वनूणं, सव्वदरिसिणं ए जाणवां. ॥ ३४ ॥

इवे नमुच्युणनी नव संपदाना नाम करे छे.

धोअअसंपया उद-इपरहेऊवउगतवेऊ ॥

सविसेसुवउगसरुव-हेऊ नियसमफल मुवे॥३५॥

शब्दार्थ-स्तोतव्य संपदा, सामान्य हेतु संपदा, विदोप हेतु संपदा, उपयोग संपदा, तद्हेतु संपदा, सविदोपउपयोगहेतु संपदा, स्वरुपहेतुसंपदा, निजसमफलदसंपदा अने मोहसंपदा,

ए नमुद्युणनी नवसंपदानां नाम कर्त्तव्यां ॥ ३५ ॥

इवे नमुद्युणनां अक्षर, संपदा अने पदनी मर्व मंख्या कहे छे.

दोसगनऊआ वणा, नवसंपय पयतितीस सकथए ॥

चेइयथयठसंपय, तिचत्तपय वणइसयगुणतीसा ॥३६॥

शब्दार्थ—नमुद्युणमां सर्व मली वसोने सत्ताणुं अक्षर, नव संपदाअने तेत्रीश पद जाणवा. वली अरिहंत चेइयाणंमां सर्व मली आठ संपदा, त्रंतालीश पद अने वसोने उंगणत्रीश अक्षर जाणवा.

चैत्यस्तव (अरिहंत चेइयाणंनी) संपदाना पदनी मंख्या तथा आदि पद कहेछे.

उठसगनवतियठचठ—ठप्पयचिइसंपयापया पढमा ॥

अरिहंवंदाणसिद्धा—अन्नसुहुमएवजाताव ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ—आठ संपदामां अनुक्रमे पहेलेथी वे, ठ, सात, नव, त्रण, ठ, चार अने ठ एटलां पदो होय ठे. तेमज तेनां अरिहंत चेइयाणं, वंदाण वत्तियाए, सःहाए, अन्नठ उत्तसिएणं, सुहुमेहिं अंगसंवालेहिं, एवमाइएहिं, जाव अरिहंताणं अने तावकायं. ए नव आदि पदो जाणवां. ॥ ३७ ॥

इवे चैत्यस्तवनो संपदानां नाम कहे छे.

अपुवगमो निमित्तं, हेठइगवहुवयंतआगारा ॥

आगंतुगआगारा, उस्सग्गावहिसरूवठ ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ—अन्युपगम संपदा, निमित्त संपदा, हेतु संपदा, एकवचनांत आगार संपदा, बहुवचनांत आगार संपदा, आगंतु क आगार संपदा, कायोत्तर्गाविधि संपदा अने रूप संपदा ए अरिहंत चेइयाणंनी आठ संपदाठ जाणवी. ॥ ३८ ॥

इवे नामस्त्वादिकनां पद विगेरेनी संख्या कहे छे.

नामथयाइमु संपय—पयसम अरुवीस सोलवीस कमा ॥

अडुरुत्तवण दोसठ—उसय सोलठ नउअसयं ॥३९॥

शब्दार्थ—नामस्तवादिक्ते विषे पद समान अठवीस, सोल
अने वीस अनुक्रमे संपदा जाणवी, तेमज वोजोवार नदि उचरे
जा अहरो वसो साव, वसो सोल अने एकसो अठायुं अनुक्र
मे जाणवा. ॥ ३९ ॥

पणिहाण उवन्नसयं. कमेण सगति चउवीस तितीमा ॥
गुणतीस अठवीसा, चउतीसिगतीस वार गुरुवाणा ४०

शब्दार्थ—प्रेणिधान सूत्रमां एकसो वावन अहरो जाणवा.
द्वे नवकारमां सात, खमासमणमां त्रण, इरियावदिमां चोवीस,
नमुहुणमां तेत्रीस, अरिहंत चेइयाणंमां तुंगणत्रीम, लोगम्ममां
अठवीस, पुस्करवरमां चोत्रीस, सिक्काणंमां एकत्रीस अने प्रणि
धान त्रणमां वार गुरु अहरो जाणवा. ॥ ४० ॥

इवे पांच इडकनुं अने तेने विषे देववांदवाना वार अधिकारुं
१-१२ पुं वार करे छं.

पाणदंमा सकृच्चय, चेइअ नामसुअ सिद्धचयइउ ॥

दोइग दोदो पंचे य, अदिगारा वारस कमेण ॥४१॥

शब्दार्थ—शक्रस्तव, चैत्यस्तव, नामस्तव, श्रुतस्तव अने सि
क्तव ए पांच दंमकठे. तेमां वे, एक, वे, वे अने पांच एम अनु
शमे सर्व मजीने वार अधिकारुं. ॥ ४१ ॥

इवे ए वार अधिकारना प्रथम पद करे छे.

नमु जेइअ अरिहं. लोग सघ पुस्करतम सिद्ध जोदेवा ॥

उचिं चत्ता येअ्रा, वज्जग अदिगार पढमपया ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ—नमुहुणं, जे अइआ, अरिहंत चेइयाणं, लोगम्म,
सव्यलोण, पुस्करवर, तमतिमिर, सिक्काणं दुस्काणं, जो देवा, उचिं,

१ लोगम्म, वाम्भारवदो अने सिद्धाणं बुद्धाणं.

२ जावंति येअ्रा, जावंति वेदिमाह अवे आ

३ व बोप्याए.

चचारि अठ,वेयावञ्च गराणं, ए चार अधिकारनां प्रथम पद जाणवा,
 हवे कथा अधिकारं कोने वांदवा ते कडे छे.

पढम अहिगारे वंदे, ज्ञावजिणे वीयएउ दवजिणे ॥

इगचइय ठवाणजिणे, तइय चउठंमि नामजिणे ॥४३॥

शब्दार्थ—प्रथम पदना अधिकारमां ज्ञावजिनने, श्रीजा अ
 धिकारमां इयजिनने, श्रीजा अधिकारमां एक चैत्य स्थापना जि
 नने अने चोत्रा अधिकारमां नामजिनने वांडुठुं. ॥ ४३ ॥

तिहुअणठवणजिणे पुण, पंचमए विहरमाण जिणठठे॥

सत्तमए सुयनाणं, अठमए सव सिद्ध थुई ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ—वली पांचमां अधिकारमां त्रण जुवनना स्थापना
 जिनने, ठवा अधिकारमां विचरता जिनने, सातमा अधिकारमां
 श्रुतज्ञानने अने आठमा अधिकारमां सर्व सिद्धी स्तुति जाणवी.

तिज्ञाहिव वीरथुइ, नवमे दसमे य उद्ययंतथुई ॥

अठवयाइ इगदिसि, सुदिठि सुरसमणा चरिमे ॥४५॥

शब्दार्थ—नवमा अधिकारमां तीर्थपति श्री वीरप्रभुनी स्तु
 ति अने दशमा अधिकारमां रेवताचलनो स्तुति जाणवी. तथा
 अगीयारमां अधिकारमां अष्टापदादिकनी अने ठेला अधिकारमां
 सुदृष्टि देवताना स्मरणरूप स्तुति जाणवी. ॥ ४५ ॥

नव अहिगारा इह ललि-अविठरा वित्तिआइ अणुसारा

तिणि सुयपरंपरया, वीयउ दसमो इगारसमो ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ—ए वार अधिकारमां १-३-४-५-६-७-८-९-१०-ए नव
 अधिकार ललित विस्तार नामना जाप्यनी वृत्ति आदिना अनु
 सारे जाणवा अने १-१०-११, ए त्रण श्रुतनी परंपराथी जाणवा.

आवस्सय चुणीए, जं जणियं सेसया जहिठाए ॥

तेणं उयंताइवि, अहिगारा सुयमया चेव ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ—जेम आवश्यक सूत्रनो चूर्णांने विषे कह्युंठे ते उं
 धिंतादि शेष अधिकार इच्छा प्रमाणे जाणवा. ते कारण माटे उं
 धिंत सेल इत्यादिक गाथाथी पण ते सर्व अधिकार निश्चे श्रुत
 मय जाणवा. ॥ १३ ॥

वीज सुयज्ञयाद्, अन्नं वन्नं तर्हि चैव ॥

सकृत्पंते पठित्तं, दधारिहवसरि पयमन्नो ॥४८॥

शब्दार्थ—बीजो श्रुतस्तवादि अधिकार अर्थथो श्रुतस्तवमां
 ज वर्षाव्यो ठे. वली शक्रस्तवना अंते जे कहेलो ठे ते इय्य अरिहं
 तने वांदवाना अचसरे प्रगट अर्थपणे जाणवो. ॥ ४८ ॥

असदाइत्राण्वक्तं, गोअन्नं अवारिअंति मज्जन्ता ॥

आयरणावि हु आणा, ति वयाणं सु बहु मन्नंति ॥४९॥

शब्दार्थ—“पापरहित अने गीतार्थांए नहि वारेला एवा मध्य
 स्थ पंक्ति गीतार्थ पुरुषोए करेली आचरणा पण निश्चे जगवंत
 नी आज्ञा जाणवी.” एवां वचनथी ज्ञवा पुरुषो ते आचरणे
 बहु माने ठे. ॥ ४९ ॥

इवे चार वांदवा योग्यतुं ११-१४-१५ मुं शाग करे ठे.

चउ वंदगिळ्ळ जिणामुणि, सुयसिद्धा इह सुराद् सरगिळ्ळा

चउह जिणा नाम उयाण, दधन्नावजिण जेण्णां ॥५०॥

शब्दार्थ—जिन, मुनि, श्रुत अने सिद्ध ए चार वांदवा योग्य ठे
 अने ए जिनशासनना अधिष्ठापक सम्यक् दृष्टि देवता स्मरण क
 र्या योग्य ठे. वली नाम, स्थापना, इय्य अने ज्ञाव एवा जिनना
 जेदे करीने जिनेश्वरना चार जेदे ठे. ॥ ५० ॥

इवे ए चार प्रकारना जिननुं स्वरूप चार निक्षेपाथी करे ठे.

नामजिणा जिणानामा, उयाणजिणा पुणा जिणंदपग्निमाउ
 दधजिणा जिणजीया, ज्ञावजिणा समयसराण्णा ॥५१॥

हवं एक दिवसमां चैत्यवंदन करवानुं २३ मुं द्वार कहे छे.

पम्कमणोचेइयजिमण, चरिमपम्कमणसुअणपम्किवोहे
चिइवंदण इअ जइणो, सत्तउवेला अहोरत्ते ॥५९॥

शब्दार्थ—प्रज्ञातना पम्कमण वखते, देहरे. जोजन वखते,
जोजन करचा पवी, सांजना पम्कमण वखते सूति वखते, पा
उली रात्रीये जाग्या पवी. एम रात्री दिवस मली साधुने सात
वखते चैत्यवंदन करवुं. ॥ ५९ ॥

पम्कमिअ गिहिणोवि हु, सग्गवेला पंचवेला इअरस्ता
पूआसु तिसंजासु अ, होइ तिवेला जहन्नेणं ॥६०॥

शब्दार्थ—पम्कमण करता एवा गृहस्थने पण सात वखत
अने न करनाराने पांच वखत चैत्यवंदन करवुं. वली जघन्यथी
तो अणे संध्याये पूजाना अवसरे अण वखत चैत्यवंदन करवुं.

हवे आशातनानां नामनुं २४ मुं द्वार कहे छे.

तंवल पाण जोयण, वाहाण मेहुण सुअणनिठवाणं ॥
मुत्तुचारं जुअं, वळे जिणानाह ऊगईण ॥ ६१ ॥

शब्दार्थ—तंवल खावुं, पाणी पीवुं, जोजन करवुं, जोमा
पंहरवा, कामचेष्टा करवी, शयन करवुं, धुंकवुं, लघु नीति करवी,
वनीनीति करवी अने जूवटुं रमवुं, ए दश आशातना जिनमं
दिरमां न्यजवी. ॥ ६१ ॥

हवे देव वादवानो विधि कहे छे.

इग्निमुक्कार नमुत्तुण, अरिहंत थुई लोग सध थुइ पुस्क।
थुइ सिद्धा येअ्या थुइ, नमुत्तु जावंति थय जयवी ॥६२॥

शब्दार्थ—इगियावदि, नयकार, नमुत्तुणं, अरिहंत चेश्याणं,
कहो एरु स्तुति कहेयो. पवी लोगस्स, सअवल्लोए कहो स्तुति
कहेयो. पवी पुम्कवर अने स्तुति कहेवी. पवी सिद्धाणं थुद्धाणं,

वेचावच्चगराणं श्रने स्तुति कहेवी. पठो नमुहुणं, जावंति चेइया
इं श्रने स्तुति कहोने ठेवट जयवोयराय पूर्णं कहेवा. ॥ ६२ ॥

इवे समाप्त करता छता फल कहे छे.

सखोवाहिविसुद्धं. एवं जो वंदण सया देवे ॥

देविंदविंदमहिअं. परमपयं पावइ लहुसो ॥६३॥

शब्दार्थ—आ प्रमाणे सर्व उपाधिथी रहित एवो जे माणस
निरंतर श्ररिदंत देवनी वंदना करे ठे ते इंशेना समूहे पूजेलां
परमपदने तुरत पामे ठे. ॥ ६३ ॥

गुरुवंदन भाष्य.

इवे वे गाथापी प्रण प्रकारना गुरुवंदननां नाम अने तेमां वे प्रका-
रनां वंदननुं स्वरूप कहे छे.

गुरुवंदण मह तिविहं, तं फिट्टा थोज वारसावत्तं ॥

सिर नमणाइसु पढमं, पुणं खमासमाण छुगि वीअं ॥१॥

शब्दार्थ—इवे गुरुवंदन त्रण प्रकारे ठे. ते फेटा वंदन, थोज
वंदन श्रने छदशावत्तं वंदन. तेमां मस्तकने नमाववादिकथी पहेलुं
श्रने वे खमासमाण देवाथी वीजुं वंदन थाय ठे. ॥ १ ॥

जह दूज रायाणं, नमिउं कळं निवेइउ पत्ता ॥

वीसळिउवि वंदिअ, गळइ एमेव इउउगं ॥ २ ॥

शब्दार्थ—जेम दूत प्रथम राजाने नमस्कार करीने पठो
कार्य निवेदन करे ठे श्रने राजाए रजा थापचाथी ते दूत फरी न-
मस्कार करी जायठे तेम आ देववंदनमां पण बेवार वंदना जाणवी.

इवे वंदन करवातुं कारण कहे छे.

आयरस्सउं मूलं, विणउ सो गुणवउ अ पम्विती ॥

सा य विहिवंदणाउ, विही इमो वारसावत्ते ॥ ३ ॥

शब्दार्थ-आचारनुं मूल विनय ठे अने ते विनय गुणवंती सेवा रूप जाणवो. वली ते सेवा विधिवंदनायी थायठे. ते विधि आ आगल द्वादशावर्त्त वंदनने विषे कहेसो. ॥ ३ ॥

हवे त्रीजुं द्वादशावर्त्त वंदन कहे छे.

तश्यं तु वंदनां दुगे, तत्रमिहो आइमं सयलसंधे ॥

वीयं तु दंसणीण य. पयच्छिआणां च तश्यं तु ॥ ४ ॥

शब्दार्थ-त्रीजुं द्वादशावर्त्त वंदन तो वे वांदणा देवायी था यठे. ते पूर्वे कहेला त्रण वंदनमां पहेलुं फेटावंदन चतुर्विध संघे परस्पर तेवा तेवा अवसरे करी शकाय अने वीजुं थोन्नवंदन गुणवंत मुनिने कराय अने त्रीजुं द्वादशावर्त्त वंदन तो आचार्य पदने विषे रहेला मुनिने कराय. ॥ ४ ॥

हवे ए वंदणानां पांच नाम कहे छे.

वंदन चिइ किइकम्मं, पूआकम्मं च विणायकम्मं च ॥

कायध्वं कस्स व के-णवावि काहेव कइखुत्तो ॥५॥

शब्दार्थ-वंदनकर्म, चित्तिकर्म, कृतिकर्म, पूजाकर्म अने विनयकर्म. ए पांच प्रकारे वंदन करवुं ते कोने? अने कोणे करवुं? वलो क्यारे अने केटलीवार? ॥ ५ ॥

कइज्जणयं कइसिरं, कइहि व आवस्सएहिं परिसुधं ॥

कइदोसविप्पमुक्कं, किइकम्मं कीस कीरइवा ॥६॥

शब्दार्थ-केटलीवार नमवुं? केटलीवार मस्तक नमाववुं? वली केटला आवश्यके करी शुद्ध थवुं? केटला दोपथी मुक्त थवुं? अने कृतिकर्म शा माटे करवुं? ॥ ६ ॥

हवे अण गाथायी वांदणाना बावीम द्वार कहे छे.

पणनाम पणाहरणा, अजुग्गपण जुग्गपण चउअदाया चउदाय पणनिसेहा, चउअणिसेह ठ कारणाया ॥७॥

(६९)

शब्दार्थ—१ वंदणाना पाच नाम, २ पांच उदाहरण, ३ पास
छादि पाच अयोग्य, ४ आचार्यादि पांच योग्य, ५ चार वादणा
देवराववाने अयोग्य, ६ चार देवराववाने योग्य, ७ पांच स्थानके
वांदणानो निषेध, ८ चार स्थानके वांदणानो अनिषेध, ९ वां
णानां आठ कारण—॥ ७ ॥

आवस्सय मुहाणंतय, ताणुपेह पणिस दोस वत्तीसा ॥

ठ गुण गुरुत्वाण डुग्गाह, डुठवीसस्कर गुरुपाणीसा ॥८॥

शब्दार्थ—१० आवश्यक, ११ मुदपत्तिनी पम्फिदणा, १२
शरीरनी पम्फिदणा, १३ ञण पञ्चीश पञ्चीश करवा- १३ वत्रीस
दोपनी निषेध, १४ ठ गुणनुं उपजयुं, १५ गुरु स्थापना, १६ वे
अवग्रह अने १७ वसो ठवीस अद्दरमां पञ्चीस गुरु वर्षा—॥८॥

पय अरुयन्न ठ ठाणा. ठ गुरु वयाणा आसायणत्तिसं
डुविहि डुवीमदागेहिं, चत्तसया वाणुडुठवाणा ॥९॥

शब्दार्थ—१८ अवायनं पद, १९ ठ स्थानक, २० ठ गुरुवचन,
२१ तेथीन आशातना अने २२ वे प्रकारनो चिधि. ए सर्व मत्तीने
चारसो वाणुं स्थानक ठे. ॥ ९ ॥

इवे पांच नामनुं १ सुं हार करे ठे.

वंदाणयं चिड्कम्मं, किड्कम्मं विणायकम्मपूअकम्मं ॥

गुरुवंदाणपाणनामा, दधे जाये डुहोहेणां ॥ १० ॥

शब्दार्थ—१ वंदनकर्म, २ चितिकर्म, ३ कृतिकर्म, ४ पूजा
कर्म अने ५ वित्तकर्म. गुरुवंदननां आ पांच नाम, इय अने जा
य एम वे प्रकारना सामान्यपी जाणवा. ॥१०॥ हा. १

इवे पांच स्थाननुं २ सुं हार करे ठे.

सीपलय मुकुडुण् यी—र कन्ह सेवगडु पाल्लण् सुंवे—॥

पंचे ए दिमंता. विट्कम्मो दण्जावेहिं ॥ ११ ॥

शब्दार्थ-वंदनकर्म उपर शीतलाचार्यनो, चितिकर्म उपर
कुल्लकाचार्यनो, कृतिकर्म उपर वीरा शालवीनो अने रुम्पानो,
पूजाकर्म उपर राजाना वे सेवकनो अने विनयकर्म उपर पातरु
तथा शांवनो दृष्टांत जाणवो. आ पांच दृष्टांत कृतिकर्म उपर
इत्य अने जावयी जाणवा. ॥ ११ ॥ हा. २

इहे पांच न वांदवा योग्यनुं १ जुं द्वार करे छे.

पासन्नो उसन्नो, कुसील संसत्तत्र अहाछंदो ॥
दुग दुगतिदुगागोविहा, अवंदणिङ्गा जिणामयंमि ॥१२॥
शब्दार्थ-पासन्नो, उसन्नो, कुसीलीयो, संसत्तो अने यथा
छंदो ए पांचेना अनुक्रमे वे, वे, व्रण, वे अने अनेक जेदो छे. जिन
अनमां ते पांच अवंदनीय जाणवा. ॥१२॥ हा. ३

इहे पांच वांदवाने योग्यनुं ४ जुं द्वार करे छे

आयगिय उयप्राण, पवतिथेरे तद्वेय गयणिण ॥
किञ्चकम्मनिङ्गाणा, कायद्य मिमेमि पंचन्हं ॥१३॥
शब्दार्थ-आनाय, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर अने तेमज
स्वार्थिन. निङ्गाने अर्थ ए पांचेने कृतिकर्म वंदन करवुं.

इहे चार पांचे वांदवा न करवयो अने चार पांचे करवयो मेनुं
५-४ द्वार करे छे.

माय पिअ जिठनाया, अउमावि तेह्य मद्य गयणिण ॥
किञ्चकम्म न कागिङ्गा, चउममाणाठ कुणांनि पुणां ॥१४॥
शब्दार्थ-माया, पिता, भ्रांटां जाइ तेमज गयथो ग्हाता
काउ कानार्थिकयो भ्रांटा, ए चार पांचे वांदवां देवगयणानुं न कर
वुं कउं चार अमज वांदवा अर्थ. ॥१४॥ हा. ॥-६

इहे चार वांदवाने वांदवा न करवुं ५-४ द्वार करे छे

१ वां. वा. सं., वा. ४ अर्थ १४१

विस्क्रित पराहुते, पमते मा कयाइ वंदिजा ॥

आहारं नीहारं, कुणमाणे काञ्च कामे अ ॥१५॥

शब्दार्थ—गुरु व्यग्र चित्तवाला, बीजी वाजु मुख करी वेठे ला, क्रोधवाला अथवा सूतेला, तेमज आहार अने नीहार करता होय अथवा करवानी इच्छा करता होय तो न वांदवा. १५

इवे चार स्थानके वांदणा देवानुं ८ मुं द्वार करे छे.

(अनुष्टुप् वृत्तम्)

पसंते आसण्णत्थे अ, उवसंते उवठिण्ण ॥

अण्णन्नवि तु मेहावी, किइकम्मं पञ्जळइ ॥१६॥

शब्दार्थ—शांत चित्तवाला, आसन उपर वेठेला, क्रोधादि रहित अने वंदेण इत्यादि कहेवा तैयार होय एवा गुरुने बुद्धिमान पुरुषोए आज्ञा मागवा पूर्वक वंदणा करवी. ॥१६॥ द्वा. ८

इवे आठ कारणे वांदणा देवानुं ९ मुं द्वार करे छे.

पम्भिकम्मणो सज्जाए, काञ्चस्सग्गे वराह पाहुण्ण ॥

आलोयण संवरणो, उत्तमठे य वंदणायं ॥ १७ ॥

शब्दार्थ—प्रतिक्रमणमां, स्वाध्यायमां, कायोत्सर्गमां अने अ पराध खमावचामां वांदणा देवा. वली नवा आवेला साधुने, आलोचनामां अने मासखमणादि तपरूप संवरमां तथा अंत संलेखना करता एम आठ कारणे वांदणा देवा. ॥ १७ ॥

इवे पचीस आवश्यकनुं १० मुं द्वार करे छे,

दोवणायं महाजाय, आवत्ता वार चञ्चसिर ति गुत्तं ॥

दुपवेसिग निक्कमणां, पणवीसावसय किइकम्मै ॥१८॥

शब्दार्थ—वेवार अवनत, एकवार यथाजात, वारवार आवत्तं, चारवार शिरनुं अवनत, त्रण गुप्ति, वेवार अवग्रहमां प्रवेश करवो अने एकवार निकलवुं. ए पचीस आवश्यक वांदणामां

होय ठे. ॥ १७ ॥ द्वा. ए

किङ्कम्मंपि कुणांतो, न होइ किङ्कम्मनिज्जरा जागी
पणवीसामन्नयरं, साहुघाणं विराहंतो ॥ १७ ॥

शब्दार्थ—ए पञ्चीस आवश्यकमांना एकनी पण विराध
करतो एवो साधु, कृतिकर्म करतो ठतो पण ते कृतिकर्मनी नि
रानो जागी अतो नथी. ॥ १७ ॥ द्वा. १० ॥

इवे मुहपत्तिनी पचीस पडिलेहणानुं ११ मुं द्वार करे छे.

दिष्पिमिलेहण एगा, ठ उद्धपप्फोम तिगतिगंतरिया
अस्कोम पमज्जाया, नव नव मुहपत्ति पणवीसा ॥१८॥

शब्दार्थ—एक दृष्टि पमिलेहन, ठ उंचा पखोमा, त्रण
खोमा, त्रण प्रमार्जना. ए ठेला वे त्रणने त्रणवार अंतरित करत
एक एकना नव नव जेद थाय. सर्व मली मुहपत्तिनी पचीस
मिलेहणा अइ. ॥ १८ ॥ द्वा. ११

इवे शरीरनी पचीस पडिलेहणानुं १२ मुं द्वार करे छे.

पायाद्दिणोण तिअ तिअ, यामेअर वाहुसीसमुह हिय
अंसुद्धाहो पिडे, चउ ठप्पय देह पणवीसा ॥१९॥

शब्दार्थ—प्रदक्षिणाये करीने डावी अने जमणी वाहुये,
स्तके, मुयं अने हृदये. ए पांच ठेकाणे त्रण त्रणवार; वे गज्जान
उपर अने नीचे, तिमज वे पीठ उपर अने ठ वने पग उपर ए
सर्व मली शरीरनी पचीस पडिलेहणा थाय. ॥ १९ ॥

आवस्सणसु जहजह, कुणाय पयत्तं अहीण मइरितं ।
निविहकराणां व उतो, नहतह से निज्जरा होइ ॥२०॥

शब्दार्थ—आवश्यक पडिलेहणामां जेम जेम प्रयत्नपो ठे
अधिक न थयो उता मन, यचन अने कायां उपयाग रागो के

तेम तेम ते करनारने निर्जरा घाय वे. ॥२१॥ हा. २१

रवे चार गायथी बसोस दोष त्यजवानुं १३ शर करे छे.

दोस अण्णाद्विश्च यद्विश्च-पविश्च परिपिन्निश्चं च ढोलगड
अंकुस कठञ रिगिश्च. मत्तुवत्तं माणपुत्तं ॥२३॥

शब्दार्थ-१ आदर रहित वांदे, २ मद सहित वांदे, ३ आघो
पावो फरतो वांदे, ४ सर्वने जेगा वांदे, ५ कुदतो वांदे, ६ रजो
हरणने वे हाथे जालोने वांदे ७ काचवानी पेठे रिगतो वांदे, ८
एकने वांदतो वोजाने वांदे, ९ मनमां खेद पामतो वांदे. ॥२३॥

वेड्यवत्तं जयंतं. जय गारय मित्त कारणा त्तित्रं ॥

पणिणोयरुत्त तज्जिश्च, सज्जोत्तिश्च विपलिय चिश्चत्तं २४

शब्दार्थ-१० वे पगमां वे हाथ राखीने वांदे, ११ कांड लालच
थी वांदे, १२ जयथी वांदे, १३ गारवथी वांदे, १४ मित्र जाणो वां
दे, १५ वस्त्रादि मलवानी इच्छाना कारणथो वांदे, १६ चोरनी पेठे
वांदे, १७ आदारादि करतो वांदे, १८ क्रोधथी वांदे, १९ तर्जना क
रतो वांदे, २० कपटथी वांदे, २१ अपमान करतो वांदे, २२ विक
षा करतो वांदे. ॥ २४ ॥

डिठमदिठं सिंगं. कर तंमोअण्ण अणिष्णाल्लिदं ॥

काणं उत्तर चूलिश्च, मूअं दहर चूमलिश्चं च ॥२५॥

शब्दार्थ-२३ डिठुं अण्णदिठुं वांदे, २४ मस्नक्के एक देडो वां
दे, २५ राजवेठनो पेठे वांदे. २६ चांया विना वुटथो नघो एम
जाणी वांदे, २७ मस्नके हाथ लगारतो न लगारतो वांदे, २८
अशादि ठंग रहितो वांदे, २९ पाठजना शब्दो उतावजा बोले,
३० मृंगानी पेठे वांदे, ३१ ठंवास्वरे वांदे, ३२ रजोहरण
रतो वांदे. ॥ २५ ॥

वत्तीस दोसपरिसुद्धं, किङ्कम्मं जो पञ्जइ गुणां ॥
सो पावइ निघाणं, अचिरेण विमानवासं वा ॥१६॥

शब्दार्थ—जे माणस ए उपर कहेला वत्तीस दोस रहित गु
रुने वांदणा करे ते ते थोडा कालमां मोक्षने अथवा तो देवप
दने पामे वे. ॥ १६ ॥ द्वा. १३

हवे छ गुण उपजवानुं १४ सुं द्वार कहे छे.

इह ठच्च गुणा विणउ—वयारमाणाइजंग गुरुपूआ ॥
तिठयरणा य आणा, सुअधम्माराहणा किरिया १७

शब्दार्थ—ए वांदणामां ठ गुणो उपजे वे. तेमां १ विनयनो
उपचार, २ मानादिकनो नाश, ३ गुरुपूजा, ४ तोर्थकरनी आझा,
५ श्रुतधर्मनी आराधना अने ६ मोक्ष. ए ठ गुण उपजे. २७

हवे गुरु थापनानुं १५ सुं द्वार कहे छे.

गुरुगुणजुत्तं तु गुरुं, ठाविजा अहव तठ अस्काइ ॥
अहवा नाणाइतियं, ठविज्ज सस्कं गुरुअजावे ॥१७॥

शब्दार्थ—म्होटा गुणे करीने युक्त एवा गुरुने स्थापन कर
वा. अथवा साक्षात् गुरुनो अजाव होय तो तेमने ठेकाणे थाप
नाचार्य स्थापन करवा. कदापि स्थापनाचार्य पण न होय तो
ज्ञान, दर्शन अने चारित्रनां पुस्तकादि उपकरण स्थापवां. २७

अस्के वरामए वा, कठे पुठे अचित्तकम्मे अ ॥

सप्रावमसप्रावं, गुरुठवाणा इतरावकहा ॥ १८ ॥

शब्दार्थ—अह, (स्थापनाचार्य) कोडा, डांभा, पुस्तक अथवा
गुरुमूर्तिनी स्थापना करवी. स्थापना वे प्रकारनी ठे एक सप्राव
अने वीजी असप्राव. गुरुस्थापना पण वे जेदे वे. तेमां एक इत्वर
एटले पुस्तक आदि थोडा कालनी अने वीजी यावत्कयिका एटले
मूर्ति विंगेरे बहुकालनी, ॥ १८ ॥

गुरुविरहंमि ठवणा, गुरुवएसोव दंसणठं च ॥

जिणविरहंमि जिण विं-व सेवणामंतणं सहलं ॥३०॥

शब्दार्थ-गुरुनो अज्ञाव होय त्यारे गुरुनो उपदेश देखान वा माटे स्थापना ठे. जेम हवणां जिनेश्वरनो विरह ठतां जिनविं वनी सेवना करी आमंत्रण करवुं ते सफल ठे. ॥ ३० ॥

इहे वे प्रकारना अवग्रहनुं १६ मुं द्वार कहे छे.

चउदिसि गुरुग्गहो इह, अहुठ तेरस करे सपरपरेक ॥

अणणुत्रायस्स सया, न कप्पए तठ पविसेउ ॥३१॥

शब्दार्थ-आ जिनशासनमां गुरुथो अवग्रह चारे दिशामां पुरुष पुरुषने अने पुरुष स्त्रीने साडा त्रण हाथ अने तेर हाथ जाणवो. ते अवग्रहमां प्रवेश करवाने आज्ञाविना क्यारे पण न कळ्ये.

इहे अक्षर संख्यानुं १७ मुं द्वार तथा पद संख्यानुं १८ मुं द्वार कहे छे.

पाण तिग वारस डुगतिग, चउरो ठठाण पय इगुणतोसं ॥

गुणतोससेस आव-स्सयाइ सवपय अमवन्ना ॥३२॥

शब्दार्थ-(प्रथम चंदनक सूत्रना अक्षर ३३६ ठे तेमां लघु अक्षर वसो एक अने गुरु अक्षर पच्चीस ठे.) पांच, त्रण, वार, वे, त्रण अने चार. एम ठ स्थानकमां उगणत्रोस पद ठे. याकोना उगण त्रोस पद आवस्सियाएथी जाणवा. सर्व मज्जी अणवण पद थायठे.

इहे वांदण स्थापना ठ स्थाननुं १९ मुं द्वार कहे छे.

इत्तायअणुन्नवणा, अघावाहं च जत्त जवणाय ॥

अवराहखामणाधिय, वंदणदायस्स ठठाणा ॥३३॥

शब्दार्थ-इत्तामि आदिमां पांच, अणुजाणहादिमां त्रण, अव्यावाध पूठवा माटे नितोदियादिमां वार, जताजे एमां वे,

१. माधु माधुने सादा त्रण हाथ, माधु आरकने सादा त्रण हाथ, माधु साध्वीने तेर हाथ. साधु आदिदाने पण तेर हाथ.

जयणिजंचने एमां त्रण, अपराच खमाववा माटे खामेमि एमां
चार. ए वांदणा करनारना उ स्थानक जाणवा. ॥ ३३ ॥

इवे छ गुरु वचननुं २०मुं द्वार कहे छे

वंदेणणुजाणामि, तहत्ति तुप्रंपि वट्टए एवं ॥

अहमवि खामेमि तुमं, वयणाई वंदणारिहस्स ॥३४॥

शब्दार्थ—वंदेण, अणु जाणामि, तहत्ति, तुप्रंपिवट्टए, एवं, अ
हमवि खामेमि तुमं. ए उ वचन वांदणा देवा योग्य गुरुनां जाणवां.

इवे तेथीम आशातनातुं २१मुं द्वार कहे छे.

पुरउ पस्कासत्ते, गंता चिठण निसिअणाय मणे ॥

आलोयण पमिसुणणे, पुवालवणे अ आलोए ॥३५॥

शब्दार्थ—१ गुरुनो आगल चाले, २ पडखे चाले, ३ पठवाठे
अडकतो चाले, वली एवो त्रण आशतना गुरुनी, तेठली जूमि जा
गे उजा रहेवाथी थाय अने वेसवाथी पण थाय एम ए आशतना
जाणवी, १० थंडिले प्रथम पाणी ले, ११ गमणागमण पहेलुं आलो
वे, १२ बोलाव्या उता न बोले, १३ कोइने गुरुनी पहेला बोलावे,
१४ गुरु उता बीजा पासे जिक्कादि आहार आलोवे. ॥ ३५ ॥

तह उवदंस निमित्तण, खच्चा ययणे तहा अपमिसुणणे
खच्चत्ति य तउगए, किं तुम तज्जाय नो सुमाणे ॥३६॥

शब्दार्थ—१५ आहारादि बीजाने देखाने, १६ बीजा साधुने
प्रथम बोलावोने पठी गुरुने बोलावे, १७ गुरु चिना बीजाने मि
ष्ट खवरावे, १८ पोते मिष्ट खाय, तेमज १९ गुरु बोलावे उता, न
सांजले, २० गुरुने कठण वचन बोले, २१ पोताने संघारे वेगो उ
त्तर थापे, २२ थुं कहो वे? एम कहे, २३ तमे करो, एम कहे,
२४ तिरस्कार करे, २५ गुरुनो धमोंपवेठा सांजली क्षिप्त मनवा
लो न थाय. ॥ ३६ ॥

नो सरसि कलं त्रिता, परिसंज्ञिता श्राणुषियाइ कहे॥
संघार पाय घट्टाण, चिहुच्च समासणो आवि ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ—२६ तमने नघो सांजरतुं? एम कहे, २७ कथा नो छेद करे, २८ सन्नानो जंग करे, २९ गुरुये कहेली वात फरी पोते कहे, ३० गुरुना संधारे पग लगामे, ३१ गुरुनी शय्या संधारा के आसन उपर बेसे, ३२ गुरुघी उंचा आसने बेसे, ३३ गुरुना स मान आसने बेसे. ॥ ३७ ॥

एवे वे विधिनुं २००ं द्वार कहे जे.

इरिया कुमुमिणुस्सग्गो. चिइवंदण पुत्ति वंदणा लोयं॥
वंदण खामण वंदण. संवर चउ उओउ डु सज्जाउ ॥३८॥

शब्दार्थ—१ इरियावहि, २ कुमुमिण डुमुमिणनो काउस्सग्ग, ३ चैत्यवंदन, ४ मुहपत्ति पडिलेहण, ५ वे वांदणा, ६ राइय आलोवे, ७ वे वांदणा, ८ खमासमण, ९ वांदणा, १० पच्चस्काण, ११ चार खमासमण अने वे सज्जाय. एम अनुक्रमे करे ते प्रजात वंदन विधि जाणवो. ॥ ३८ ॥

इरिया चिइ वंदणपु—ति वंदणं चरिमवंदणालोयं ॥

वंदणखामणचउउओ—न दिवसुस्सग्गो डुसप्रान्त ॥३९॥

शब्दार्थ—१ इरियावहि, २ चैत्यवंदन, ३ मुहपत्ति पडिलेहण, ४ वे वांदणा, ५ दिवस चरिम पच्चस्काण, ६ वे वांदणा, ७ देवसि आलोवे, ८ वे वांदणा, ९ देवसि खमावे, १० चार खमासण दइ जगवानादि चारने वांदे, ११ देवसिय प्रायश्चित माटे वे सोगस्त नो काउस्सग अने १२ वे सज्जाय. ए संध्यावंदन विधि. ३९

एयं किइकम्मविहिं, जुंजंता चरण करण माउत्ता ॥

साहू खवंति कम्मं, आणोगज्जवसंचियमाणंतं ॥४०॥

शब्दार्थ—ए प्रमाणे वांदणानी विधिने करता तेम्—रण

सित्तरी अने करण सित्तरी सहित एवा साधुञ्ज अनेक जवमां मे
लेवेलां अनंतां कर्मने खपावे ठे. ॥ ४० ॥

अप्पमञ्जवोहत्तं, ज्ञासियं विवरियं च जमिह मए ॥

तं सोहंतु गीयत्ता, अण्णिनिवेसि अमत्तरिणा ॥४१॥

शब्दार्थ—अल्पमति एवा जव्य जोवोना बोधने अर्थे मं अहिं
जे कांइ विपरीतपणे कहेलुं होय तेने कदाग्रह रहित अने मत्तर
रहित एवा गीतार्थ पुरुषोए सुधारीने लेवुं. ॥ ४१ ॥

॥ इति गुरुवंदन ज्ञाप्य. ॥

॥ अथ पञ्चस्काण भाष्य. ॥

पञ्चस्काणनां ९ द्वार कहे छे.

दस पञ्चस्काण चञ्चविहि, आहार दुवीसगार अदुरुत्ता ॥

दस विगइ तीस विगइ, गयइहजंग ठ सुधि फलं ॥१॥

शब्दार्थ—१ दश पञ्चस्काण द्वार, २ चार विधि द्वार, ३ आ
हार द्वार, ४ बीजोवार न कहेला वावोस आगार द्वार, ५ दश वि
गयद्वार, ६ तीस निवीपाद्वार, ७ मूल गुण उत्तरनुं जेदद्वार, ८ ठ
जेद शुद्धिनुं द्वार, ९ पञ्चस्काण फलद्वार. ॥ १ ॥

इहे उत्तरगुण पञ्चस्काणना दश भेद कहे छे.

अणागय मङ्कलं, कोमीसहियं नियंति अणागारं ॥

सागार निरवसेसं, परिमाणकमं सके अन्वा ॥ २ ॥

शब्दार्थ—१ कारणे आगलयी तप करवुं, २ पाठलयी करवुं,
३ एकना जोमे बीजुं करवुं, ४ धारी राखेला दिवसे करवुं, ५ आ
गार रहित करवुं, ६ आगार सहित करवुं, ७ चार आहारादिकनुं
करवुं, ८ वस्तु विगरेनुं परिमाण करवुं, ९ संकेते करवुं अने १०
काल पञ्चस्काण करवुं. ॥ २ ॥

(७९)

इसे तेला का नाम पद्मप्राणना भेद करे ते.

नवकारसहिय पोरिसि, पुरिमहेगासणोगाणे अत्र ॥
आयंबिल अप्रतठे, चरिमेअ अजिग्गहे विगइ ॥३॥

शब्दार्थ—१ नोकारसीनुं, २ पोरसीनुं, ३ पुरीमडनुं, ४ एका
सणानुं, ५ एकलठाणानुं, ६ आंबीलनुं, ७ उपवातनुं, ८ दिवसं च
रिमनुं, ९ अजिग्रहनुं अने १० विगइनुं. ए दश काल पञ्चस्काण ठे.

इसे पद्मप्राण करवानो विधि चार भेदे करे छे.

उग्गएसूरे नमो. पोरिसि पञ्चस्क उग्गएसूरे ॥

सूरे उग्गए पुरिमं, अजतठं पञ्चस्का इति ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—नवकारसीना पञ्चस्काणमां “उग्गए सूरे नमोकार
सहियं” एवो पाठ, पोरिसिना पञ्चस्काणमां “उग्गए सूरे पोरि
सियं” एवो पाठ, पुरिमहना पञ्चस्काणमां “सूरे उग्गए पुरिम
हं” एवो पाठ, उपवातना पञ्चस्काणमां “अजतठं पञ्चस्काइ” एवो
पाठ जणवो. ॥ ४ ॥

इसे बीजा चार विधि करे छे.

जणइ गुरु सीसो पुण. पञ्चस्कामिति एव वोसिरइ ॥

उवठंगिठ पमाणं, न पमाणं वंजणञ्जलणा ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—प्रथम पञ्चस्काण करावनार गुरु “पञ्चस्काइ” एम
कहे, वली पञ्चस्काण करनार डिप्य “पञ्चस्कामि” एम कहे, पठो
गुरु “वोसिरइ” एम कहे एटले डिप्य “वोसिरामि” एम
कहे, अहिं धारेलो उपयोगज प्रमाण ठे; परंतु अकरनी स्वलना
प्रमाण नथी. ॥ ५ ॥

तेज बात विशेषे करे छे

पढमे ठाणे तेरस. वीए तिन्निठ तिगाइ तइअंमि ॥

पाणस्स चउठंमि. देसावगाइ पंचमए ॥ ६ ॥

असणे मुग्गोयास-तु मंम पय स्कज रव्य कंदाइ ॥
 पाणे कंजिय जव कयर. कळोमोदग सुराइजलं ॥१४॥

अर्थ-अशनमां मग, जात, सधु, मांडा, दुध, राजु,
 गव अने कंद विगेरे जाणवा. तेमज पानमां कांजी, जयनु, केर
 नुं अने काळडीनुं धोवण तथा मदिरावि जल जाणवुं ॥१४॥

साइमे जतोस फलाइ. साइमे सुठि जीर अजमाइ ॥
 महु गुरु तंचोलाइ, आणाहारे मोय निंबाई ॥ १५ ॥

अर्थ-गारिममां शेकेलां घान्य तथा फलावि जाणमां
 अने ह्याःगिममां सुठ, जीरे, अजमो विगेरे, वलो मध, गोस अने
 नागरेपना पानां जाणवुं. तेमज अनाहारने विंये माधु तथा
 पंचमस पमूष जाणवुं ॥ १५ ॥

हे नवहातमी विंयेना आगारनी सेव्यानु ४ पुं हा कहे से,

से नवहात व पंगिमि, राग पुगिमि इगासतां अठ ॥
 मनेगताण अंविन्न, अठ पाण चउत्रि उप्पाणे ॥१६॥

अर्थ-नवहातमीमां से, पंगिमिमां व, पुगिमिमां रात,
 एकवटाणामां रात, आंवीगमां आठ, सोय
 उठमा पांच अने पाणसगना पदधकाणमां व आगार जाणवा.

अठ अंविं चउत्रिमादि, पाण पायराणं नयठ निशीण ॥
 अठमां अंविंविंग, मनु दयविगडनियमिठ ॥ १७ ॥

अर्थ-विंयस अंविंमां आठ, अतिप्रदमां आठ, वस म
 कलमा पांच, निवीमां पांच अथवा आठ आगार जाणवा. यणी
 वस विंयसु नियम करणने 'अंविंविंग' ए आगारने म
 कलमे वे-हेना आठ आगार जाणवा. ॥ १७ ॥

हे हे १ वयसयावधी आगारनी पाव कहे ७

अन्नसहदुनमुकारे. अन्न सह पञ्च दिसय साहु सव्व ॥

पोरिसि ठ सहपोरिसि. पुरिमहे सत्त समहत्तरा ॥१८॥

शब्दार्थ—नमुकारसोमां अन्नञ्जणान्नोगेणं, सहस्सागारेणं ए वे, तथा पोरसोमां अन्नञ्जणान्नोगेणं, सहस्सागारेणं, पञ्चकालेणं, दिसामोहेणं, साहुवपणेणं, अने सव्वसमादिवत्तियागारेणं ए ठ आगार जाणवा. साहु पोरसोमां पण एज ठ अने पुरिमहमां उपरना ठ सहित एक महत्तरागारेणं ए वधारवो. जेथी तेमां सात थाय.

हे एकावणाना तथा एकलवणाना आगार कहे छे.

अन्न सहसागारिय, आउंटण गुरुअ पारिमहसव्व ॥

एगवियासणि अठठ. सग इगठाणे आउंटविणा १ए

शब्दार्थ—अन्नञ्जणान्नोगेणं, सहस्सागारेणं, सागारि आगारेणं, आउंटण पसारेणं, गुरु अणुवणेणं, पारिणवणियागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमादिवत्तियागारेणं. ए आठ आगार एकासणामां अने वियासणामां जाणवा. अने तेमांथी एक आउंटण विना सात आगार एकलवणामां जाणवा. ॥१९॥

हे विगय, नोवी अने आंवीलना आगार कहे छे.

अन्नसहलेवागिह, उक्कित पडुच्च पारिमहसव्वे ॥

विगइ निविगए नव, पडुच्च विणु अंविळे अठ १०

शब्दार्थ—अन्नञ्ज, सहस्सा, लेवालेवेणं, गीहञ्ज संसेवेणं, उक्कित विविगेणं, पडुच्चमस्किएणं, पारिण, महत्तरा, सव्वसमाहि. ए नव विगइ तथा निविगइने विपे जाणवा अने तेमांथी एक पडुच्चमस्किएणं विना आठ आंवीलना आगार जाणवा. ॥२०॥

हे उपसामना आगार कहे छे.

अन्न सह पारि मह सव्व, पंच खवणे ठ पाणिलेवाई ॥

चञ्च चरिमं गुणइ, जग्गहि अन्न सहमह सव्वे ॥२१॥

चोखा विगेरेना धोवणनुं पाणी, ए सौत्र सहित ते आटायी खर
नायला हाथनुं दाणा सहित पाणी अने ६ तेथी वीजुं ते तेनेज
गली लीधेलुं पाणी, ए ठ आगार पाणीना जाणवा. ॥२८॥

हवे दश विगइनां स्वरूपनुं ५ मुं द्वार कहे छे.

पाण चउ चउ चउ ड डविह, ठ ञस्क डुवाइ-विगइ इगवीसं
तिडुति चउविह अञस्का, चउ महुमाई विगई वार ॥

शब्दार्थ—डुघनां पांच, दहिना चार, धीना चार, तेलना चार,
गोलना वे, पकानना वे. एम ए डुघ विगेरे ञक्ष्य(खावा योग्य)वि
गइना सर्व मली एकवीस जेद थायठे. तेमज मवना त्रण, मदि
राना वे, मांसना त्रण, मांखणना चार. एम ए चार अञक्ष्य वि
गइना सर्व मली वार जेदठे. ॥२९॥

हवे प्रथमनी छ विगइना २१ भेद कहे छे.

खीर घय दहि अ तिल्लं, गुम पक्कन्नं ठ ञस्क विगइत ॥

गो महिसी उंठि अय ए-खगाण पाण डुध अह चउरोइण

शब्दार्थ—डुघ, धी, दहिं, तेल, गोल अने पकान. ए ठ ञ
क्ष्य विगइठे. तेमां गायनुं, जेसनुं, उंठडानुं, वकरोनुं अने घेटीनुं
ए पांच जातनुं डुघ विगइठे. हवे चार जातनुं धी विगेरे कहेठे.

घयदहिआउट्टिविणा, तिलसरिसवअयसिलट्टितिल्लचउ
दवगुम पिंरु गुमादो, पक्कन्नं तिल्ल घय तलियं ॥३१॥

शब्दार्थ—धी अने दहिं उंठनी विना वाकीना चारनुं विगइ
मां जाणवुं. तलनुं, सरसवनुं, अलसीनुं अने *लाटनुं ए चार जात
नुं तेल विगइठे. ढीलो अने कमीण ए वे जातनो गोल, अने प
कान ते उपर कहेला चार जातनां तेलमां तलेलुं अथवा चार जा
तनां धीमां तलेलुं ए सर्व विगइमां जाणवुं. ॥३१॥

* ए धान्य खसलस जेवुं याव छे.

इवे दूधनां पांच निबीयातां कहे छे.

पयसामि खीर पेया, वलेहि डुद्धट्टि डुद्ध विगङ्गया ॥

दरक बहु अप्प तंडुल. तच्चुन्नं विलसहिअ डुद्धे ॥३१॥

शब्दार्थ—डाख नाखीने रांधेलुं डुध पयसामि, बहु चोखा नाखीने रांधेलुं डुध खोर, थोमा चोखा नाखीने रांधेलुं पेया, आटो नाखीने रांधेलुं अवेलेहि अने खटास नाखीने रांधेलुं डुध डुद्धट्टि. ए पांच डुधना निबीयाता जाणवा. ॥३१॥

इवे धी विगङ्ग तथा दहि विगङ्गना पांच पांच निबीयाता कहे छे.

निप्रंजणवोसंदाण, पक्कोसहितरिय किट्टि पक्कघयं ॥

दहिए करंव सिंहरीणि,सलवणदहि घोल घोलवडा ३३

शब्दार्थ—दाजेलुं, डुधनी तरीमां आटो नाखीने वनावेलुं, श्रीपधि नाखीने पकावेलुं, कीटुं, अने आंवालादि नाखीने पकावे लुं ते पांच जातनुं धी तेमज ज्ञात सहित दहि, सीखंरु, लवण नाखेलुं गळ्या विनानुं दहि, गलेलुं दहि अने घोलवमा ए पांच जातनुं दहि निबीयातामां जाणवुं. ॥३३॥

इवे तेल तथा गोलनां पांच पांच निबीयाता कहे छे.

तिलकुट्टि निप्रंजण, पक्कतिल पक्कसहितरिय तिल्लमली ॥

सकर गुलवायण पाय, खंरु अप्पकडिय इस्करसो ३४

शब्दार्थ—गोल सहित खामेला तल, दाजेलुं तेल, डाख वि गेरेथी पकावेलुं तेल, श्रीपधि पकाव्या पवो तेल उपर घयेली तरी अने तेलनी मली, ए पांच तेलना. तेमज साकर, 'गोलवाणी, 'गु लपाय, खंरु अने अक्षं उकालेलो डोरनीनो रस ए पांच निबी यातामां जाणवा. ॥ ३४ ॥

इवे कडा विगङ्गना पांच निबीयाता कहे छे.

१ गळपाणुं. २ गोलपाक—गोलनी चामणी.

चोखा विगेरेना घोवणनुं पाणी, ए सौथ सहित ते आटायी खर
नायला हाथनुं दाणा सहित पाणी अने ६ तेथी वीजुं ते तेनेज
गली वीघेलुं पाणी, ए ठ आगार पाणीना जाणवा. ॥२७॥

हवे दश विगइनां स्वरूपनुं ५ मुं शर कहे छे.

पाण चउ चउ चउ ड डविह, ठ जस्क डवाइ-विगइ इगवीसं
तिडुति चउविह अजस्का, चउ महुमाई विगइ वार ॥

शब्दार्थ—डवनां पांच, दहिना चार, धीना चार, तेलना चार,
गोलना वे, पकानना वे. एम ए डव विगेरे ज्ञद्वय(खावा योग्य)वि
गइना सर्व मली एकवीस जेद थाय ठे. तेमज मघना त्रण, मदि
राना वे, मांसना त्रण, मांखणना चार. एम ए चार अज्ञद्वय वि
गइना सर्व मली वार जेद ठे. ॥२८॥

हवे प्रथमनो छ विगइना २१ भेद कहे छे.

खीर घय दहि अ तिल्लं, गुम पकन्नं ठ जस्क विगइ ॥

गो महिसी उंटी अय ए-खगाण पाण डुइ अह चउरोइ०

शब्दार्थ—डव, धी, दहिं, तेल, गोल अने पकान्न. ए ठ ज
द्वय विगइ ठे. तेमां गायनुं, जेसनुं, उंटडानुं, बकरोनुं अने घेटीनुं
ए पांच जातनुं डव विगइ ठे. हवे चार जातनुं धी विगेरे कहे ठे.

घयदहिआउट्टिविणा, तिलसरिसवअयसिलट्टितिल्लचउ
दवगुम पिंम गुमादो, पकन्नं तिल्ल घय तल्लियं ॥३१॥

शब्दार्थ—धी अने दहिं उंटी विना वाकीना चारनुं विगइ
मां जाणवुं. तलनुं, सरसवनुं, अलसीनुं अने *लाटनुं ए चार जात
नुं तेल विगइ ठे. डीलो अने कमीण ए वे जातनो गोल, अने प
कान्न ते उपर कहेला चार जातनां तेलमां तलेलुं अथवा चार जा
तनां धीमां तलेलुं ए सर्व विगइमां जाणवुं. ॥३१॥

* ए धान्य खसखस जेवुं थाय छे.

(११)

ए पूर्णं करं ते तयुं कहेवाय अने जोजनना अवसरे करेला प
चस्काणने संज्ञारबुं ते कीर्त्युं कहेवाय. ॥४५॥

इअ पन्निचरिअं आरा-हियं तु अहवा ठ मुद्धि सदहणा ॥

जाणाण विणायाणु जावाण-अनुपालण जाय सुधति ४६

शब्दार्थ—उपर कहेला सर्व प्रकारे आचरधुं तेने आराधुं
कहेवाय अथवा पचस्काणनो ठवि शुद्धि ठे ते लीधा प्रमाणे कर
वुं. जाणनी पास करवुं, गुरुनो विनय करवो, गुरु बोले तेम म
नमां बोलवुं, कष्ट पमे तो पण जागवुं नदि, शंकादिदोष रदित
रहेवुं, ए ठ विशुद्धि जाणवी. ॥४६॥

इवे पचस्काणणनुं वे प्रकारं फल थापणं ते कहे ठे.

पचस्काणस्स फलं, इह परलोए य होइ उविहं तु ॥

इहलोए धम्मिद्धाइ, दामन्नगमाइ परलोए ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ—पचस्काणणनुं फल आ लोकमां धम्मिद्धकुमारा
दिनां अने परलोकमां दामन्नकादिकनां दृष्टान्तधी जाणवुं. ४७

इवे समाप्ति करता कहे ठे.

पचस्काणमिणं से-विक्कण जावेण जिणवरुद्धिं ॥

पत्ता अणंत जीवा, सासयसुखं अणावाहं ॥४८॥

शब्दार्थ—श्रो जिनेश्वरे उपदेशेला आ पचस्काणने जावधी
सेवीने अनंता जीवो निरावाध एवा साश्वता सुखने पान्या ठे.

॥ इति पचस्काण जाप्य समाप्त. ॥

शब्दार्थ—मन, वचन अने काया, वली मनवचन, मनकाया अने वचनकाया; तेमज मन, वचन अने काया एत्रण योग. ए सात ज्ञांगाने करवा, कराववा अने अनुमोदवा. एवा जेद्वर्षी एकवीस जेद थाय. वली तेने हीक त्रीक योग सहित करी नूत, जिविष्य अने वर्तमान काले करी गुणता एकसो सन्तारोस ज्ञांगां थाय. ॥ ४२ ॥

इवे ए पञ्चस्काणनुं स्वरूप कहे छे.

एयं च उत्तकाले, सयं च माण वयण तण्णहिं पाल्लणियं॥
जाणगजाणग पासि, तिज्जंग चज्जगे तिसु अण्णणा ४३

शब्दार्थ—वली ए पञ्चस्काण कहेला काले लेनार घणीये पो ते मन, वचन अने कायाए करीने पालवा. वली ते पञ्चस्काण करनार जाण अथवा अजाण तेमज करावनार जाण अथवा अजाण एम चार ज्ञांगा थायवे, तेमां प्रथम त्रणने आझा वे.

इवे पञ्चस्काणनी छ विमुद्धितुं ८ पुं द्वार कहे छे.

फासियपालियसोहिय, तिरियकिट्टियअरारहियठसुद्धं॥
पञ्चस्काणां फासिय, विहिणोचिय कालि जंपत्तं ॥४४॥

शब्दार्थ—फरस्युं, पाड्युं, सोध्युं, तय्युं, कीर्युं अने आरार्युं, ए व प्रकारे शुद्ध एयुं पञ्चस्काण फल आपनारुं थाय वे. ते मां प्रथम विधि प्रमाणे योग्य काले जे पञ्चस्काण लीधुं ते फरस्युं कहेवाय. ॥ ४४ ॥

पालिय पुणापुणामरियं, सोहिय गुरुदत्त सेस ज्ञोयाणञ्जं॥
तिरिय ममहिय कालो, किट्टिय ज्ञोयाण समय सराणो४५

शब्दार्थ—कंगला पञ्चस्काणने वारंवार मंजारयुं ते पाड्युं कहेवाय, गुम्ने थाप्या पठी वार्कीनुं पोते जमयुं ते दोष्युं कहे वाय. धारंला कालथी कांडक अथिक काल गया पठी पञ्चस्का

(ए१)

ए पूर्ण करे ते तर्पु कहेवाय अने ज्ञोजनना अवसरे करेला प
चस्काणने संज्ञारवुं ते कीर्त्यु कहेवाय. ॥४५॥

इअ पन्निचरिअं आरा-हियं तु अहवा ठ सुद्धि सद्वहणा ॥

जाणण विणयणु ज्ञावण-अनुपालण ज्ञाय सुद्धति ४६

शब्दार्थ-उपर कहेला सर्व प्रकारे आचरधुं तेने आराधुं
कहेवाय अथवा पचस्काणनो ठवि शुद्धि ठे ते लीघा प्रमाणे कर
वुं, जाणनी पासे करवुं, गुरुनो विनय करवो, गुरु बोले तेम म
नमां बोलवुं, कष्ट पने तो पण ज्ञागवुं नदि, शंकादिदोष रदित
रहेवुं, ए ठ विशुद्धि जाणवी. ॥४६॥

इये पचस्काणणनुं वे प्रकारे फल थायले ते कहे छे.

पचस्काणस्स फलं, इह परलोए य होइ उविहं तु ॥

इहलोए धम्मिल्लाइ, दामन्नगमाइ परलोए ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ-पचस्काणणनुं फल आ लोकमां धम्मिल्लकुमारा
दिनां अने परलोकमां दामन्नकादिकनां दृष्टान्तथी जाणवुं. ४७

इये समाप्ति करता कहे छे.

पचस्काणमिणां से-विज्जाण ज्ञावेण जिणवरुद्धिठं ॥

पत्ता आणंत जीवा, सासयसुखं अण्णावाहं ॥४८॥

शब्दार्थ-श्रो जिनेश्वरे उपदेशेला आ पचस्काणने ज्ञावथी
सेधीने अनंता जीवो निरावाध एवा सास्यता सुखने पाम्पा ठे.

॥ इति पचस्काण ज्ञाप्य समाप्त. ॥

(९१)

श्री इंद्रिय पराजय शतक.

(आर्यावृत्तम्)

सुच्चिय सूरु सो चे-व पंम्नि तं पसंसिमो निञ्चं ॥

इंद्रियचोरेहिं सया, न लुट्टियं जस्स चरणधणं ॥१॥

शब्दार्थ-तेज सूरवीर अने तेज पंम्नि, वली तेनीज अमे निरंतर प्रशंसा करीये वीये के, जेनुं चारित्ररूप धन निरंतर इंद्रियरूप चोरोए लुंठो लीधुं नथी. ॥१॥

इंद्रिय चवलतुरंगे, डुग्गइ मग्गाणु धाविरे निञ्चं ॥

जाविअ जवस्सरुवो, रूज्जइ जिणवयण रस्सीहिं २

शब्दार्थ-इंद्रियरूप चपल घोडाज निरंतर दुर्गतिरूप मार्ग मां दोडो रह्या ठे, तेमने संसार स्वरूपनी जावना करनारो पुरुष श्री जिनराजनां वचनरूप रासथो रोकेठे. ॥२॥

इंद्रियधुत्ताणमहो, तिलतुसमित्तंपि देसु मा पसरं ॥

जइ दिन्नो तो नोत्त, जत्त खणो वरिसकोमिसमं ॥३॥

शब्दार्थ-हे प्राणिन! तूं इंद्रियरूप चोरोने तलनां फोतरा मात्र पण प्रसखा दइश नहि. कारण जो परसवा दिघा तो प्यां एक क्षण क्रोडो वर्ष समान थाय तेवां दुःखो पामीइ. ॥३॥

अजिइंद्रियहिं चरणं, कठंघ घुणोहि किरइ असारं ॥

तो धम्मञ्जिहिं दहं, जइयधं इंद्रियजयंमि ॥ ४ ॥

शब्दार्थ-इंद्रियने न जीतनारा प्राणीनुं चारित्र घुणे (सा कर्माना जोयोए) करुलां लाकमानो पेठे सार रदित ठे, माटे धर्मना आरिंये इंद्रियोने जीतवामां दृढ उद्यम करयो. ॥४॥

जह कागिणोइ हेत्तं, कोमो रयाणाण हारण कोइ ॥

तह तुत्त विसय गिवा, जीवा हारंति सिद्धिसुहं ॥५॥

(१५३)

शब्दार्थ-जेम कोऽ मूर्ख एक कोडीने माटे कोडा रानने
इते तेम तुष्ट एवा विषयमां आसक्त धयेला जीवो मोक्ष सुख
ने हार्ग जाय ठे. ॥५॥

निलमितं विसयमुहं. इहं च गिरिरायसिंगतुंगपरं ॥

जवकोमिद्धिं न निठइ, जं जाणसु तं करिळासु ॥६॥

शब्दार्थ-तल मात्र विषय सुख दुःखरूप मेरुपर्वतना उंचा
शिखर जेनुं ठे. जलो ते दुःख कोडो जव सुधी खुटे तेम नथी,
माटे हे जीव ! जेम जाण तेम कर. ॥६॥

(शार्दूलविकीर्तितवृत्तम्)

जुंजंता महुरा विवागविरसा किंपागतुह्ला इमे,

कन्वुकंडुअप्राणव डुरकजणाया दाविति बुद्धिं सुहे ॥

मझन्हे मयतिन्हियव सययं मित्राजिसंधिप्पया,

जुता दिति कुजम्म जोण्णिगहाणं जोगा महा वैरिणो ७

शब्दार्थ-किंपाक फलनो पेठे जोगवतां मधुर, पण परिणामे
प्राणनो नाश करनारा, खसना फोड्याने खणवानो पेठे दुःख
आपनारा, मध्यान्ह वखते मृग तृष्णानो पेठे निरंतर खोटा
अजिप्राय आपनारा अने महा वैरो सरखा जोगो जोगवनाराने
कुजन्मरूप गहन जोनो आपेठे. ॥७॥

(अनुष्टुप्वृत्तम्)

सका अग्नि निवारेणं, वारिणो जल्लिजवि हु ॥

सबोदहिजलेणावि, कामग्नि इन्निवारणं ॥ ८ ॥

शब्दार्थ-ऊल हलता अग्निने पाणीवडे निवारी शकाय, प
ण सर्व समुद्रानां पाणीथो कामरूप अग्नि निवारी शकातो नथी.

(आर्यावृत्तम्)

विसमिव मुहंमि महुरा, परिणाम निकाम दारुणा विसया ॥

(६८)

(अनुष्टुप्वृत्तम्)

सहस्रं कामा विसं कामा, कामा आसीविसोवमा ॥

कामे य पठेमाणा, अकामा जंति दुग्गइं ॥ ११ ॥

शब्दार्थ—कामजोग शल्य ठे, कामजोग विप ठे अने काम जोग आशोविप जेर (सर्पनी दाढमां रहेला जेर) जेवा ठे. ते कामजोग जोगव्या नथी; परंतु तेनी प्रार्थना करवाथी एटले तेनी इच्छा राखवाथी पण जीवो दुर्गतिमां जाय ठे. ॥११॥

(आर्यावृत्तम्)

विसए अवइस्कंता, पमंति संसारसायरे घोरे ॥

विसएसु निराविस्का, तरंति संसारकंतारे ॥१२॥

शब्दार्थ—विषयनी अपेक्षा (वांठना) करनारा जीवो वी हामणा संसार समुद्रमां पडे ठे अने विषयथी निरपेक्ष (अवंठक) थयेला जीवो संसार रूप अटवीने तरे ठे. ॥१२॥

ठलिया अवइस्कंता, निरावइस्का गया अविग्घेणं ॥

तन्ना पवयण सारे, निरावइस्केण होअवं ॥ १३ ॥

शब्दार्थ—विषयनी अपेक्षा—वांठना करनारा जीवो ठलाणा एटले संसारमां रह्या अने विषयथी निरपेक्ष—अवंठक थयेला जीवो, अविघ्नपणे मोक्षमां गया. ते कारण माटे प्रवचन एटले ति शंतनो एज सार ठेके, विषयथी निरपेक्ष थवुं. ॥१३॥

विसयाविस्को निवमइ, निरविस्को तरइउत्तर जवोघं ॥

देवीदीवसमागय, ज्ञाचअजुअलेण दिठंते ॥३०॥

शब्दार्थ—स्त्रादेवीना स्त्रहीपमां गयेला (जिनरक्षित अने जिनपालित ए) ये ज्ञाश्चना दृष्टांते विषयनी अपेक्षा करनारा जीवो (जिनरक्षितना पठे) संसार समुद्रमां पडे ठे अने विषय

श्री निरपेक्षः प्रयेता जोयो (जिनपालितनी पेटे) दुस्तर एवा ज
बना उधने-संसार समुद्धने तरे ठे. ॥३०॥

जं अघतिर्कं दुर्कं, जं च सुहं उत्तमं तिलोत्रंमि ॥

तं जाणामु विसयाणां. वुद्धि रक्त्य हेउअं सधं ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ-हे जीव! अण लोकमां जे अति तिक्कण दुःखअने जे उ
त्तम सुख ठे ते सर्व विषयोनी वृद्धिअने क्यनुं हेतु ठे, एम तुं जाण.

इंद्रियविसयपसत्ता. पमंति संसारसायरे जीवा ॥

परिक्ख त्रिन्नपंग्वा, सुसीलगुण पेहुणविहूणा ३२

शब्दार्थ-पंचेन्द्रियना विषयमां आसक्त अएला जीवो, उत्त
म आचार अने शीलगुण रूप पांखो विना, वेदानी ठे पांखो जे
नो एवा पक्षीनी पेटे संसार समुद्धमां पमे ठे. ॥३१॥

न लहइ जहा लिलंतो, मुहस्त्रियं अठिअं जहा सुणउ
सोसइ तालुअ रसिअं, विलिलंतो मन्नए सुक्कं ॥३३॥

महिलाण कायसेवो, न लहइ किंचिवि सुहं तहा पुरिसो ॥

सो मन्नए वराउ, सयकायपरिस्समं सुक्कं ॥३४॥ युग्मम्.

शब्दार्थ-जेम कूतरो म्होटा हाडकाने चाटतो ठतो एम
नथी जाणतो के, हुं म्हारा पोतानाज तालुआनी रसीने सोसवुं
वुं! तेथीज ते दामकाने विशेषे चाटतो ठतो जेम सुख माने ठे
तेम स्त्रीनो कायानो सेवनार, एटले विषय सेवनारो पुरुष तेथी
जरा पण सुख नथी पामतो; तथापि ते रांक पुरुष पोतानी का
याना परिश्रमने सुख माने ठे!!! ॥३३॥३४॥

सुवुवि मग्गिजंतो, कववि कयलीइ नठि जह सारो ॥

इंद्रियविसयसु तहा, नठि सुहं सुवुवि गविठं ॥३५॥

शब्दार्थ-सारी रीते तपासतां जेम केलमां कांइ पण सार

जुवइहिं सह कुणांतो, संसग्गि कुणाइ सयल्लउकेहिं ॥
 नहि मुसगाणां संगो, होइ सुहो सह विलामेहिं ॥५४॥

शब्दार्थ—जेम विलामीनी साथे संसर्ग करतो वतो उंदर
 सुखी थतो नथी, तेम स्रोनी साथे संसर्ग करतो वतो पुरुष पण
 सर्व दुःखना संसर्गने करे वे. अर्थात् अनेक दुःखने पामे वे.
 हरिहरचउराणण चं, दसूरखंदाइणोवि जे देवा ॥

नारीण किंकरत्तं, कुणांति धित्री विसयतिन्हा ॥५५॥

शब्दार्थ—विश्वु, ईश्वर, ब्रह्मा, चंड, सूर्य अने कार्तिकस्व
 मी विगेरे जे कोइ देवो, ते सर्वे (मात्र विपयने माटे) स्त्रीनुं किं
 करपणुं करे वे! माटे धिक्कार वे धिक्कार वे विपयनी तृप्याने ॥

(काव्यम्.)

सीअं च उन्हं च सहंति मूढा, इत्तिसु सत्ता अविवेअवंता
 इलाइपुत्तं चयंति जाइं, जीअं च नासंति अरावणुव ॥५६॥

शब्दार्थ—विवेक विनाना अने स्त्रीमां ध्यातक्त थयेला मूर्ख
 पुरुषो, इलाची पुत्रनी पेठे पोतानी उत्तम जातिनो त्याग करीने
 ताढ अने तापने सहन करे वे. तेमज रावणनी पेठे जोवितव्यने
 पण नाश पामे वे. ॥ ५६ ॥

(श्रार्यावृत्तम्.)

वुत्तुणवि जीवाणं, सुडकराइं ति पावचरियाइं ॥

अयवं जा म्सा सा, पच्चाएसो हु इणमो ते ॥५७॥

पण
 एव
 तेनां अतिशे पापचरित्र एटले मागां आचर
 अतिशे डुप्कर वे. अर्थात् मुखे कहां न जाय
 कहे वे. हे जगवन! जे स्त्रीने मं धारण करी

यथो पूरावो डुप्कर ठे अने तेने लीवेज ते जव जवमां तृति
पामतो नथो. ॥ ६१. ॥

विसय विसद्वा जोवा, उप्प्रडरूवाइएसु विविहेसु ॥

जवसयसहस्सडुलहं, न मुणांति गयंपि निअप्रजम्मं ॥६२॥

शब्दार्थ—विषयरूप विषयो पीसायेला जीवो उद्भूतरूप
आदि देह विविध प्रकारनां रूपथी पोतानो जव गमावे ठे; परंतु
तेत लाख जवे पण उद्भूत एवो पोतानो मनुष्य जन्म व्यर्थ जा
य ठे एम नथी जाणता. ॥ ६२ ॥

चिठंति विसयविवसा, मुत्तं लज्जंपि केवि गयसंका ॥

न गणांति केवि मरणां, विसयंकुससस्त्रिया जीवा ६३

शब्दार्थ—विषयरूप अंकूशे साळ्या एवा जीवो विषयने व
श्य थका रहे ठे, तथा मूको ठे लाज जेमणे अने गपेली ठे शंका
जेमने एवा केटंलाएक जीवो (विषयने माटे) मरणने पण
नथो गणता. ॥ ६३ ॥

विमयविसेणां जीवा, जिणधम्मं हारिज्जण हा नरयं ॥

वचंति जहा चित्त य, निवारित्त वंजदत्तनियो ॥ ६४ ॥

शब्दार्थ—अंद थाय ठे के, विषयरूप विषयो जीवो जिनध
मने हारो नरके जाय ठे. एज कारणथी चित्र मुनिये ब्रह्मदत्त रा
ज्ञाने विषयथी निवारयो हतो. ॥६४॥

विठो ताण नराणां, जे जिणययाणामपि मुत्तूणां ॥

चत्तगइविमंयाणकरं, पियंति विसयासयं घोरं ॥६५॥

शब्दार्थ—चिक्कार थात्त! चिक्कार थात्त! तेवा पुरुषोने के, जे
जिन वचनरूप अमृतने मूकोने घारे गतिनी चिटंचना करावना
विषय रूप घोर मदिराने पीण ठे!!! ॥६५॥

मरणोवि दीणवयणं, माणधरा जे नरा न जंपंति ॥

तेवि हु कुणंति लद्धिं, बालाणं नेहगहगहिला ६६

शब्दार्थ-मानने धारण करनारा जे पुरुषो मरण आवे व्ते पण दीन वचन नहोना बोलता, तेज पुरुषो स्त्रीयोना स्नेहरूप ग्रहणो घेला अइने दोन वचनो बोले वे. ॥६६॥

सक्कोवि नेव खंमइ, माहप्प महुप्फुरं जण जेसिं ॥

तेवि नरा नारोहिं, कराविअ्या निय य दासत्तं ॥६७॥

शब्दार्थ-आ जगत्तमां जे पुरुषोनां महात्म्य अने महिमाने शकें पण न खंडन करो शके, तेवा पुरुषोनी पामे पण स्त्रीयोण पोतानुं दासपणुं कराव्युं. ॥६७॥

जउनंदणो महप्पा, जिणजाया वयधरो चरमंदतो ॥

रहनेमो राइमइ, रायमइ कासि ही विसया ॥६८॥

शब्दार्थ-धिकार आठ विषयोने! के, यादवना पुत्र, म्हाटो वे आत्मा जेना, नेमिनाथ जिनराजना ज्ञाइ, चार महावत धारक अने चरम शरीरी एवा अनेमीये पण राजीमती माघे गगम ति करी ! ॥ ६८ ॥

मयाणपवाणेण जइता-रिसायि सुरसेलनिचला चलिया ॥

ता पयःपत्तसत्ता-ण इयरसत्ताण का वत्ता ॥६९॥

शब्दार्थ-जो के मदन रूप पवनघो भेरुपर्वत सरखा नि भल मुनियो चलि गया, तो पाकर पान जेवा सच्यबाला बीजा जीवोन्तो हरे बात ? ॥ ६९ ॥

जिपंति सुहेणं चिय, हरिकरिसप्पाइणो महाकूग ॥

इकुघिय डुकेपो, कामो कयसिवसुहविरामो ॥७०॥

शब्दार्थ-सिंह, हाथो अने सर्पारिक महा

(१०८)

सुखेयी जीताय, परंतु करचो ठे मोक्षना सुखधी विराम
ए एवो एक काम जोतवो दुर्जय ठे. ॥ ७० ॥

विसमा विसयपिवासा, अणाइन्नवजावणाइ जीवाणा
अइडुजेपाणी इंदियाणि तह चंचलं चित्तं ॥७१॥

शब्दार्थ—जीवोने विषम एवा विषयनी तृपा अनादिनी सं
रनी जावना ठे. इंदियो अति दुर्जय ठे तेम चित्त पण चंचलं
कलिमल अरइ अ नुस्की, वाहो दाहाइ विविह असुहा
मरणंपि य विरहाइसु, संपज्जइ कामतवियाण ॥७१॥

शब्दार्थ—कामधी तपेला जीवोने कलिमल, अरति, नू
दाहादिक व्याधि, विविध प्रकारनां दुःख, प्रियजननो विषय
अने मरण पण धाय ठे. ॥ ७१ ॥

(काव्यम्.)

पंचिदियविसयपसंगरेसि, मणवयाणकायनविसंवरेसि
तंवाहिसि कत्तिय गलपणसि, जं अठकम्मं नवि निज्जेरो

शब्दार्थ—जे प्राणी पंचेदियना विषय प्रसंगने माटे म
वचन अने कायाने नथी संवरतो, तथा ज्ञानावरणादि आव
माने नथी निर्जरतो; ते प्राणी पोताना गलानो जग्याए का
वाहे ठे. ॥ ७३ ॥

किं तुमंघासि किंवासि धत्तुरिउ.

अद्व किं सन्निवाणा आकरिउ ॥

अमपसमधम्म जं विसय अयमत्रसे,

विमपविमविमम अमियंय बहु मत्रसे ॥ ७४ ॥

शब्दार्थ—हे जोय ! तुं तुं आंखलो ठे ? तुं तं धत्तूरो खा
ठे ? अथवा तुं तुं सन्निवात रोगे वीडाएलो ठे ? के, जे कार

(१०९)

माटे अमृत समान जिनधर्मने विपनी पेठे अवगणे ठे ? अने
विपम एवा विपय रूप विपने अमृतनी पेठे बहु मानेठं. ॥७४॥

तुळु तुह नाणविन्नाणगुणंवरु,
जलणजालासु निवडंतु जिअ निप्ररो ॥

पयइ वामेसु कामेसु जं रळसे,
जेहि पुण पुणवि निरयानले पच्चसे ॥ ७५॥

शब्दार्थ—हे जीव ! त्हां ज्ञान, विज्ञान अने गुणानो आ
ंवर, ते सर्वे निरंतर अग्निनी ज्वालामां पको, जे कारण माटे तुं
प्रकृतिये वांका एवा कामजोगमां राचे ठे, जेथी तुं फरो फरोने
नरकमां र्हेलो अग्निनी ज्वालामां पकीश. ॥ ७५ ॥

दहइ गोसीस सिरिखंठ ठारकए.

ठगल गहणठ मेरावणं विकए ॥

कप्पतरु तोमि एरंठ सो वावए,

जुळि विसएहिं मणुअत्तणं हारए ॥ ७६ ॥

शब्दार्थ—जे प्राणी अल्प एवा विपयसुखने माटे मनुष्य
पणाने हारे ठे; ते प्राणी राखने माटे गोशीर्षवंदन अने सूखड
ने वाचे ठे, बोकमो ग्रहण करवा माटे ऐरावत हाथीने वेचे ठे
अने कड्यवृक्षने उखेनी नांखी एरंठाने वावे ठे ॥ ७६ ॥

(अनुष्टुप्वृत्तम्)

अधुवं जीवियं नच्चा, सिद्धिमग्गं वियाणिया ॥

विणिअट्टिळु जोगेसु, आउ परिमिअ मप्पणो ॥७७॥

शब्दार्थ—जीवितव्यने अशाश्वत जाणोने, मोक्ष मार्गना
सुखने शाश्वत जाणोने अने आउखुं अपरिमित (प्रमाण विनानुं)
जाणीने जोगथी विदोष निवर्त्तवुं. ॥ ७७ ॥

जैसे रागादिकने पोताने वश्य करचा ठे, तेना वश्यमां सर्व प्र
कारनां सुख ठे. ॥ ८७ ॥

केवल डुहनिम्मविए, पमियो संसारसायरे जीवो ॥

जं अणुहवइ किलेसो, तं आसव हेउअं सवं ॥८८॥

शब्दार्थ—आ जीव केवल दुःखे निपजावेला संसार समु
द्रमां पड्यो ठे अने त्यां जे क्लेशने (दुःखने) अनुजवे ठे, ते सर्व
आश्रवनां कारण ठे. ॥ ८८ ॥

ही संसारे विहिणा, महिलारूवेण मंदिअं जालं ॥

वसंति जन्न मूढा, मणुआ तिरिआ सुरा असुरा ८९

शब्दार्थ—ही इति खेदे ! आ संसारमां स्त्रीना रूपे वरी
विघाताए जाल मांमो ठे. जे जालमां मूढ एवा मनुष्यो, तिर्य
चो, सुरो अने असुरो बंधाय ठे ! ॥ ८९ ॥

विसमा विसय जुअंगा, जेहिं रुसिआ जिआ नववाणंमि
कोसंती डुहग्गीहिं, चुलसीई जोणि लखेसु ॥९०॥

शब्दार्थ—नव रूपी वनमां अर्थात् संसार रूपी वनमां र
खरता एवा जे जीवोने विषम एवा विषय रूप सर्पो इश्या, ते
जीवो दुःख रूप अग्रिये दुःख पामता घका घोराशीलाव जी
वाजोनिमां क्लेश पामे ठे. ॥ ९० ॥

संसारचारगिम्हे, विसयकुवाणण लुकिःया जीवा ॥

हियमहियं अमुणांता, अणुहवइ अणांतडुक्काई ॥९१॥

शब्दार्थ—संसारना मार्ग रूप विष्मकालमां विषय रूप न
वाग वापेरुपी सूत्रापेसा जीवो हित अहितने न जाणता घका
अनंत दुःखाने अनुजवे ठे. ॥ ९१ ॥

दादा डुरंत डुवा, विसय तुरंगा कुसिम्किया लोए ॥

नामण नवाम्हीए, पामंति जिआण मुवाणं ॥९२॥

(११३)

शब्दार्थ-हा ! हा ! आ संसाररूप लोकमां दुःखे करी अं
त ठे जेनो, दुष्ट अने विपरीत शीखवेला एवा विषयरूप घोडा
उं मुग्ध जोवोने नयंकर एवी नवरूप अटवीमां पामे ठे. ए२
विसयपिवासातता, रत्ता नारीसु पंकिलसरंमि ॥

डहिया दीणा खीणा, रुलंति जीवा नवरवणांमि ए३

शब्दार्थ-विषयरूप तृपाथी तपेला अने खीमां रक्त थये
ला जीवो नवरूपी वनमां खीरूप कादववाला सरोवरमां दुः
खीया, दीन अने क्षोण थया ठता लोटे ठे. ॥ ए३ ॥

गुणकारियाइ धणियं, धिइरङ्कु निअंतिअप्राइ तुह जीव
निययाइ इंदियाइ, वल्लिनिअत्ता तुरंगुव ॥ ए४ ॥

शब्दार्थ-हे जीव ! धिरजरूप दोरडाथी वश्य राखेली
पोतानी इंदियो लगाममां वश्य राखेला घोडानी पेठे अतिशे
फायदाकारक ठे. ॥ ए४ ॥

माणवयणकायजोगा, सुानअत्ता तेवि गुणकरा हुंति ॥
अनिअत्ता पुण नंजति, मत्तकरिणुव सीलवणां ॥ ए५ ॥

शब्दार्थ-मन, वचन अने कायाना योग वश्य करचा ठता
ते पण गुणकारी थाय ठे अने नहि वश्य करचा ठता मदेन्मत्त
इस्तिनी पेठे शीलरूप वनने जागे ठे. ॥ ए५ ॥

जह जह दोसा विरमइ, जह जह विसएहिं होइ वेरगं ॥
तह तह विनायधं, आसन्नं से य परमपयं ॥ ए६ ॥

शब्दार्थ-जेम जेम दोपो विराम पामे ठे अने जेम जेम
विषयथी वैराग्य थाय ठे, तेम तेम जाणवुं के, तेने (मोह)
दुकडुं थाय ठे. ॥ ए६ ॥

डकर मेएहिं कयं, जेहिं समठेहिं जुवणठेहिं ॥

नगं इंदियसिन्नं, धिइपायारं विलग्गेहिं ॥ ए७ ॥

शब्दार्थ—जे पुरुष पोताना सामर्थ्यपणाची जोवन अथवा
स्थामां इंद्रियरूप सैन्यने जागीने धिरजरूप प्राकार (गड)ने व
लग्या, ते पुरुषे दुष्कर काम करचुं एम जाणवुं. ॥ ९७ ॥

ते धन्ना ताण नमो, दासोऽहं ताण संजमधराणं ॥

अश्रुति पठिराज, जाण न हियए खमकंति ॥ए७॥

शब्दार्थ—तेज पुरुषोने धन्य ठे, तेमनेज अमे नमस्कार
करीए ठोए अने तेज संयमधारीना अमे दास ठीए के, जे पुरु
षोनां हृदयमां अहिं आंखे जोनारी अथात् कटाक्ष नेत्रे जोनारी
स्त्री खटकती नथी. ॥ ९८ ॥

किं बहुणा जइ वंठसि, जीव तुमं सासयं सुहं अरुहं ॥

ता पियसु विसयविमुहो, संवेगरसायणं निच्चं ॥ए९॥

शब्दार्थ—वधारे कहेवाची शुं ? हे जीव ! जो तुं निरोग
एवा शाश्वत सुखने वांठतो होय, तो विषयची विमुख था अने
निरंतर संवेग रसायणने पी. ॥ ९९ ॥

॥ इति श्री इंद्रियपराजयशतक समाप्तम्. ॥

॥ श्री वैराग्य शतकम् ॥

मंसारंमि असारं, नन्नि सुहं याद्वियेअणापठरे ॥

जाणतो इह जीवो, न कुणाइ जिणदेसियं धम्मं ॥१॥

शब्दार्थ—असार तेमज व्याधि अने वेदेनाची जगपूर एवा
आ मंसारंमां मुक्त नथी, एम जाणतो वतो जीव जिनराजे क
हेला धर्मने आचरतो नथी. ॥ १ ॥

(११५)

अद्यं कष्टं परं परारिं, पुरिसा चिंतंति अन्नसंपत्तिं ॥
अंजलिगयं व तोयं, गलंतमाऽऽन्नं न पिबंति ॥१॥

शब्दार्थ—पुरुषो “ आज, काल, पहोर अथवा परार मने घन संपत्ति मलशे. ” एम विचार करे ठे; परंतु अंजलोमां रहे ला पाणीनी पेटे गली जतां आयुष्यने नथी जोता. ॥ १ ॥

जं कष्टे कायवं. तं अङ्गं चिप करेह तुरमाणा ॥
बहुविग्धो हु मुहुत्तो, मा अवरएहं पम्किहेह ॥३॥

शब्दार्थ—हे प्राणीयो! जे काले करवा योग्य होय तेने आ जेज करो. कारणके, एक मुहूर्तमां पण बहु विघ्नो आवी परे ठे, माटे आवता दिवसनी वाट न जूठ. ॥ ३ ॥

ही संसारसहावं, चरियं नेहाणुरायरत्तावि ॥

जे पुषण्हे दिष्टा, ते अवरएहे न दीसंति ॥४॥

शब्दार्थ—आ संसारना स्वजावना आचरणने जोशने अम ने खेद थाय ठे के, स्नेहना अनुरागमां आसक्त एवा स्वजनो सवारे देखाता इता ते सांजे देखाता नथी. ॥ ४ ॥

मा सुअह जग्गिअवे, पलाइअवंमि कीस वीसमहे ॥

तिन्नि जणा अणुलग्गा, रोगो अ जरा अ मच्चू अ ५

शब्दार्थ—हे लोको! जागवाने अवसरे अर्थात् धर्मकृत्य क रवाने वखते केम सूइ रद्दो ठे ? अर्थात् आलस करो ठे ? वली नासी जवानां स्थानके केम विसामो करो ठे ? कारणके, रोग, जरा अने मृत्यु ए वण तमारी पुंठे लागेला ठे ॥ ५ ॥

दिवसनिसाघमिमालं, आउसलिलं जीअ्राण धित्ताणं

चंदाइवइत्ता, कालरहटं जमामंति ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—चंद्र सूर्यरूप बलदो रात्रि दिवसरूप धरानी पं

क्ति वडे जीवोनां आयुष्यरूप पाणीने खेंची काढता उता काल
रूप रेंटने फेरवे ठे ॥ ६ ॥

सा नत्ति कला तं नत्ति, उसहं तं नत्ति किंपि विन्नाणं ॥

जेण धरिज्जइ काया, खज्जंती कालसप्पेणं ॥७॥

शब्दार्थ—हे ज्ञव्य जीवो! कालरूप सर्पथो ज्ञरण कराता
देहने जेनाथो रक्षण करीये एवी कोइ कला नथी, तेवुं कोइ श्री
पथ नथो अने तेवुं कोइ विज्ञान पण नथो. ॥७॥

दोहरफणिंदनाले, महिअरकेसर दिसामहदल्लिद्धे ॥

उंपीअइ कालजमरो, जणमयरंदं पुहविपजमे ॥८॥

शब्दार्थ—आ धणो खेदनी वात ठेके, कालरूप जमरो म्हो
टा शेषनागरूप नालवालां, पर्वतोरूप केशरावालां, दिशाठरूप
पत्रवाला, पृथ्वीरूप कमलने विपे मनुष्योरूप मकरंदनुं पानकरेवे।
ठायामिसेण कालो, सयलजीअणं ठलं गवेसंतो ॥
पासं कहवि न मुंचइ, ता धम्मे उद्यमं कुणाह ॥९॥

शब्दार्थ—ठलनी शोच करतो काल ठायानां मिपथी सर्व
प्राणीयोनां पदग्यांने नथो मूकतो, माटे हे ज्ञव्य जीवो! तमे
धर्मेने विपे उद्यम करो ॥ ९ ॥

कालंसि अणार्इणं जीवाणं विविहकम्मवसगाणं ॥

तं नत्ति संविहाणां, संसारे जं न संजवइ ॥ १० ॥

शब्दार्थ—अनादि काल चक्रमां जमता अने नाना प्रकारनां
कर्मने यदा गेहला जीवोने संसारमां कोइ पण एकेंडियादि जेद नथी
प्राप्त थयो, एम नथी. अथात् एकेंडियादि सर्वं जेदोमां जमेतो ठे

(अनुपुपुत्तमः)

बंधवा मुद्धिणो मध्वे, पिअमाया पुत्तजारिया ॥

पेअवाणाउ निअत्तंनि, दाउणां सल्लिजंजलिं ॥११॥

शब्दार्थ—वांघवो, मुहूर्तो, माता, पिता, पुत्र अने स्त्री, ए स
 वें मरो गयेला मनुष्यने पाणीनो अंजलो आपीने पत्नी इमशानयो
 पाग आवे वे. ॥ ११ ॥

(आर्यायुजम.)

विहमंति मुञ्चा विहमं—ति बंधव वद्वद्वा य विहमंति ॥

इको कहवि न विहमद्. धम्मो वे जीव जिणजणिउ १७

शब्दार्थ—अरे जीव ! पुत्रो, वांघवो अने स्त्रीयो ए संवेतो
 वियोग घाय वे; परंतु श्रो जिनराजे कोहला एक धर्मनो वियोग
 क्यारे पण अतो नथो. ॥ १२ ॥

अरुक्कम्मपासवद्धो, जीवो संसारचारु ठाड ॥

अरुक्कम्मपासमुको, आया मियमंदिरं ठाड ॥१३॥

शब्दार्थ—आठ कर्मरूप पासाथी बंधायलो जीव संसाररूप
 बंधीणानामां संघे वे अने आठ कर्मपागथी वंटलो आत्मा मोह
 मंदिरमां यते वे ॥ १३ ॥

विहयो सज्जासंगो. विसयमुदाहं विलागज्जलिआटं ॥

नलिणीदलगाघोखिर, जल्लवपग्गिचंगलं गघं ॥१४॥

शब्दार्थ—लक्ष्मी, स्वजन संयोग अने विलागे करीजे मुंद
 र एतां विसय मुग ए सर्वे कामलनां पत्र छपर ऐयता रदेला पा
 णोना विंदु समान अव्यंत छपल वे. ॥ १४ ॥

ते वाघ बलं ते क—सु जुष्णां अंगचंगिमा कह ॥

सधमणिउं पिणर, दिठेनठे कयनेता ॥१५॥

शब्दार्थ—ए प्राणीयो ! ते बल, ते यौवन अने ते अंगकुं शुरु
 रपणु क्यो गयु ? ते कारण माटे काते करीजे हीला न
 आ सर्वे अनिय ज्ञानी. ॥१५॥

घणकम्मपासवधो, जवनयरचनप्पहेसु विविहान ।
पावइ विम्वणान, जीवो को इव सराणं से ॥१६॥

शब्दार्थ—गाढ कर्मरूप पासाथी बंधायलो जीव संता
नगरना चौटामां विविध प्रकारनो विटवना पामेठे, माटे
सारमां ते जीवनुं कोण रक्षण करनार ठे ? ॥१६॥

घोरंमि गप्पवास, कलमलजंवालअसुइवीजत्ते ।
वसिउं अणंतखुत्तो, जीवो कम्माणुजावेण ॥१७॥

शब्दार्थ—जाव, घोर अने उदरमां रहेला पदार्थोथी
चि तेमज जयंकर एवा गर्जवासमां पोतानां कर्मना प्रच
अनंतीवार वश्यो ठे. ॥१७॥

बुलसीइ किर लोए, जोणीणं पमुहसयसहस्साइ
इक्किम्मि अ जीवो, अणंत खुत्तो समुप्पनो ॥१८॥

शब्दार्थ—शास्त्रमां चोराशो लाख योनी कही ठे अने
रेक योनीमां जीव अनंतीवार उत्पन्न थयो ठे. ॥१८॥

मायापियबंधूहिं, संसारत्तेहिं पूरिउ लोउ ॥

वहुजोणिनिवासीहिं, नय ते ताणं च सराणं च ॥१९॥

शब्दार्थ—संसारमां रहेला अने घणी योनीमां निवास
नारां माता, पिता अने बंधुनए करीने आ लोक जरपूर थ
परंतु ते माता पिता विगेरे त्दारुं रक्षण करनार नथो, ते
त्हारे शरण करवा योग्य नथो. ॥१९॥

जीवो वाहिविलुत्तो, सफरो इव निज्जले तम्पफमइ
सयलोविजणो पित्तइ, को सक्को वेअणाविगमे ॥२०॥

शब्दार्थ—पीनाथी व्याप्त थयेलो जीव जल रहित स्था
मांठलानी पेटे तरफने ठे. सर्व लोक ते जीवने जूए ठे, पण

वेदना दूर करवा कोण समर्थ होय ? अर्थात् कोइ नथी. १०
 मा जाणसु जीव तुमं, पुत्त कलत्ताइ मझ सुहहेऊ ॥
 निज्जाणं वंधणमेअं, संसारे संसरंताणं ॥ २१ ॥

शब्दार्थ—हे जीव ! तुं “आ पुत्र कलत्रादि म्हारां सुखनां
 कारण थशे.” एम तुं न जाणीश. कारणके, संसारमां जमतां
 जीवोने ते पुत्रादि उलटा वंधनरूप थाय ठे. ॥२१॥

जाणणी जायइ जाया, जाया माया पिअ्रा य पुत्तो य ॥
 अणवत्ता संसारे, कम्मवसा सब्बजीवाणं ॥ २२ ॥

शब्दार्थ—संसारमां कर्मनां वद्रयथो सर्व जीवोने एक जात
 नी अवस्था रहेली नथी. कारणके, पूर्वना जवमां माता होय ते
 बीजा जवमां खो थइ जाय, खी होय ते माता थाय, पिता होय
 ते पुत्र थाय अने पुत्र होय ते पिता पण थाय. ॥ २२ ॥

(अनुसुपूरुत्तम्.)

न सा जाइ न सा जोणी, न तं ठाणं न तं कुलं ॥

न जाया न मुअ्रा जठ, सब्बे जीवा अणंतसो ॥२३॥

शब्दार्थ—जेमां सर्वे जीवो अनंतीवार उत्पन्न थया नथी
 अने मृत्यु पाम्या नथी एवी कोइ जाति, योनी, स्थान के कुल नथी.

(आर्यावृत्तम्.)

तं किंपि नत्ति ठाणं, लोए बालग्गकोमिमित्तं पि ॥

जठ न जीवा बहुसो, सुहडुस्करंपरंपरं पत्ता ॥२४॥

शब्दार्थ—जेमां जीवो बहुवार सुख दुःखनी परंपराने नथी
 पाम्या; एवं लोकमां बालना अग्रजाग जेटुं कोइपण स्थान नथी.

सघाअं रिद्धोअं, पत्ता सब्बेवि सयणसंबंधा ॥

संसारे तो धिरममु, ततो जइ मुणसि अप्पाणं

शब्दार्थ—हे जीव! तने आ संसारमां सर्वे समृद्धि अने सर्वे स्वजनादि संबन्ध प्राप्त थाय वे, माटे जो पोताने सुखो जाणते होय तो तेथो विराम पाम. ॥१५॥

एगो बंधइ कम्मं, एगो वहबंधमरणवसणाइं ॥

विसहइ ज्वंमि जमइइ, एगुच्चिअ कम्मवेलविउ ॥१६॥

शब्दार्थ—जीव पोते एकलोज कर्मने बांधे वे, एकलो वव बंधन अने मरणानी आपत्तिने सहन करे वे; वली एकलोज कर्म थो ठगायो ठतो संसारमां जमे वे. ॥१६॥

अन्नो न कुणइ अहिअं, हियंपि अप्पा केरइ नहु अन्नो
अप्पकयं सुहउरं, जुंजसि ता कोस दीणमुहो ॥१७॥

शब्दार्थ—हे प्राणिन्! त्हां वीजुं कोइ अहित करतुं नथी. तेमज त्हां पोतानुं हित पण तुं पोतेज करे वे, वीजुं कोइ करतुं नथी, माटे तुं पोतानुं करेलुं सुख दुःख जोगवे वे, तो पत्ती शा कारण माटे दीन मुखवालो थाय वे? ॥१७॥

बहुआरंजविढत्तं, वित्तं विलसंति जीव सयणागणा ॥

तज्जाणियपावकम्मं, अणुहवसि पुणो तुमं चव ॥१८॥

शब्दार्थ—हे जीव! तें पोते बहु आरंजथी मेलवेलुं जे घन वे तेणे करीने त्हां स्वजनो विलास करे वे अने वली ते आरंजथी उत्पन्न थयेलां पापने तुं पोते एकलोज नरकमां अनुभव करोशं. अहं दुस्किअइ तहं जु—स्किअइ, जहं चितियाइ मिंजाइ तहं थोवंपि न अप्पा, विचिंतिउ जीव किं जणिमो १८

शब्दार्थ—थरे मूर्ख जीव! तें जेवी रीते त्हां दुःखी थता झूळ्या एवा बालकोनो विचार करयो वे तेवी रीते त्हां पोतानो विचार कस्यो नथी, तो हवे तने शुं कहुं? ॥१९॥

खण्णजंगुरं सरीरं, जीवो अत्रो अ सासयसरूवो ॥
कम्मवसा संबंधो, निव्वंधो इत्त को तुअ ॥ ३० ॥

शब्दार्थ—शरीर क्खण्णजंगुर अने तेथो जूदो एवो जीव शा
श्वत रूपवालो ठे. वलो एवेनो कर्मना वडयथो संबंध थयो ठे तो
पणी हे जीव! ह्यारे ए शरीरने विपे मूर्छा शामाटे राखवी जोइये?
कह आयां कह चलिअं, तुमंपि कह आगज कहं गमिहो॥
अनुअं पि न याणह, जीव कुडुंबं कज तुअ ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ—हे जीव! आ कुडुंबं क्याथी आब्युं अने क्यां गयुं?
तुं पण क्यांथी आब्यो अने क्यां जइश? वलो तमे परस्पर एठ
वीजाने जाणता नथो तो पणी ते कुडुंबं त्हांरुं क्यांथी? ३१

खण्णजंगुरे सरीरे, मणुअजवे अप्पडलसारिठे ॥

सारं इत्तिअमित्तं, जं कीरइ सोहणो धम्मो ॥३०॥

शब्दार्थ—शरीर क्खण्णजंगुर अने मनुष्यजव मेघना समूह
जेवो ठे, जेथो अत्तम धर्म आचरवो एज मात्र सारठे. ३१

(अनुष्टुप्वृत्तम्)

जम्म डुरंके जरा डुरंके, रोगा य मरणाणि य ॥

अहो डुरको हुं संसारे, जन्न कीसंति जंतुणो ॥३३॥

शब्दार्थ—जन्म संबंधी डुःख, जरावस्था संबंधी डुःख, रो
गो अने मरण ए पण दुःखमय ठे; भाटे आ संसारज डुःखरूप
ठे के, जेमां पाणीयो हेइ पामे ठे. ॥३३॥

(आर्यावृत्तम्)

जाव न इंदियहाणी, जाव न जररस्कसी परिफुरइ ॥

जाव न रोगविआारा, जाव न मच्चू समुद्धिअई ॥३४॥

शब्दार्थ—ज्यां सुधीमा इंदियो क्षोण थइ नथी. ज्यां सघा

शब्दार्थ—हे जीव! तने आ संसारमां सर्वं समृद्धि अने सर्वं स्वजनादि संबंध प्राप्त थाय ठे, माटे जो पोताने मुखो जाणतो होय तो तेथी विराम पाम. ॥१५॥

एगो बंधइ कम्मं, एगो बहबंधमराणवसाणाइं ॥

विसहइ ज्वंमि जममइ, एगुच्चिअ कम्मवेलविज्ज ॥१६॥

शब्दार्थ—जीव पोते एकलोज कर्मने बांधे ठे, एकलो बंध, बंधन अने मरणानी आपत्तिने सहन करे ठे; वली एकलोज कर्म थो उगायो ठतो संसारमां जमे ठे. ॥१६॥

अन्नो न कुणइ अहिअं, हियंपि अप्पा केरइ नहु अन्नो
अप्पकयं सुहउरं, जुंजसि ता कोस दीणमुहो ॥१७॥

शब्दार्थ—हे प्राणिन्! त्हां वीजुं कोइ अहित करतुं नथी. तेमज त्हां पोतानुं हित पण तुं पोतेज करे ठे, वीजुं कोइ करतुं नथी, माटे तुं पोतानुं करेलुं सुख दुःख जोगवे ठे, तो पवी शा कारण माटे दीन मुखवालो थाय ठे? ॥१७॥

बहुआरंजविढत्तं, वित्तं विलसंति जीव सयणगणा ॥

तज्जाणियपावकम्मं, अणुहवसि पुणो तुमं चेव ॥१८॥

शब्दार्थ—हे जीव! तें पोते बहु आरंजथी मेलवेलुं जे धन ठे तेणे करीने त्हारा स्वजनो विलास करे ठे अने वली ते आरंजथो उत्पन्न थपेलां पापने तुं पोते एकलोज नरकमां अनुजव करोश.

अहं दुक्खिआइ तहं जु—रुक्खिआइ, जहं चिंतियाइ मिंजाइ
तहं थोवंपि न अप्पा, विचिंतिज जीव किं जणिमोइए

शब्दार्थ—अरे मूर्ख जीव! तें जेवी रीते त्हारा दुःखी थता जूरुव्या एवा बालकोनो विचार करथो ठे तेवी रीते त्हारो पोतानो विचार करथो नथो, तो हवे तने गुं कहुं? ॥१९॥

निसाविरामे परिज्ञावयामि, गेहे पलिते किमहं सुआमि
मक्षंतमप्पाणमुवस्कयामि, जं धम्मरहितं दिअहा गमामि ॥

शब्दार्थ—हे जीव! तने आवो विचार केम नथी आवतो के,
हुं पाठलो चार घनो रात रहे एटले आवो विचार करुं के, जे हुं
धर्म रहित दिवसो केम गमावुं तुं ? घर बलवा मांडये ठते केम
सुइ रहुं तुं ? अने बलता एवा आत्मानो केम उपेक्षा करुं तुं ?

(अनुष्टुप् वृत्तम्)

जाजा वच्चइ रयणी, न सा पमिनिअत्तइ ॥

अहम्मं कुणमाणस्स, अहला जंति राइत्त ॥४०॥

शब्दार्थ—जे जे रात्री दिवसो जायठे तेते पाठा आवता नथी.
कारणके, अधर्म करनार माणसना रात्री दिवस निष्फल जाय ठे.

जस्स त्वि मञ्जुणासकं, जस्स व त्वि पलायणं ॥

जो जाणे न मरिस्सामि, सोहु कंखे सुए सिया ॥४१॥

शब्दार्थ—जेने मृत्युनी साथे मित्रंता ठे, जेने मृत्युथी ना
सी जवुं ठे. वली जे पुरुष एम जाणे ठे के, हुं मरीश नहि, ते
पुरुष कदापि आवती काले धर्म करवानी इच्छा करे ठे. ॥४१॥

(आर्यावृत्तम्)

दंरुकलिअं करित्ता, वच्चंति हु राइत्त अ दिवसा य ॥

आउस संविद्धंता, गयावि न पुणो निअत्तंति ॥४२॥

शब्दार्थ—फालका उपरथो दंरुवने सूत्रने उकेलवानी पेठे
आयुष्यने उकेलता एवा रात्री दिवसो चाढया जाय ठे अने ते
गयेला रात्री दिवसो पाठा आवता नथी. ॥ ४२ ॥

(१२४)

(उपजातिवृत्तम्)

जहेह सोहो व मियं गहाय, मच्चू नरं नेइ हु अंतकाले ॥

नतस्स मायावपियावजाया, कालंमितंमिंऽसहरा ज्वंति

शब्दार्थ—जेम आ लोकमां सिंद् मृगने पकरोने मारी नाखे
वे तेम मृत्यु माणसने निश्चे विनाश पमोने वं; पण ते वखते ते
माणसने माता, पिता अने ज्ञाइ रक्षण करवा समर्थ घता नथी.

(आर्यावृत्तम्)

जिअं जलविंदुसमं, संपत्तीं तरंगलोलात्त ॥

सुमिणायसमं च पिम्मं, जं जाणसु तं करिज्जासु ४४

शब्दार्थ—जीवित दर्शना अग्रजाग उपर रहेला जलविंदु
समान, संपत्तियो जलना तरंगो समान अने प्रेम सप्र समान
वे, माटे जो ते तेवुं जाणतो होय तो धर्म आचर. ॥ ४४ ॥

(रथोऽस्तावृत्तम्)

संजरागजलबुब्बुत्तवमे, जीविए अ जलविंदुचंचले ॥

जुधणे य नइवेगसन्निजे, पावजीव किमियं न बुप्रसे ४५

शब्दार्थ—संध्या समयनो रंग, पाणीनो परपोटो अने दर्श
ना अग्रजाग उपर रहेलुं पाणीनुं विंदु, तेना समान जीवित व
ते, वलो नदीना वेग समान युवावस्था ठते हे पाप जीव ! तुं
बोध नथी पामतो ए शुं ? ॥ ४५ ॥

(आर्यावृत्तम्)

अन्नञ्च मुञ्जा अन्नञ्च गेहिणी परिअणोवि अन्नञ्च ॥

नूअवल्लिच्च कुडुवं, पक्खित्तं हयकयंतेण ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ—अरे निंदा करवा योग्य काले भूतने वलिदान आ
पवानो पेठे पुत्रोने जूदी गतिमां, खीने जूदी गतिमां अने परि

वारने जूदी गतिमां; एम सर्व कुटुंबने जूड जूड करी नाख्युं ठे.
 जीवेण ज्वेज्वे मि-लियाइ, देहाइ जाइ संसारे ॥
 ताणं न सागरेहिं, कीरइ संखा अणंतेहिं ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ—हे आत्मन् ! आ संसारमां जीवे, ज्वे ज्वमां जे
 देहो मेलव्या ठे, तेउनी अनंता सागरोपमथी पण संख्या घइ
 इके तेम नथो. ॥ ४७ ॥

नयणोदयंपि तासिं, सागरसलिलाउ बहुयरं होइ ॥

गलियं रुयमाणोणं, माऊणं अन्नमन्नाणं ॥४८॥

शब्दार्थ—हे आत्मन् ! ते अपर अपर जन्मनो रुदन करती
 माताउनां आंसुनां जलनुं प्रमाण समुद्रनां जलथी पण वधारेठे.
 जं नरए नेरइआ, उहाइ पावंति घोरणंताइ ॥

ततो अणंतगुणिअं. निगोअमझे उहं होइ ॥४९॥

शब्दार्थ—नरकमां नारकी जीवो जे घोर अनंत दुःख पा
 मे ठे, तेनापो अनंतगणु दुःख निगोदमां ठे. ॥ ४९ ॥

तंमिचि निगोअमझे. वसिउ रेजीव विविहकम्मवसा ॥

विसहंतो तिस्कउहं, अणंतपुग्गलपरावत्ते ॥ ५० ॥

शब्दार्थ—अरे जीव ! विविध कर्मना वदयथी ते निगोदनी
 मध्ये पण तुं तोदश दुःखने सहन करतो उतो अनंत पुज्जलप
 रावत्त काल सुधी वदयो ठे. ॥ ५० ॥

नीहरिअ कइचि ततो, पतो मणुअत्ताणंपि रेजीव ॥

तइचि जिणवरधम्मो, पतो चिंतामणिसरिद्धो ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ—अरे जीव ! मदा कष्टे करीने ते निगोदयो नीर
 ली तुं मनुष्य पणाने पाम्यो ठे अने तेमां पण चिंतामणि रत्न
 सरखा जिनेश्वरता धर्मने पाम्यो ठे. ॥ ५१ ॥

पत्तेवि तंमि रेजीव, कुण्णसि पमायं तयं तुमं चेव ॥
जेणं ज्वंधकूवे, पुण्णोवि पमिउं उहं लहसि ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ—अरे जीव ! ते जिनेश्वर धर्म प्राप्त थपा उता प
ण तुं जेनाथी फरीने पण संसाररूप कूवामां पन्तेने बुख पमाय
एवा प्रमादने करे ठे. ॥ ५२ ॥

उवलदो जिणधम्मो, न य अणुविन्नो पमायदोसेणां ॥
हा जोव अप्पवेरि अ. सुबहुं परउं विसूरहिसि ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ—हे जीव ! तने जिनेश्वरनो धर्म प्राप्त थयो; पण
ते प्रमादना दोषथी तेने रोव्यो नहि; जेथी हे आत्मनेरो ! तुं
आगत बहुत रोव करीश. ॥ ५३ ॥

सोअंति ते वराया, पछा समुयच्छिअंमि मग्गामि ॥

पायपमायसेणां, न संचिउं जेहिं जिणधम्मो ॥ ५४ ॥

शब्दार्थ—जेमणे पावरूप प्रमादना गटथी तिनधर्म नथी
मेणो ते संक पुण्यो मरण प्राप्त थये उते ठोक करे ठे. ५४

धी धो धी मंगारं, देयां मग्गिणा जे तिगी होइ ॥

मग्गिणा गयगपा, पग्गिणइ निरपजात्ताण ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ—आ मंगारनेत्र भिकारंठे ! भिकारंठे ! भिकार
ठे !!! कारणंठे, देवता मग्गिने निर्णव थापंठे अने सकलनी मग्गि
ने नरुन्ते ज्ञायामां पचायंठे. ॥ ५५ ॥

जणइ अण्णोदो जीयो, दुमग्ग पुण्यंय कम्मवापाहउ ॥

धनधन्नाइग्गाणं, धम्मयाणकुट्टंय मिद्धंरि ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ—धनधन जीव धन, धान्य, धानरण, धर, धानन
अने कुट्टंवेने एवरीने धर्मद्वय थापुथी इणायां उता युक्तनां पुण्यनी
देउ नंठे दंठे. (मग्गी मग्गि वामंठे.) ॥ ५६ ॥

(१५४)

वसिष्ठं गिरीसु वसिष्ठं, दरोसु वसिष्ठं समुद्रमशंमि ॥

रुक्मिण्येसु अ वसिष्ठं, संसारे संसरंताणं ॥ ५७ ॥

शब्दार्थ—हे आत्मन्! संसारने विषे जमता एवा तें पर्वतो उपर,
गुफामां, समुद्रमां अने वृक्षोनां अग्रजागने विषे निवास करयो वे.

देवो नेरइत्त ति य, कीम पयंगु ति माणसो एसो ॥

रुक्मिणी य विरुवो, सुहजागी इकजागी य ॥ ५८ ॥

शब्दार्थ—हे जीव! तूं केटलीक वग्वत देवता, नारकी, कीढो,
पतंग अने मनुष्य थयो वे. वली तेनो तेज तूं केटलीक वग्वत रु
पवंत, कुरूपवंत, सुखी अने दुःखी थयो वे. ॥ ५८ ॥

राजति अ इमगुत्तिअ, एस सपागुत्ति एस वेअविऊ ॥

सामी दासो पुळो, खलुत्ति अधाणो धाणय इत्ति ॥ ५९ ॥

शब्दार्थ—एज तूं केटली वग्वत राजा, जोग्यारी, रंमाल,
ब्राह्मण, स्वामी, दास, पूज्य, ग्वल, निर्धन अने धनवंत थयो वे.
नविअठिकोइनियमो, सकम्मविणिविठसरिसक यचिठो
अनुन्नरुववेसो, नडुव परिअत्तए जीवो ॥ ६० ॥

शब्दार्थ—ए पूर्वं कोइलामां कोइ जातनो नियम नथो. कार
णके, पोते पोतानां कर्मनो रचना प्रमाणे चेष्टा करनारो जीव न
टनो पठे जूदा जूदा रूप लइने परवा करे वे. ॥ ६० ॥

नरएसु वेयाणां, अणोवमां असायवहुलां ॥

रे जीव तए पत्ता, अणांतखुत्तो बहुविदां ॥ ६१ ॥

शब्दार्थ—अरे जीव ! तें नरकमां उपमा गदित अने अशा
ता वेदनावालो बहु प्रकारनी वेदनां अनंतीवार प्राप्त करी वे.

देवते माणुअत्ते, पराजितंगत्तां उवगएणं ॥

जीसणाडुदं बहुविदं, अणांतखुत्तो समणुज्ज ॥

शब्दार्थ—हे जीव! तें देवपणामां, मनुष्यपणामां परंतु प
 णाने पामवावडे बहु प्रकारनुं जयंकर दुग्ध अनंतीवार अनुत्पन्नं
 तिरिअगइं आणुपत्तो, जीममहावेअणा आणोगविहा ॥
 जम्माणमरणरह्हे, आणंतखुत्तो परिप्रमिउ ॥ ६३ ॥

शब्दार्थ—हे जीव! तीर्थच गतिने पामेल्लो तुं अनेक प्रकारनी
 जयंकर वेदनावाला जन्म मरण रूप रंहेटमां अनंतीवार जन्मोदुं
 जावंति केवि डुस्का, सारीरा माणसा व संसारे ॥
 पत्तो आणंतखुत्तो, जीयो संसारकंतारे ॥ ६४ ॥

शब्दार्थ—संसारमां शरीरसंबंधो अने मनसंबंधो जेटलां
 कोइ दुखो ठे ते सर्वे आ संसाररूप अरण्यमां जमतो एवो जीव
 अनंतीवार पाम्यो ठे. ॥ ६४ ॥

तएहा आणंतखुत्तो, संसारे तारिसी तुमं आसी ॥

जं पसमेउं सबो—दहीणमुदयं न तीरिजा ॥ ६५ ॥

शब्दार्थ—हे जीव! तने तेवा प्रकारनी (तृष्णा) तृया संसार
 ने विपे अनंतोवार थइ ठे के, जे तृष्णाने शमाववा माटे सर्वे
 समुद्रोनुं पाणी (तेढुं धन) पण समर्थ न थाय. ॥६५॥

आसी आणंतखुत्तो, संसारे ते तुहावि तारिसीया ॥

जं पसमेउं सबो, पुग्गलकानुवि न तरिजा ॥ ६६ ॥

शब्दार्थ—हे जीव ! वली तने संसारमां तेवी कुधा अनंती
 वार उत्पन्न थइ ठे के, जे कुधाने शमाववाने घृतादि पुज्ज समू
 हो पण समर्थ न थाय ॥ ६६ ॥

काऊण मणोगाइं, जम्माणमरणपरिअट्टणसयाइं ॥

डुस्केण माणुसत्तं, जइ लहइ जहिठ्ठिअं जीवो ॥६७॥

शब्दार्थ—ज्यारे जीव अनेक एवा जन्म मरणना शकतो पराव

(१३९)

तेने करीने दुःखधी मनुष्यजव पामे त्यारे ते इच्छित सुख पामेठे.

तं तह उल्लहलंजं. विद्धुल्लयाचंचलं च मणुअत्तं ॥

धम्मंमि जो विसीअइ, सो काउरिसो न सप्पुरिसो ६७

शब्दार्थ—जे पुरुष दश दृष्टांतथी दुर्लज्ज अने विजलीनो पे

ठे चंचल एवा ते मनुष्य जवने पामीने धर्मने विपे खेद पामेठे,

ते कायर पुरुष जाणवो पण सत्पुरुष न जाणवो ॥ ६७ ॥

(उपजाति वृत्तम्)

माणुस्सजंमे तमि लदयंमि, जिणंदधम्मो न कउ अ जेणं

तुट्टे गुणे जह धाणुक्कणं, हठा मलेवा य अवस्स तेणं ६८

शब्दार्थ—जेणे मनुष्यजन्मरूप संसारसमुद्दो कांगे प्राप्त

धया वता जिनेइ धर्म नथो कथो तेने जेम धनुष्यनी दोरी

बुटो जवाथी धनुष्यघारो पुरुषने हाथ घसवा पमे ठे तेम अ

वदय हाथ घसवा पमे ठे. ॥ ६८ ॥

रेजीव निसुणि चंचलसहाव. मिल्हेविणु सयलवि वझजाव

नवजेअपरिग्गहविलिहजाल, संसारि अठ्ठि सहुइंदअल

शब्दार्थ—अरे जीव ! सांजल. तुं चंचल स्वजाववाला आ

सर्व वाह्य जावोने अने नव जेदवाला परिग्रहना विविध समूह

ने मूकीने परलोकमां जइश, माटे संसारमां शरीरादि जे कांइ

देखाय ते सर्व इंजजाल समान ठे ॥ ७० ॥

पियपुत्तमित्तधरधरणिजाय,

इहलोइअ सब नियसुहसुहावे ॥

नविअठ्ठि कोइ तुह सरणि मुक्क,

इक्कनु सहसि तिरिनिरयइक्क ॥७१॥

शब्दार्थ—हे मूर्ख ! आ लोक संबंधी सर्व पिता, माता, पुत्र

(१३७)

मित्र, धर अने खी विगेरेनो समूह पोत पोताने सुख करवाना
स्वप्नाववालो ठे; परंतु तिर्यंच अने नरकनां दुःखने तो तुं एक
लोज सहन करीश. ते वखते तेमानुं कोइ त्हारे शरण करवा
योग्य नथो. ॥ ३१ ॥

(मागधिकावृत्तम्)

कुसग्गे जह उसविंडुए, थोवं चिठ्ठइ लंवमाणए ॥

एवं माणुअ्राण जीविअं, समयं गोअम मा पमायए ३२

शब्दार्थ—जेम दर्जना अग्रजाग उपर रहेलुं पाणोनुं विंडु
घोसो वखत रहे ठे, तेम मनुष्यनुं जीवित पण थोसो वखतनुं ठे,
माटे हे गौतम! एक समय पण प्रमादी घड्ढा नहि. ॥ ३२ ॥

संबुअह किं न बुअह, संबोही खलु पिअ ड्ढहा ॥

नो हू उवाणमंति राईउ, नो सुलहं पुणरवि जीवियं ३३

शब्दार्थ—हे जव्यजीवो ! बोध पासो. शा माटे बोध पा
मत्तो नथो ? मृत्यु पास्या पठी परजवमां बोधि ड्ढा ठे. गये
लां रात्रो दिवस पाठा थावतां नथो. तेमज जीवित पण फरो
मलयुं सुलज नथो ॥ ३३ ॥

रुहरा बुहा अ पासह, गप्पठावि चयंति माणवा ॥

सोणो जह वट्टयं हरे, एवं आउखयंमि तुइइ ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ—बालक, वृद्ध अने गर्जमां रहेला माणसो मृत्यु
पासो ठे, तेने तुं जो. वली जेम सिंचाणो तेतरने मारोठे तेम
आपुप्यनां दाय थंय जीवित शुटी जाय ठे. ॥ ३४ ॥

(आर्यावृत्तम्.)

निहुअ्राणजाणं मगंतं, दद्वणा नयंति जे न अप्पाणं ॥

विरमंति न पायाउ, धिधि धिठ्ठणं ताणं ॥ ३५ ॥

(१३१)

शब्दार्थ—जे पुरुषो मृत्यु पामता एवा त्रण जुवनना माण
सोने जोता वता पोताना आत्माने घमने विषे स्थापन करता
नथी अने पापघी निवर्तता नथी, तेजनां विष्णुणाने विष्कार ठे !
विष्कार ठे !! ॥ ७५ ॥

मा मा जंपह बहुअं. जे वधा चिकणोहिं कम्महिं ॥

सवेसि तेसि जायइ, हियोवणसो महादोसो ॥ ७६ ॥

शब्दार्थ—(अयोग्य शिष्योने उपदेश करता गुरुने जोइ
योग्य शिष्य गुरुने फेहे ठे के,) “ हे गुरो! जे पुरुषो पोतानां वि
कणां कर्मघो वंचायला ठे, तेमने बहु उपदेश न करे, कारणे
ते अयोग्य शिष्योने हितोपदेश महा दोषवालो घाय ठे. ॥ ७६ ॥

कुणसि ममतं धणसय-ण विह्वपमुहेसु अणान्तडुम्केसु ॥
सिढिलेसि आपरं पुण, अणान्तसुक्कंमि मुक्कंमि ॥ ७७ ॥

शब्दार्थ—जे आत्मन ! तं अनंत दुःखनां कारण णया धन
म्वजन अने लक्ष्मी विगेरमां ममता करे ठे अने वती अनंत सु
खवाला मोक्षने विषे आदरने शिथिल करे ठे. ॥ ७७ ॥

संसारो दुःहेक, दुःखफलो दुःसहदुःखरुवो अ ॥

न चयंति तंवि जीवा, अश्वत्ता नेहनिअलेहिं ॥ ७८ ॥

शब्दार्थ—हे जीव ! आ संसार दुःखनुं कारण, दुःख ठे व
ल जेनुं एवो अने दुःसह दुःखरूप जे ठे. स्नेहरूप बेसीधो वंचायला
जीवो ते संसारने पण त्यजी देता नथी. ॥ ७८ ॥

निअकम्मपयाणचत्तिन्, जीवो संसारवत्तणणे घोरं ॥

या या विह्वणान्, न पावण दुःसहदुःखान् ॥ ७९ ॥

शब्दार्थ—आ घोर संसाररूप अरण्यमां पोतानां स्नेहरूप
पवनघो वंचल एवो जीव ! जेनापो दुःसह दुःख दृश्य घाय ठे

एवी कइ कइ वध वंधनादि विटंवना नथी पाम्यो ? अथांत त
वे पाम्यो ठे. ॥ ७६ ॥

सिसिरंमि सोअलानिल-लहरिसहस्सेहिं जिन्नघण्णदेहो
तिरिअत्तणंमिउरत्ते, अणंतसो निहणमणुपत्तो ॥ ७७ ॥

शब्दार्थ—हे जीव ! तूं तिर्यंच जवमां अरण्यने विपे शिंया
लामां शितल पवननी इजारो लहेरोथो जेदोयला दृढ देहवालो
घश्ने अनंतीवार मृत्यु पाम्यो ठे. ॥७७॥

गिम्हायवसंततो, रत्ते वुहिउ पिवासिउ बहुसो ॥

संपत्तो तिरिअजवे, मरणदुहं बहु विसूरंतो ॥७८॥

शब्दार्थ—हे जीव ! तूं तिर्यंच जवमां अरण्यने विपे उनाला
ना तापथो तप्त थयो ठतो बहुवार नूख्यो तथा तरइयो घश्ने
बहु खेद पामतो मृत्यु पाम्यो ठे. ॥७८॥

वासासुउरन्नमझे, गिरिनिश्चरणोदगेहिं वशंतो ॥

सीअनिलमद्यविउ, मजसि तिरिअत्तणे बहुसो ७९

शब्दार्थ—हे जीव ! तूं तिर्यंच जवमां चोमासाने विपे वनमां
पर्वतोनां ऊरणानां पाणीथो खेवाश्ने शितल पवनथी दग्ध थयो
ठतो बहुवार मृत्यु पाम्यो ठे. ॥७९॥

एवं तिरिअजवेसु, कीसंतो उक्कसयसहस्सेहिं ॥

वसिउ अणंतखुत्तो, जीवो जीसणजवारत्ते ॥८०॥

शब्दार्थ—ए प्रमाणे तिर्यंच जवमां शेंकडो उःखोथी क्लेश
पामतो जीव जयंकर संसाररूप अरण्यमां अनंतीवार वश्योठे.
उठठंक्रमपलया-निलपेरिउ जीसणंमि जवरत्ते ॥

हिंरंतो नरएसुवि, अणंतसो जीव पत्तोसि ॥ ८४ ॥

शब्दार्थ—हे जीव ! उष्ट एवां आठ कर्मरूप प्रलयकालना प

नथी प्रेरायेलो तुं ज्ञयंकर संसाररूप धरण्यमां चालतो ठतो न
कने विषे पण अनंतीवार दुःख पाम्यो ठे. ॥७४॥

सत्तसु नरयमहीसु, वज्जानलदाहसीअविअण्णासु ॥

सिद्ध अण्णंतखुतो, विलवंतो करुणसद्धेहिं ॥ ७५ ॥

शब्दार्थ—हे जीव! वज्राग्निनो दाह ठे जेमां तथा अत्यंत
शीत वेदना ठे जेमां एवी सात नरक पृथ्वीमां तुं करुण शब्दधी
वेलाप करतो ठतो अनंतीवार वश्यो ठे. ॥७५॥

पियमायसयण्णरहिद्ध, दुरंतवाहिहिं पीण्णि बहुसो ॥

माणुअज्जवे निस्सारे. विलाविद्ध किं न तं सरसि ७६.

शब्दार्थ—अरे जीव! आ सार रहित मनुष्यज्वमां पिता
मातादि स्वजनथी रहित अने महा व्याधिधी बहुवार पीडा पा
मतो तथा विलाप करतो तुं ते मनुष्य ज्वने शुं नथी संज्जारतो?

पयण्णुव्व गयण्णमग्गे, अलस्किद्ध जमइ जववाणे जीवो ॥

ठाण्णठाण्णि समुच्चिक्कण, धणसयण्णसंधाए ॥ ७७ ॥

शब्दार्थ—जीव आ संसाररूप जनमां ठेकाणे ठेकाणे धन
स्वजनना समूहने त्यजी दइ आकाशमां पवननी पेटे अदृश्य
वयो ठतो जमे ठे. ॥७७॥

विद्धिज्जंता असयं, जम्मजरामरणतिस्सकुकुंतेहिं ॥

इहमाणुहवंति घोरं, संसारे संसरंत जीअ्रा ॥७८॥

तद्धवि खण्णंपि कयावि हु, अत्राण्णुयंगमंकिअ्रा जीवा

संसारचारगाद्ध, नयद्ध विद्धंति मूढमाणा ॥ ७९ ॥

शब्दार्थ—संसारमां जमता एवा जीवो जन्म, जरा अने म
रणरूप तोदण ज्ञालाथो निरंतर विंधाया ठता घोर दुःखने अ
नुज्वे ठे तो पण मूढ मनयाला अने अज्ञानरूप जुजंगपो कता
यला जीवो क्यारे पण निधे संसाररूप बेपीखानामांपो हलमाअ

उद्वेग पामता नथी. ॥८८-८९॥

कीलसि किञ्चिंतवेलं, सरीरवावीड जड पइसमयं ॥

कालरहदघनीहिं, सोसिज्जइ जीविञ्चिंजोहं ॥ ९० ॥

शब्दार्थ—हे जीव! तું शरीररूपी वाच्यने विषे केटली वखत सुयी क्रीडा करीश? के, जे वाच्यमां समये समये कालरूप रहें टनी घनीयोथो जीवितरूप पाणीनो प्रवाह सूकाइ जायठे.

रे जीव वुप्प मा मुप्प, मा पमायं करेसि रे पाव ॥

किं परलोए गुरुडुक्क-जायणं होहिसि अयाण ॥ ९१ ॥

शब्दार्थ—अरे जीव! तું वोव पाम. मोह न पाम. अरे पाव! तું धर्ममां प्रमाद न कर अरे अज्ञान! तું परलोकमां महा दुःख नो पात्र केम थाय ठे? ॥ ९१ ॥

वुप्पसु रे जीव तुमं, मा मुप्पसु जिणमयंमि नाऊणं ॥

जन्ना पुणरवि एसा, सामग्गी दुल्लहा जोव ॥ ९२ ॥

शब्दार्थ—अरे जीव! तું वोव पाम अने धर्मस्वरूप जाणीने जिनमतमां मोह न पाम. अरे जीव! कारण के, फरीथी आ सा मग्गी मलवी डुल्लंन ठे. ॥ ९२ ॥

दुल्लहो पुण जिणधम्मो, तुमं पमायायरो सुहेसी य ॥

दुसहं च नरयदुक्कं, कह होहिसि तं न याणामो ॥ ९३ ॥

शब्दार्थ—जिनधर्म फरीथी मलवो डुल्लंन ठे. तेम तું प्रमाद नो खाण अने सुखनी इच्छा करनारो ठे. वली नरक दुःख दुःसद ठे, माटे हुं नथो जाणतो के, परलोकमां तું केम थइश, अथात् त्हारी इी गति थइ? ॥ ९३ ॥

अथिरेण थिरो समले-ण, निम्मलो परवसेण साहीणो ॥

देहेण जइ विट्ठप्पइ, धम्मो ता किं न पज्जतं ॥ ९४ ॥

शब्दार्थ—जो अस्थिर, मलिन अने परस्वाधिन एवा वेहथी

स्थिर, निर्मल अने स्वाधिने एवो धर्म मेलवी शकाय तो पठी
शुं प्राप्त करयुं न कहेवाय ? ॥९४॥

जह चिंतामणिरयाणं, सुलहं न हु होइ तुन्नविहवाणं ॥

गुणविहववज्जिअ्राणं, जिअ्राण तह धम्मरयाणंपि ९५

शब्दार्थ—अल्प पुण्यवाला जे म चिंतामणि रत्न सुलज्ज न ज
होय तेम गुणविज्जव रहित जीवोने धर्मरत्न पण सुलज्ज न होय.

जह दिन्नीसंजोगो, न होइ जच्चंधयाण जीवाणं ॥

तह जिणमयसंजोगो, न होइ मिच्छंधजीवाणं ॥ ९६ ॥

शब्दार्थ—जे म जन्मांध जीवोने आंखोथी देखवुं थतुं नथी
तेम मिथ्यात्वथी आंधला जीवोने जिनमतनो संयोग थतो नथी.

पच्चस्कमणांतगुणे, जिणांदधम्मे न दोसलेसोवि ॥

तहवि हु अत्राणांधा, न रमंति कयावि तंमि जिअ्रा ९७

शब्दार्थ—प्रत्यक्ष एवा अनंतगुणवाला जिनराजना धर्मेने
विषे दोपनो लेश मात्र नथी. तोपण अज्ञानथी आंधला जीवो
निश्चे ते धर्मेने विषे क्यारे पण रमता नथी. ॥९७॥

मिच्छे अणांतदोसा, पयमा दीसंति नवि य गुणलेसो ॥

तहवि य तं चैव जिया, हा मोहंधा निसेवंति ॥ ९८ ॥

शब्दार्थ—मिथ्यात्वथी प्रगट अनंत दोषो देखाय ठे अने
गुणलेश देखातो नथी. तोपण मोहथी आंधला जीवो ते मिथ्या
त्वनेज सेवे ठे. ए घणुं आश्चर्य ठे. ॥९८॥

धि श्री ताण नराणां, वित्राणे तह गुणोसु कुसल्लसं ॥

सुहसच्चधम्मरयाणे, सुपरिखं जे न जाणंति ॥९९॥

शब्दार्थ—सुखरूप अने सत्यरूप धर्मरत्नने विषे जे पुरुषो
उत्तम परीक्षा नथी जाणता, ते पुरुषोना विज्ञानने विषे अने गु
णने विषे कुशलपणाने धिक्कार थानुं! धिक्कार थानुं!! ९९

(१३६)

(अनुष्टुप् वृत्तम्)

जिणधम्मोऽयं जीवाणं, अप्पुवो कप्पपायवो ॥

सग्गापवग्गसुस्काणां, फलाणं दायगो इमो ॥ १०० ॥

शब्दार्थ—आ जिनधर्म जीवोने अपूर्व कल्पवृक्षे, तेथी ए कल्पवृक्ष स्वर्ग अने मोक्षनां सुखरूप फलोनी आपनार ठे. १००

धम्मो बंधु सुमितो अ, धम्मो अ परमो गुरु ॥

मुस्कमग्ग पयहाणां, धम्मो परमसंदणो ॥ १०१ ॥

शब्दार्थ—धर्म एज बंधु अने उत्तम मित्र ठे. वली धर्म उत्तम गुरु ठे. तेमज धर्म मोक्ष मार्गमां प्रवृत्तेलाने उत्कृष्ट रथ समान ठे. ॥१०१॥ (श्रार्यावृत्तम्)

चउगशांतउहानल- पलितजत्रकाणणे महाजीमे॥

सेयिसु रे जीव तुमं, जिणवयाणं अमियकुंमसमं १०२

शब्दार्थ—अरे जीव! महा जयंकर अने चार गतिना अनंत दुःखरूप अग्निथी सलगता संसाररूप वनमां अमृतनां कुंड स मान जिनराजनां वचने सेवन करथ. ॥१०२॥

विममे जयमरुदेसे, आणांत दुह गिम्हतावसंतते ॥

जिणधम्मकप्परुक्कं, सरसु तुमं जोव सिवमुहदं १०३

शब्दार्थ—हे जीव! तुं विमम अने अनंतां दुःखरूप उनाला ना तापथी तत एवा मरुददामां मोक्षमुख आपनारा जिनधर्म रूप कल्पवृक्षनुं सेवन कर. ॥१०३॥

किं बहणा जिण धम्मे, जइअयं जह जयोदहिं घोरं ॥

लहुरगियमाणंतमुहं, ललह जिउ माग्गयं ठाणां १०४

शब्दार्थ—हे आत्मन! यह कहेयाथी ठुं? परंतु इहो जिन धर्मेने विष ते प्रकार पन्न करयोके, जेथो जीव जयानक एणा से माग्गय समुत्तने ऊट तरीने अनंत गुणवाला मोक्षस्थानने पावे.

(१३७).

॥ अथ अभव्य कुलकम् ॥

जह अन्नविय जीवेहिं, न फासिया एवमाइया ज्ञावा ॥

इंदत्तमणुत्तरसुर, सिलायनर नारयत्तं च ॥ १ ॥

शब्दार्थ—अन्नव्य जीवोए आ हवे पत्तो कहेवामां आवशे ते ज्ञावो स्पर्शा नथो. ते इंस्पणं, अनुत्तरवासी देवपणं, त्रैसठ शलाका पुरुषपणं अने नव नारदपणं. ॥ १ ॥

केवलिंगणहरहठे, पव्वजा तिठवत्तरं दाणं ॥

पवयणसुरी सुरत्तं, लोगंतिय देवसामित्तं ॥ २ ॥

शब्दार्थ—चलां केवलो तथा गणधरना हाथे दीक्षा, तीर्थकरुं वार्षिक दान, प्रवचननो अधिष्टायक देवी तथा देवपणं, लोकांतिक देवपणं अने देवपतिपणं न पामे ॥ २ ॥

तायत्तीससुरत्तं, परमाहम्मिय जुपलमाणुअत्तं ॥

संजिन्नसोयं तह, पुव्वधराहारयपुल्लायत्तं ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—प्रायत्रिंशकदेवपणं, पंदर जातिना परमाधामी पणं. युगलिया मनुष्यपणं, वली संजिन्न श्रोत लब्धि, पूर्वधरलब्धि, आहारकलब्धि अने पुलाकलब्धिपणं पण न पामे ॥३॥

मणनाणाई सुलक्षी, सुपत्तदाणं समाहिमरणत्तं ॥

चारणडुगमहुसिप्पय, खीरासव खीरठाणत्तं ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञाननी लब्धि, सुपात्रदान, समाधि मरण, विद्याचारण अने जंघाचारणनी लब्धि. मधुमत्पि लब्धि क्षीराश्रय लब्धि, क्षीर स्थानकी लब्धि पण न पामे ॥४॥

तिठयर तिठपमिमा, तणुपरिज्जोगाइ कारणेवि पुणो

पुढवाइय ज्ञायंमि वि, अन्नव्यजीवेहिं नो पत्तं ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—तीर्थकर तथा तीर्थकरनो प्रतिमा, वली शरीरना

अवियारं तारुन्नं, जिणाणं राठ परोवियारत्तं ॥

निकंपयाय प्राणे, लप्पंति पन्नूयपुन्नेहिं ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—घणां पुण्यना उदयथी अविकारी युवावस्या जिन आ-
ज्ञामां राग, परोपकारपणुं, धर्मध्यानमां निश्चलपणुं प्राप्त थाय ठे.

परनिंदापरिहारो, अप्पसंसा अत्तणो गुणाणां च ॥

संवेगो निवेगो, लप्पंति पन्नूयपुन्नेहिं ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—घणां पुण्यना उदयथी परनिंदानो त्याग, पोतानी
अप्रसंसा अने पोताना गुणना अवखाण, संसारथी वैराग्य अने
संसारथो निकलवानी इच्छा प्राप्त थाय ठे. ॥ ७ ॥

निम्मलसीलाप्रासो, दाणुद्धासो विवेग संवासो ॥

चउगइइहसंत्तासो, लप्पंति पन्नूयपुन्नेहिं ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—घणां पुण्यना उदयथी निर्मल शीलनुं पालवुं,
दान आपवामां उद्धास, हिताहितना विवेकनुं समीपपणुं अने
चार गतिनां दुःखना त्रासनुं जाणपणुं होय ठे. ॥ ८ ॥

उक्कमगरिद्धा सुक्कमा—णुमोयणां पायत्तित तवचरणां ॥

सुहज्जाण नमुक्कारो, लप्पंति पन्नूयपुन्नेहिं ॥ ९ ॥

शब्दार्थ—घणां पुण्यना उदयथी माठं कृत्यनी निंदा, सा
रां कृत्यनो अनुमोदना, खोटा कृत्यनुं प्रायश्चित्त लेवुं, तप करवुं,
शुद्ध ध्यान करवुं अने नमस्कार करवो. ए सर्व प्राप्त थाय ठे.

इयगुणमणिज्जंमारो, सामग्गी पावीज्जा जेण कठं ॥

विज्जन्नमोहपासा, लहंति ते सासयसुखं ॥ १० ॥

शब्दार्थ—आ उपर रहेला गुणरूप मणिना जंजाररूप सा
मग्गी पामोने जेणे ते प्रमाणे आचरण कछुं ठे ते, मोहना पासने
तोढो नाखी साश्वतां सुखने पामे ठे. ॥१०॥ इति पुण्यकुलकम् ॥

॥ अथ पुण्यपाप कुलकम् ॥

उत्तोसदिनसहस्सा. वाससये होइ आउपरिमाणं ॥

जिघ्रंतं पईसमयं. पिच्छं धम्मंमि जइअबं ॥ १ ॥

शब्दार्थ—सो वर्षना उत्रोस हजार दिवस, आयुष्यनुं एटलुं परिमाण होय ठे. ते समये समये उवुं घतुं जाय ठे, एम जा एणेने धर्ममां यत्न करवो. ॥ १ ॥

जइ पोसहसहीउ, तवनिमगुणोहिं गमइ एकदिणं ॥

ता वंधइ देवाउ. इत्तिवमिताइं पलियाइं ॥ २ ॥

शब्दार्थ—जो कोइ जीव पोपह सहित तप नियमना गुणो धी एक दिवस गमावे तो ते आगल कदेशे तेटला पढ्योपमनुं देवतानुं आयुष्य बांधे ठे. ॥ २ ॥

सगवीसं कोमीसया, सतहत्तरी कोमिखस्क सहस्सा य॥

सत्तसया सतहुतरि, नवजागा सतपलियस्स ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—सत्तावीस सो क्रोरु, सीत्योतेर क्रोरु, सीत्योतेर लाख सीत्योतेर हजार, सातसोने सीत्योतेर एटला पढ्योपम अने बलो एक पढ्योपमनो सातमो जाग ॥ ३ ॥

अघासीई सहस्सा, वाससये दुन्नि लस्क पहराणं ॥

एगोवि अ जइ पहरो. धम्मजुउता इमो लाहो ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—एक सो वर्षना वे लाख अने अगसो हजार पहोर ठे. तेमांथो जो कोइ जीव एक पण पहोर धर्म युक्त (पोसह वृत युक्त) थाय तो तेने आगल कदेशे एटलो लाज थाय ठे. ॥ ४ ॥

तिसयसगं चत्तकोमि, लस्का बावीस सहस बावीसा ॥

उसय उवीस उजागा, सुराउबंधो य इगपहरे ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—त्रणसो समताली क्रोरु, बावीस लाख, बावीस

हजार, बसो अने बावीस, वली उपर वे जाग. वर्षमां एक पहोर पोपह करनारने देवतानां आयुष्यनो एटलो बंध थाय वे. ॥ ५ ॥
दस लस्क असीय सहसा, महत्त संखाय होइ वाससए ॥
जइ सामाइअसहिउ, एगोविअत्ता इमो लाहो ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—सो वर्षनां मुहूर्त्त (वे घनीयो) दस लाख अने ऐसी हजार थाय वे. जे जीव ए एक मुहूर्त्त सामायिक लहे तो तेने भागली गाथांमां कहेसो तेटलो लान थाय वे. ॥ ६ ॥

वाणवपकोमोउ, लस्का गुणसहि सहस्स पाणवीसं ॥
नवसयपाणवीस जूआ, सतिहा अरुजाग पलियस्स ७

शब्दार्थ—बाणुं कोड, उगणसाठ लाख, पच्चीस हजार न वसो पच्चीस अने उपर एक पल्योपमना आगेया सात जाग; ए टलुं देवगतिनुं आयुष्य वेघनी सामायिक करनार जीव बांधे वे. वाससये घमिआणं, लस्किगवीसं सहस्स तह सठी ॥

एगायि अ धम्मजूआ, जइ ता लाहो इमो होइ ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—एक वर्षनी घनीयो एकवीस लाख अने साठ हजार थाय, तेमांथी एक घटी पण जो जीव धर्म युक्त होय तो तेने भागली गाथांमां गहेसो तेटलो लान थाय वे. ॥ ७ ॥

वायालकोटो गुणती-म लस्क ठामठी सहस्स सयनवर्गं ते मठी किञ्जागा, सुगठ बंधोइ इगघमिण ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—एक घटी धर्म करनार जीव वेतालोड कोड, उ अणुओम लान. ठामठ हजार, नयमां अने कांइक उग एया अंमठ एटला पल्योपमनुं आयुष्य बांधे. ॥ ८ ॥

मठी अटोर्गेणां, घनीआठ जम्म जंति पुग्गिम्म ॥

नियमेणावि गहीआठ, गो दिअट्ट निष्कलो तम्म १०

शब्दार्थ—एकसठ लाख, पांचवीस हजार, चमो ने दू
 ल्योपमनुं देवतानुं आयुष्य पत्रोस श्वासोश्वास अथवा एक
 गसनो काठस्तग्ग करनार जीव बांधे. ॥ १५ ॥

पावई पारायाणां, ह्वेत्त निरयान्त अस्स वंधोवि ॥
 इत्थ नात्त सिरि जिणकित्ति-अंमि धम्मंमि उन्नमं कुण

शब्दार्थ—हे नव्य जीवो ! पाप करनाराने ए प्रमाणे
 कनो वंध पण होय ठे. एम जाणीने श्री जिनेश्वरे कहेला
 ने विषे उद्यम करो. ॥ १६ ॥

॥ इति पुण्य पाप कुलकम् ॥

॥ अथ गौतमकुलकम् ॥

लुद्धा नरा अत्तपरा हवंति, मूढा नरा कामपरा हवंति
 बुद्धानरा खंतिपरा हवंति, मिस्सा नरा तिन्निविआयां

शब्दार्थ—जोनीया पुरुषो धन मेलववाने तत्पर होय
 मूर्ख पुरुषो कामने विषे तत्पर होय ठे, पंडित पुरुषो क्रमां
 त्पर होय ठे अने मिश्र पुरुषो पूर्वे कहेला त्रणने पण आचरे
 ते पंढिया जे विरया विरोहे, ते साहुणो जे समयं चरं
 ते सत्तिणो जे न चयंति धम्मं, ते वंधवा जे वसणो हवंति

शब्दार्थ—जे विरोधशी निवर्त्या ते पंडित, जे आगम प्र
 णे चाले ते साधु, जे धर्मने न त्यजे ते शक्तिवंत अने जे उ
 मां सदाय करे ते बांधवो जाणवा. ॥ २ ॥

कोद्धान्निज्जूया न सुहं लहंति, माणंसीणो सोचपरा हवं
 मायाविणो हुंति परस्स पेसा, लुद्धा महिच्चा नरयंत्तवि

शब्दार्थ—क्रोधघी पराजय पामेला माणसो सुख न पामे, अजिमानो माणसो शोकवंत घाय, मापावो माणसो वीजाना चा कर घाय अने लोको तथा म्दोटो इठा करनारा नःक पामे॥३॥ कोहो विसंकिं अमयं अहिंसा, माणो अरीकिं हियमप्यमाउं माया जयं किं सराणं तुसच्चं, लोहो उहो किं सुहमाह तुघी

शब्दार्थ—प्र० विप शं ? उ० क्रोध; प्र० अमृत शं ? उ० अहिंसा; प्र० शत्रु कोण ? उ० मान; प्र० हित शं ? उ० अप्र माद; प्र० जय शं ? उ० माया; प्र० शरण करवा योग्य शं ? उ० सत्य; प्र० उख शं ? उ० लोभ; प्र० सुख शं ? उ० संतोष. बुद्धिअचंमंजयए विणीयं, कुद्धं कुशीलं जयए अकित्ति॥ संजिन्नचित्तं जयए अलढी, सञ्चेयीयं संजयए सिरियए

शब्दार्थ—बुद्धि विनपवंतने सेवे ठे, क्रोधो तथा कुशील ने अकोति सेवे ठे, जय चित्तवालाने अलक्ष्मी (निर्धनपणं) सेवे ठे अने सत्यमां र्हेलाने सर्व प्रकारे लक्ष्मी सेवे ठे. ॥५॥

चयंति मित्ताणि नरं कयध्दं, चयंति पावाइ मुणिं जयंतं ॥
चयंति सुक्काणि सराणि हंसा, चएइ बुद्धी कुवियं मणुस्सं

शब्दार्थ—कृतघ्न माणसने मित्रो त्यजी देवे, जितेंद्रियं मु निने पापो त्यजी दे वे, सुक्काइ गयेला तलावने हंसो त्यजी दे वे अने क्रोधवाला माणसने बुद्धि त्यजी दे वे. ॥ ६ ॥

असंपहारे कहिए विलावो, अर्इयअठे कहिए विलावो
विस्किंतचित्ते कहिए विलावो, बहुकुसोसे कहिए विलावो

शब्दार्थ—असावधानने धर्मादि कहेवुं ते विलाप ठे, गइ वातनुं कहेवुं ते विलाप ठे, खेदचित्तवालाने हित वचन कहेवुं ते विलाप ठे अने कुशिप्यने बहु कहेवुं ए पण विलाप ठे. ॥७॥

दुष्टाहोवा दंडपरा हवन्ति, विज्ञाहारा मंतपरा हवन्ति ।
मुक्ता नरा कोवपरा हवन्ति, सुसाहुणो तत्तपरा हवन्ति

अन्वर्थ-दुष्ट राजाउ वंरु करवामां त पर होय ठे, वि
वंर पुत्रो मंत्र साधनमां तत्पर दोय ठे, मूलं पुरुषो क्रोध
स्वामो तत्पर दोय ठे अने उतम सायुठ तत्त्व प्रहण करय
त्पर दोय ठे. ॥ ८ ॥

गोदानवे उगगतपस्स संती, समाहिजोगोपसमस्य सो
नानां मुक्ताणां भगाम्सा सोहा,सिसम्स सोहाविणए पा

अन्वर्थ-नप्र तपसावानी क्रमा शोनाठे, उपशमसा
स्वामी तवेण शोना ठे, पारिपनी ज्ञान अने उतम ध्या
ने शोनाठे अने ज्ञापनी नियमां प्रवृत्ति ए शोना ठे. ॥९

अनमगाणो गोहउ धेनयागी, अकिंचणो गोहउ दिग्ग
वृत्तिवु गोहउ गणमनी, सज्जानुठ गोहउ एगपति

अन्वर्थ-आनुपण विना महायागी शोने ठे, पग्गिद
क वंरु शोने ठे, बुद्धिंत राजधंत्री शोने ठे अने
नेर कपुव पक शोथी शोने ठे. ॥ १० ॥

अप्याअगीदंडअणयदियरग,अप्याअग्गोसोद्धमत्तन
अप्याअग्गोसोद्धमत्तन, अप्याअग्गोसोद्धमत्तन

अन्वर्थ-अज्ञान भाणमंने पोवतो अप्या वेरी ठे. १
रुव अप्याअग्गोसोद्धमत्तन, अप्याअग्गोसोद्धमत्तन
अप्याअग्गोसोद्धमत्तन अप्याअग्गोसोद्धमत्तन अप्याअग्गोसोद्धमत्तन
अप्याअग्गोसोद्धमत्तन अप्याअग्गोसोद्धमत्तन अप्याअग्गोसोद्धमत्तन
अप्याअग्गोसोद्धमत्तन अप्याअग्गोसोद्धमत्तन अप्याअग्गोसोद्धमत्तन
अप्याअग्गोसोद्धमत्तन अप्याअग्गोसोद्धमत्तन अप्याअग्गोसोद्धमत्तन

विना बीजं अकार्यं नथी, प्रेमरागं विना बीजो बंधं नथी अने
बोधिलाज्जं विना बीजो लाज्जं नथी. ॥ १२ ॥

नसेवियद्वा पमया परक्का, नसेवियद्वा पुरिसा अविद्या ॥
नसेवियद्वाअहिमानिहिणा, नसेवियद्वापिसुण्णामणुस्सा ॥

शब्दार्थ—पारको स्त्री सेववी नहि, मूर्ख पुरुषोने सेववा न
हि, अज्ञिमानि हिन माणसोने सेववा नहि अने चाडिया मा
णसोने पण सेववा नहि. ॥ १३ ॥

जे धम्मिया ते खलु सेवियद्वा, जे पंडिया ते खलु पुच्छियद्वा
जे साहुणो ते अज्जिवंदियद्वा, जे निम्ममा ते पम्पिलाज्जियद्वा

शब्दार्थ—जे धर्मो माणसो ठे ते सेववा योग्य ठे, जे पंदि
त पुरुषा ठे ते पूढवा योग्य ठे, जे साधुज्जं ठे ते चांदवा योग्य ठे
अने जे ममतारहित ठे ते पम्पिलाज्जवा योग्य ठे. ॥ १४ ॥

पुत्ताय सीसाय समं विज्जत्ता, रिंसी य देवाय समं विज्जत्ता ॥
मुक्कातिरिक्का यसमं विज्जत्ता, मुञ्जा दरिडाय समं विज्जत्ता

शब्दार्थ—पुत्र अने शिष्यो सरखा जाणवा, मुनि अने देव
ता सरखा जाणवा, मूर्ख अने तिर्यंच सरखा जाणवा अने मू
बेला तथा दरिद्रो सरखा जाणवा. ॥ १५ ॥

सद्धाकला धम्मकला जिणाइ, सद्धाकहाधम्मकहाजिणाइ
सद्धं बलं धम्मबलं जिणाइ, सद्धं सुहं धम्मसुहं जिणाइ ॥ १६ ॥

शब्दार्थ—सर्वकलाने धर्मकला जीते, सर्व कथाने धर्मकथा
जीते, सर्व बलने धर्मबल जीते अने सर्व सुखने धर्म सुख जीते ॥
जूए पसत्तस्य धणस्स नासो, मंसं पसत्तस्य दयाइनासो ॥
मज्झं पसत्तस्य जसत्तनासो, वेसापसत्तस्य कुलत्तनासं

शब्दार्थ—जुवटामां आसक्त अपेलाना धननो नाश दाय

मांसमां आसक्त थयेला दयादिनो नाश थाय ठे, मद्यमां आसक्त थयेलाना जसनो नाश थाय ठे अने वेश्यामां आसक्त थयेलाना कुलनो नाश थाय ठे. ॥१७॥

हिंसापसत्तस्य सुधम्मनासो, चोरीपसत्तस्य सरीरनासो ॥
तहापरत्तिसुपसत्तयस्स, सबस्सनासोअहमा गई य ॥१८॥

शब्दार्थ—हिंसामां आसक्त थयेलाना सारा धर्मनो नाश थाय ठे, चोरीमां आसक्त थयेलाना शरीरनो नाश थाय ठे. ते मज परस्त्रामां आसक्त थयेला धन शरीरादि सर्वनो नाश अने अधम गति थाय ठे. ॥ १८ ॥

दाणां दरिद्वस्सपहुस्स खंती, इत्थानिरोहोइ सुहोइ यस्सा ॥
तारुस्सए इंदियनिग्गहो य, चत्तारि एयाणि सुदुक्कराणि १९

शब्दार्थ—दरिद्रिने दान थापवुं, श्रीमंतने कमा राखवी, इत्थाने रोकवो अने युवास्थामां इंदियोने वश्य राखवी. ए चार बहु दुक्कर ठे. ॥ १९ ॥

अमासं जीवियमाहु लोए, धम्मं चरे साहु जिणोवइठं
धम्मो यताणं सराणं गई य, धम्मं निसेवितुं सुहं लहंति ॥

शब्दार्थ—लोकमां जीवीत अशाश्वतुं कह्युं ठे, माटे जिनेश्वरे कहेला उत्तम धर्मनुं आचरण करो. धर्म रक्षण कर्ता, शरण कर वा योग्य अने सारी गति थापनारी ठे. ए धर्मने सेवीने साश्वतुं सुख पमाय ठे. ॥ २० ॥

॥ इति श्री गौतम कुलक ॥

॥ अथ दान कुलकम् ॥

परिहरिय रत्नसारो, उप्पाम्भियसंजमिक्कगुरुत्तारो ॥

खंधात्तं देवदूसं, वियरंतो जयत्त वीरजिणो ॥ १ ॥

शब्दार्थ—राज्यना सारने त्यजी देनारा, चारित्ररूप एक बहु ज्ञारने उपाहनारा अने खजा उपरथो देवदूप्य वन्ध विप्रने आपी देनारा श्री महावीर प्रजु जयवंता वत्तां. ॥ १ ॥

धम्मत्तकामत्तेया, तिविहं दाणां जयंमि विस्कायं ॥

तह्वि प जिणंदमुणिणो, धम्मियदाणां पमंसंति ॥२॥

शब्दार्थ—धर्मदान, अर्थदान अने कामदान एवा जेदपी प्रण प्रकारनुं दान जगतमां विख्यात वे. तो पण जिनेश्वरना मुनिपो आहारादिक धार्मिक दानने वयाणे वे. ॥ २ ॥

दाणां सौहृग्गकरं, दाणां आरुग्गकारणां परमं ॥

दाणां जोगनिदाणां, दाणां ठाणां गुणागणाणं ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—दान सांज्ञाय करनार वे, दान अष्ट आरोग्यनुं वारण वे, दान जोगनुं निधान वे अने दान गुणसमूहनुं स्थानर. वे. दाणेण पुरइ कीर्त्ति, दाणेण प हाइ निम्मला वंतो ॥

दाणावज्झिय लियत्त, वयगेवि हु पाणियं घहइ ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—दानपी कीर्त्ति विस्तार पामे वे, दानपी निर्मज कीर्त्ति थाय वे, दानपुक्त हृदययात्तात्तना शशुत्त पण तेने घेर वाली जरे वे.

धाणसत्तवाहजम्मे, जं धयदाणां कयं सुसाहणां ॥

नत्तारणामुमज्जिणो, तेल्लुवपियामहो जात्त ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—पन साध्यादना जवमां वत्तम साधुत्तेने जे धीनुं दान करयुं दनुं ते पुण्यना वारणपी शयनदेव प्रजु प्रल लोडना पितामह (शश) पया. ॥ ५ ॥

करुणाश्च दिन्नदाणं, जम्मंतरं गहियपुन्नकिरियाणं ॥
तिच्चयरचकरिधिं, संपत्तो संतिनाहोवि ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—रूपाथो पारेवाने अन्नयदान आपो पाठला चव
माटे पुण्यरूप करीयाणाने खरीद करनारा ठोलमा श्री शांति
नाथ तीर्थकर पण तीर्थकर अने चक्रवर्त्तनी समृद्धिने पाम्या ॥६॥
पंचसयसाहुजोयण—दाणावज्जियसुपुन्नपप्रारो ॥

अचरियचरियजरिन्, जरहो जरहाहियो जाठ ॥७॥

शब्दार्थ—पांचसो साधुने जोजननां दानथो पुण्यनो स
मूह मेलवनार अने आश्रयकारो चरित्रथो जरपू एवो जरत
चक्रवर्त्ता जरतक्षेत्रनो स्वामी थयो. ॥ ७ ॥

मुद्धं विणावि दाठं, गिलाण पम्भिरणजोगवचूणि ॥
सिद्धो अ रयणकंबल—चंदण विणिउवि तंमिन्नवे ॥८॥

शब्दार्थ—म्लान मुनिने वापरवा योग्य वस्तु रत्न कंबल अने वावतुं
चंदन विना मूढ्ये आपीने श्रावक पण तेजजवमां सिद्धिपद पाम्यो.
दाऊण खीरदाणं, तवेण सुसिअंगसाहुणो धणिअं ॥
जणजणियचमकारो, संजाठ सालिन्नहोवि ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—तपथो सूकवी नारख्युं ठे शरीर जेमणो एवा सा
धुने धन्यकारी खीरतुं दान आपो शालिन्नश्च श्रेष्ठ पण माणसीने
आश्चर्य उत्पन्न करनारो थयो. ॥ ८ ॥

जम्मंतरदाणाठ, उद्धसिया पुवकुसलक्षाणाठ ॥

कयवन्नो कयपुन्नो, जोगाणं जायणं जाठ ॥९॥

शब्दार्थ—पूर्व जन्मने विपे करेला सुपात्रदानना प्रज्ञावने
लीधे उद्धास पामेला अपूर्व शुद्ध ध्यानथी कृतपुण्य एवो कयव
न्नो श्रेष्ठ जोगोतुं पात्र ययो. ॥ ९ ॥

घयपूसवन्नपूसा, महूरिसिणो दोसलेसपरिहीणा ॥

लक्ष्मीं सयलगतो-यग्गहगा सुग्गइं पत्ता ॥ ११ ॥

शब्दार्थ-घृतपुष्प तथा वस्त्रपुष्प ए वे साधु दोषना ले
श रदित उता पोताना तपनी लब्धिधो सर्व गच्छनी घृत तथा
वस्त्रधो जक्ति करी उत्तम गति पाम्या. ॥ ११ ॥

जीवंतसामिपमिमा-इं सासाणं विपरिक्काण जत्तीउ ॥

पवइंकाण सिधो, उदाइणो चरमरायग्गिमी ॥ १२ ॥

शब्दार्थ-श्री जीवंतस्वामीनी प्रतिमाने श्री धीरप्रज्जुना
शासनमां जक्तिधो विचरीने पगी चारिअ लइ उदायन नामनो
बेलो राजपिं सिद्धि पद पाम्यो. ॥ १२ ॥

जिणाहरमंभियवमुदा, दाणां अनुकंपज्जत्तिदाणाइं ॥

तिन्नपजावगरेहिं, संपत्तो संपइराया ॥ १३ ॥

शब्दार्थ-जिनमंदिरधो पृथ्वीने शोजावनारो मंप्रति राजा
अनुकंपादान अने जक्तिदान ध्यापिने तीर्थ मजावक पुरुषोमां
रेखाने पाम्यो. ॥ १३ ॥

दाउं सदासुद्धे, सुद्धे कुम्मारए मत्तामुणिणो ॥

सिरिमूलदेवकुमारो, रज्जसिरिं पाविउ गुरुइं ॥ १४ ॥

शब्दार्थ-श्री मूलदेव कुमार शुद्ध अक्षाधी मत्तामुनिने शुद्ध
एवा अमदना धाकला ध्यापिने म्होटो राग्य लक्ष्मी पाम्यो. ॥ १४ ॥
अइदाणमुहरकविअणा-विरइअसयग्गं ववविअरिअं ॥
विअमनरिदचरिअं, अज्जवि लोए परिप्पुग्गइं ॥ १५ ॥

शब्दार्थ-भक्तिदानधो धाम्नाल एवा कविलोकोए रवेसां शं
कटो काव्योधी विस्तार पामेलुं यिकमराजां चरिअ
धी पण लोकमां विस्तार पामे जे. ॥ १५ ॥

निभ्रलोअवंधवेहिं, तप्रववरिमेहिं जिणावरिंदोहिं ॥

कपकिनेहिवि दिन्नं. संबन्नरियं महादाणा ॥ १६ ॥

इत्यार्ये-ब्रह्म लोका नांधु, तेज जनमां सिद्धि पामनारा धने
कृतार्थ एवाय श्री जिनेश्वरे सांत्तरिक मदाशन प्राप्नुं ॥ १६ ॥

निग्निनेयंमकुमारो, निस्सेपससामिन्न कत्त न होई ॥

हामुज्यसाणसगो, पयासिउ जेण जग्दंमि ॥ १७ ॥

इत्यार्ये-श्री शेषांगकुमार मोक्षनो स्वामी केम न दोष ? या
मयं, जेणे या जगतकेवमां प्राप्तु काननो प्रवाह प्रकाश करयो.

कत्त मा न पयोमिज्जउ, शंसापासा जिणांइदाणोणां ॥

नममागिप रत्ताविउ, निगणिउ जेहिं यीरजिणां ॥१७॥

इत्यार्ये-ने शंजनवाया श्री जिनेश्वरने यान आपवाधी केम
न प्रदोषा वाधी ? अर्थात् वाधी. कारणहे, जे शंजनवायाये क मा

रुस लक्ष्मी अथ शंवाया श्री महावीरप्रज्ञने गीताय पमाइया,

पइएउ पाएणाइ अकर्मिणु कर्मिण तह कर्मिणंति ॥

अरिर्हेस जगरीता, जग्ग धोरे वेमि भूय गिति ॥१७॥

इत्यार्ये-श्री अरिर्हेस जगवाने जेता यमने विंय पंड्या
कर्मणु कर्मणु ददा, कर्मने अथवा कर्म पयो कर्मणु; तेने जिने मि

दिहइ कर्मणु. ॥ १७ ॥

इत्यार्ये-श्री अरिर्हेस जगवाने जेता यमने विंय पंड्या

कर्मणु कर्मणु ददा, कर्मने अथवा कर्म पयो कर्मणु; तेने जिने मि

इत्यार्ये-श्री अरिर्हेस जगवाने जेता यमने विंय पंड्या
कर्मणु कर्मणु ददा, कर्मने अथवा कर्म पयो कर्मणु; तेने जिने मि

इत्यार्ये-श्री अरिर्हेस जगवाने जेता यमने विंय पंड्या
कर्मणु कर्मणु ददा, कर्मने अथवा कर्म पयो कर्मणु; तेने जिने मि

॥ अथ शीलकुलक ॥

सोहग्ग महानिहिणो, पाए पणमामि नेमिजिण वइणो ॥
 वालेण नुअवलेण, जणाइणो जेण निज्जिणित्त ॥ १ ॥

शब्दार्थ—जेमणे वाढ्यावस्थामां नुजवलयी कृष्णवासुदेवने
 जीत्या वे ते सोज्ञान्यना समुइ एवा श्रीनेमि जिनेश्वरना पगमां
 हुं प्रणाम करुं वुं. ॥ १ ॥

सीलं उत्तमवित्तं, सीलं जीवाण मंगलं परमं ॥

सीलं दोहग्गहरं, सीलं सुस्काण कुलजवणां ॥ २ ॥

शब्दार्थ—जीवोने शील एज उत्तम धन, शील एज उ
 त्कृष्ट मंगल, शील एज दुर्ज्ञान्यने नाश करनाहं अने शील एज
 सुखोनुं कुलघर वे. ॥ २ ॥

सीलं धम्मनिहाणं. सीलं पावाण खंभुणं ज्ञणियं ॥

सीलं जंतूणजए. अकित्तिमं मंभुणं पवरं ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—शील धर्मोने जंभार तेंमज सील पापोने नाश
 करनाहं कह्युं वे. वलो जगत्मां शील माणतोने अकर्विम
 (सावुं) घराणुं वे. ॥ ३ ॥

नरयडुवारनिरुंजण—कवामसंपुमसहोअरत्तायं ॥

सुरलोअधवलमंदिर—आरुहणो पवरनिस्सेणिं ॥४॥

शब्दार्थ—शील नरकना रस्ताने रोकवाने कमाडनी जोड
 सरखुं अने देवलोकरूप उज्वल मंदिरमां चरवाने श्रेष्ठ निस्
 रणो रूप वे. ॥ ४ ॥

सिरि उग्गसेणधूआ, रायमई लहज सीलवक्षेरेहां ॥

गिरि विवरगज जीए, रहनेमो गविज मग्गे ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—श्री उग्रसेन राजानी पुत्रो राजोमति शीलवंती

स्त्रीयोमां रेखा पामी ठे. कारण के, जेणे पर्वतनी गुफामां रहे
ला रथनेमिने धर्ममार्गने विषे रोकी राख्या ठे. ॥ ५ ॥

पङ्कलिउवि हु जलणो, सीलपन्नावेण पाणियं हवइ ॥
सा जयउ जए सीआ, जीसे पयमा जसपमाया ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—जेना शील प्रज्ञावथी ज्वाजल्यमान एवो पण
अग्नि पाणीरूप थयो. ते सीताजगत्मां जयवती वतं ठे के, जेनी
यशपताका प्रगट ठे. ॥ ६ ॥

चालणिजलेण चंपा—ए जीइ उग्घामियं डुवारतियं ॥
कस्स न हरेइ चित्तं, तोयं चरियं सुज्जहाए ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—जेणे चालणीनां जले करीने चंपा नगरीना त्रण
दरवाजा उघाड्या ते सुज्जद्रानुं चरित्र कोनां चित्तने दरनाहं
न थाय ? ॥ ७ ॥

नंदउ नमयासुंदरि, सा सुचिरं जीइ पालियं सीलं ॥
गहिलत्तणंपि काउं, सहिआ य विम्वणा विविहा ऽ

शब्दार्थ—ते नर्मदा सुंदरी आनंद पामोके, जेणे गांडापणुं
करीने पण विविध प्रकारनी विटवना सहन करीने शील पाड्युं.

जहं कलावईए, जीसणरत्तंमि रायचत्ताए ॥

जंसा सीलगुणेणं, तिनंगं पुण नवा जाया ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—जयंकर अरण्यमां राजाए त्यजी दीघेली कला
वतोनुं कड्याण थाउं के, जेना शीलगुणथी ठेदायेला अंगो पण
फरी नवा थया. ॥ ८ ॥

सीलवईए सीलं, सकइ सकोवि वनिउं नेव ॥

रायनिउता सचिवा, चउरोवि पवंचिआ जीए ॥१०॥

शब्दार्थ—शीलयतीना शीलने इंड पण वर्षाववाने समर्थ

नधी. कारणके, जे शीलवंतीये राजाना मोकत्रावेला चार प्रधा
नोने पण वेतखा ठे, ॥ १० ॥

सिरिविधमाणपहुणा. सुधम्मलान्जुत्ति जीई पठविउं ॥

सा जयउ जए सुलसा. सारयससि विमलशीलगुणा ११

शब्दार्थ—श्री वर्डमान स्वामीये जेने धर्मलाज मोकट्यो
हतो, ते शरद रुतुना चंड्समान निर्मल गुणवाली सुलसा जग
त्मां जयवंती वतां. ॥ ११ ॥

हरिहरवंचनपुरंदर—मयजंजणा पंचवाण बलदप्पो ॥

लीलाइ जेण दलिउ, म थूलजहो दिसउ जहं १२

शब्दार्थ—हरि, हर, ब्रह्मा, अने इंजना मदने जागनार तथा
बलथो गर्यवंत एवा कामदेवने जेणे लीलामात्रथो दली नारूप्यो
ठे ते थूलजहो कल्याण आपो, ॥ १२ ॥

माणहरतारुणजरे. पच्छिऊंतोचि तरुणि नियरेणं ॥

सुरगिरिनिघलचित्तो. सो वयरमहारिसी जयउं ॥१३॥

शब्दार्थ—जे मनोहर तारुणपना ज्ञारवाली श्रोत्र्य जलस
मूह प्रार्थना करवा उतां पण मरुपर्वतनी पठे निघल चिगयाला
रहेला ठे, ते श्री वज्रस्वामी जयवंता वतां ॥१३॥

थुणियं तस्स न सका, सहस्स सुदंसाणस्स गुणनियहं ॥

जो विसमसंकमेसुवि, पमिउवि छरगंमशीलधणो १४

शब्दार्थ—ते सुदर्शन श्रावकनी गुणममूह स्तुति करयो
शक्य नधी. अर्थात् स्तुति करी शक्य तेचो नधी. कारणके, जे
विषम शंकटमां पद्या उतां पण अखंम शीलरूपधन बालो गटो ठे.

सुदरि सुनंद चिह्वाणा. मणोरना छंजणा मिगावइ छ ॥

जिणसासाणसु पसिहा, नदानईउ सुहं दिनु ॥ १५ ॥

शब्दार्थ—सुंदरी, सुनंदा, चिह्नणा, मनोरमा, अंजना अने मृगा वती. जिनशासनमां प्रसिद्ध एवी ए महा सतोयो(तमने)सुख आपो. अत्रंकारिय चरित्रं. सुणिऊणं को न धुणई किर सीसं जा अखंडियसीला, जिह्नवश्कयत्रिआवि दढं ॥१६॥

शब्दार्थ—अचंकारी जटानुं चरित्र सांजलीने कोण पोता नुं मस्तक निशे न धुणावे ? के, जे जिह्नपतिये कष्ट आप्या वतां दढं अखंमित शीलवालो रही ॥ १६ ॥

नियमितं नियन्नाया, नियजणन नियपियामहो वावि ॥
नियपुत्तोवि कुसीलो, न वल्लहो होइ लोआणं ॥१७॥

शब्दार्थ—पोतानो मित्र, पोतानो ज्ञाइ, पोतानो वाप अथवा पोताना वापनो वाप पण, वलो पोतानो पुत्र पण जो कुशील होय तो ते लोकोने वहालो थतो नथी. ॥ १७ ॥

सवेसिंपि वयाणं, जग्गाणं अठ्ठि कोइ पमिआरो ॥
पक्कधमस्सव कन्ना, न होइ सीलं पुणो जग्गं ॥ १८ ॥

शब्दार्थ—सर्वे एवाय पण ज्ञागेलां व्रतनो कोइ पण आलो यणादि उपाय ठे, पण जेम पाका घमाने कांठा चोडवानो कोइ उपाय नथी तेम ज्ञागेला शीलनो फरी कोइ उपाय नथी. १८

वेयालजूअररकस—केसरिचित्तयगइंदसप्पाणं ॥

लीलाइ दलइ दप्पं, पालंतो निम्मलं सीलं ॥१९॥

शब्दार्थ—निर्मल शील पालनारो पुरुष वैताल, जूत, राकस, के शरोसिंह, चित्रा, हाथो अने सर्पना गर्बने लीला मात्रमां दली नाखेठे.

जे केइ कम्ममुक्का, सिद्धा सिञ्जंति सिञ्जिहिति तहा ॥

सवेसिं तेसिं वलं, विसाल सीलस्स माहप्पं ॥ १९ ॥

शब्दार्थ—जे कोइ कर्म मुक्त जीवो सिद्ध थया, सिद्ध थाय ठे तेमज

(१५३)

सिद्ध धरो; ते सर्वेने विशाल शीलनुं महात्म्यज बल ठे. अर्थात्
शीलना बलधी सिद्धिपद पामे ॥ २० ॥

॥ इति शील कुलक ॥

॥ अथ तपकुलक ॥

सो जयन्त जुगाड्जिणो, जस्संसे सोहए जमामन्मो ॥
तवजाणग्गिपलिविय, कम्मिधणधूमपत्तिव ॥ १ ॥

शब्दार्थ—तप ध्यानरूप अग्निधी बलता एवा कर्मरूप इव
णांना घूमाडानी पेठे जेमना खज्जाने विपे जटारूप मुकुट शो
न्तो हतो ते श्रो युगादि जिनेश्वर जयवंता वत्तो. ॥१॥

संवत्तरियतवेणां, काञ्जसग्गंमि जो ठिन् जयवं ॥

पूरियनिययपइन्नो, हरन्त इरिआइं वाहुवलो ॥ २ ॥

शब्दार्थ—जे जगवानि संवत्सरीनां तपथी काञ्जसग्गमां उच्चा र
ही पोतानी प्रतिज्ञा पूर्ण करी. ते श्री वाहुवलो पापोने दूर करो.

अयिरंपिथिरं वंके—पि नजुअं इल्लहंपि तह सुलहं ॥

इस्ससंमि सुससं, तवेण संपज्जए कळं ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—तपथी अस्थिर कार्य होय ते स्थिर, वक्र होय ते
सरल, इल्लं होय ते सुलज्ज अने इःसाध्य होय ते सुसाध्य धायठे.

ठठं ठठेण तवं, कुणमाणो पढमगणहरो जयवं ॥

अस्कीणमहाणसोड, सिरि गोअमसाभिन्त जयन्त ॥४॥

शब्दार्थ—ठठ ठठना तपने करता, प्रथम गणधर अने अक्षीण महा
लब्धीवाला थयेला एवा जगवान् श्रो गौतमस्वामी जयवंता वत्तो.

ठळ्ळइ सणांकुमारो, तववलखेलाइल्लिसंपन्नो ॥

निहुअखवल्लिअंगुलि—सुयन्नकंतिपयासंतो ॥५॥

शब्दार्थ—तपना बलश्री खेलादि लब्धीने पामेलो अने पोतानां थुंकथो विस करेली आंगलोनी सुवर्णना सरखो कातिने प्रकाश करतो सनत् कुमार चक्रवर्ती शोजे ठे. ॥५॥

गोवञ्जगप्ल गप्रिणि—वञ्जणिघाताइ गुरुअपावाइ ॥

काञ्जणवि कणयंपिव, तवेण सुधो दढपहारी ॥६॥

शब्दार्थ—गाय, ब्राह्मण, गर्ज अने गर्जवती ब्राह्मणी ए चार इत्यानां म्होटां पापने करीने पण सुवर्णनी पेठे तप करी दढ प्रहारी शुद्ध थयो ठे. ॥६॥

पुवञ्जवे तिष्ठतवो, तविञ्जं नंदिसेणमहरिसिणा ॥

वसुदेवो तेण पिञ्ज, जाञ्ज खयरी सहस्साणं ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—पूर्वजवमां नंदिपेण महामुनिये जे तीव्र तप कस्यो, तेथी ते हजारोनी विद्याधरीयोने प्रियकारी वासुदेव थयो. ॥७॥

देवावि किंकरत्तं, कुणांति कुलजाइविरहिआणांपि ॥

तवमंतपजावेणां, हरिकेसवलस्स वरिसिस्स ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—देवता पण कुलजाति रदितनुं पण दासपणुं करे ठे. जुठ देवताए चंमालना कुलमां जन्मेला हरिकेशो महा मुनिनुं तपरूप मंत्रना प्रजावधी दासपणुं करयुं ठे. ॥८॥

पमसयमेगपमेणां, एकेण घमेणा घमसहस्साइ ॥

जं किर कुणांति मुणिणां, तवकप्पतरुस्स तं स्कू फलं ए

शब्दार्थ—मुनियो जे एक बम्बवने हजारो वस्त्र अने एक घमावने हजारो घमान्नि निथे करे ठे, ते ग्यरेखर तपरूप कस्य वृक्षनुं फल ठे. ॥ ९ ॥

अनिआणास्स विहीए, तवस्स तविपस्स किं पसंसामो

किइइ जेण विणासो, निकाइपाणांपि कम्माणां ॥१०॥

शब्दार्थ—नोयाणा रहित विधिवने करेलां तपने शुं वखाणीये ?
कारण के, जे तपथी निकाचित एवां पण कर्मनो विनाश करावठे.
अइडुकरतवकारी, जगगुरुणा कन्हपुत्रिण तपा ॥
वाहरिउ स महप्पा, समरिऊउ ढंढणकुमारो ॥११॥

शब्दार्थ—श्री कृष्णना पूववा उपरथी ते श्री जगत् गुरु ने
मिनाथे “जेने अतिडुकर तप करनार ठे.” एम कह्युं इतुं, ते
महात्मा श्री ढंढणकुमारने स्मरण करो. ॥११॥

पइदिवसं सत्तजणे, वहिऊणां गहियवीरजिणदिस्का ॥
डुग्गाजिग्गहनिरउ, अऊणाउ मालिउ सिउो ॥१२॥

शब्दार्थ—दररोज (ठ पुरुष अने एक स्त्री) एम सात मा
णसनो वध करीने पठी श्री वीरप्रजु पासे दीक्षा लइ डुकर एवा
अजिप्रहमां आसक्त अथेलो अर्जुनमाली सिउ अयो. ॥१२॥

नंदीसररुचगेसुवि, सुरगिरिसिहरेसु एगफालाए ॥
जंघाचाराणमुणिणो. गउंति तवप्पजावेण ॥१३॥

शब्दार्थ—जंघाचारण मुनियो तपना प्रजावथी एक फाले
करीने आठमा नंदीश्वरक्षीपमां, बारमा रुचकक्षीपमां अने मेरुप
वतना शिखर उपर जाय ठे. ॥१३॥

सेणियपुरउ जेसिं, पसंसिअं सामिणा तवोरुव्यं ॥
ते धत्रा धन्नमुणि, डुव्रवि पंचुत्तरे पत्ता ॥ १४ ॥

शब्दार्थ—श्रेणिक राजानी आगत श्री महावीरप्रजुए जेनुं
तपस्वरुप वर्णवपुं ठे, ते धनकुमार अने घनाकाकंदी ए वड्डे मुनि
उ पण पांचमा अनुत्तर विमानने विषे प्राप्त अया. ॥१४॥

सुणिऊण तव मुंदरी-कुमरीए अंविळाणि अणवरयं ॥
सठिवाससहस्सा, जण कम्म न कंणए हिययं ॥१५॥

शब्दार्थ—हे ज्ञाज्ञ! सुंदरी कुमारीनुं साठ हजार वर्षमुं
निरंतर आंवील तप सांजली कोनुं हृदय न कंये? कहे. १५
जं विहिअमंबिलतवं, वारसवरिसाईं शिवकुमारेण ॥
तं दधु जंबुंरुवं, विम्हइत्त कोणित्त राया ॥ १६ ॥

शब्दार्थ—शिवकुमारे (जंबूस्वामीने पाठले ज्ञे) वारव
पर्यंत जे आंवील तप करथो, तेथी बीजा ज्ञवमां जंबूस्वामो
रूपने जोइ कोणिक राजा विस्मय पाव्यो. ॥१६॥

जिणकप्पिय परिहारिय, पम्पिमापम्पिवन्न लंदयाईणं ।
सोत्तण तवसरुवं, को अत्तो वहत्त तवगवं ॥ १७ ॥

शब्दार्थ—जिनकळपी, परिहारविशुद्धि चारित्रवाला, पं
माना धारणहार एवा लंदो साधुनां तपस्वरूपने सांजलीने
जो कयो पुरुष तपना गर्वने धारण करे? ॥१७॥

मासद्वमासखवत्त, वल्लज्जदो रूववंपि हु विरतो ॥

सो जयान्न रत्नवासी, पम्पिवोहिअसावयसहस्सो १८

शब्दार्थ—मासखमण अथवा पक्षखमण करनारा, रूपवं
वतां पण निश्चे विरक्त थयेला, अरण्यमां वसनारा अने तिंहादि
जारो दिसक पशुत्तने बोध करनारा ते वल्लज्ज मुनि जयवंता वतं
थरहरियधरं ऊल्लहलि-य सायरं चलियसयलकुलसेला
जमकासि जयं विह्णु, संघकए तं तवस्स फलं ॥१८॥

शब्दार्थ—पृथ्वी कंपी, समुझे खलज्जव्या, सर्वे हिमवंतां
कुलपर्वतो कंप्या. ए प्रमाणे जयवंता विष्णुकुमारि श्री संघने मां
जे कांइ करयुं, ते सर्वे तपनुं फल ठे. ॥१८॥

किं बहुणा ज्ञणिणं, जंकस्सवि कहवि कठवि सुहा
दिसंति ज्ञवाणमक्षे, तच्च तवो कारणं चेव ॥ १९ ॥

(१६१)

शब्दार्थ—बहु कहेवाची शुं? कारणके, ज्ञुवननी मध्ये जे कांइ कोइने पण क्यांइ सुखादि देखाय वे, त्यां तपनुं कारण निश्चे जाणवुं. अर्थात् तपची सर्व प्रकारनुं सुख मले वे. ॥ २० ॥

॥ इति तप कुलक ॥

॥ अथ भावकुलक ॥

कमठासुरेण रश्यं-मि जीसेणे पलयतुप्लजलबोले ॥

ज्ञावेण केवललट्टिं, विवाहित जयत पासजिणो ॥१॥

शब्दार्थ—कमठासुरे रचेला जयंकर प्रलयकाल समान ज लमां ज्ञावे करीने ठ काय जीवनुं हित चिंतववाची केवलज्ञानरूप लक्ष्मीने पामेला श्री पार्श्वनाथ प्रजु जयवंता वतां. ॥१॥

निञ्चुन्नो तंबोलो, पासेण विणा न होइ जह रंगो ॥

तह दाणसीलतवजा-वणात अहलात ज्ञावविणा ॥२॥

शब्दार्थ—जेम चूना विना तांबुल अने पात विना वस्त्र रंग न पामे, तेम ज्ञाव विना दान, शील, तप अने ज्ञावना अफल जाणवी. ॥ २ ॥

मणिमंततसहीणं, जंतयतंताण देवयाणांपि ॥

ज्ञावेण विणा सिद्धी, न हु कस्सइ दीसई लोए ॥३॥

शब्दार्थ—लोकमां मणि, मंत्र, श्रौपची, जंत्र, तंत्र अने देव तानी उपासनानी पण ज्ञाव विना सिद्धि कोइने देखाती नधीज.

सुहज्जावणावसेणं, पसंदचंदो मुहुत्तमित्तेण ॥

खविकण कम्मगांठिं, संपत्तो केवलं नाणं ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—शुज्ज ज्ञावनाना वदयची प्रसन्न चंद्रराजा मुहूर्त मा त्रमां कर्मनी गांठ खपावी केवलज्ञान पाम्यो. ॥४॥

(१६०)

शब्दार्थ—हे ज्ञाह! सुंदरी कुमारीनुं साठ व
निरंतर आंवील तप सांजली कोनुं हृदय न कौं ।
जं विहिअमं विलतवं, धारसवरिसाहं निव
तं दहु जंबुरूवं, विम्हइउ कोणिउ राया ॥

शब्दार्थ—शिवकुमारे (जंबूस्वामीने पाठले ज
पर्यंत जे आंवील तप करयो, तेथी वीजा जवमां
रूपने जोइ कोणिक राजा विस्मय पाव्यो. ॥१६॥

जिणकप्पिय परिहारिय, पम्पिमापम्पिवन्न लं
सोउण तवसरूवं, को अन्नो वहउ तवगधं

शब्दार्थ—जिनकळपी, परिहारविशुद्धि चारित्र्य
माना धारणहार एवा लंदो साधुनां तपस्वरूपने स
जो कयो पुरुष तपना गर्वने धारण करे? ॥१७॥

मासध्रमासखवउ, बलजहो रूववंपि हु विर
सो जयाउ रन्नवासी, पम्पिवोहिअसावयसहर

शब्दार्थ—मासखमण अथवा पक्षखमण करनारा
वतां पण निश्चे विरक्त थयेला, अरण्यमां वसनारा अने
जारो हिंसक पशुने बोध करनारा ते बलजइ मुनि जयं
थरहरियधरं ऊलहलि-य सायरं चलयिसयलकुल
जमकासि जयं विहणु, संघकए तं तवस्स फलं

शब्दार्थ—पृथ्वी कंपी, समुझे खलजह्या, सर्वे हिं
कुलपर्वतो कंप्या. ए प्रमाणे जयवंता विष्णुकुमारे श्री संघ
जे कांइ करयुं, ते सर्व तपनुं फल वे. ॥१८॥

किं बहुणा जणिणं, जंकस्सवि कहवि कव्वि
दिसंति जवणमझे, तच्च तवो कारणं चेव ॥ १८

(१६५)

किं बहुणा नृणिणं, ततं निसुणेह नो महासत्ता ॥
मुक्कसुदवीयनूओ, जीवाण सुहावहो जावो ॥२०॥

शब्दार्थ—बहु कहेवाची ह्युं ? हे महासत्ववंतो ! तत्वनी वात
सांजलो. जूवोने, मोक्षनां सुखनुं वीजनूत सुखकारी जावजवे.
ईयदाणासील तव जा-वाणाओ जो कुणईसत्ति भत्तिजरो॥
देविंदविंदमहिअं, अ ईरा सो लहई सिद्धिसुहं ॥२१॥

शब्दार्थ—जे शक्ति अने नक्तिना समूहवालो पुरुष आ
उपर केहला दान, शील, तप अने जावनाने आचरे ठे, ते देवताना
इंद्रोना समूहे अथवा देवेंसूरिये पूजेलां मोक्ष सुखने थोडा
वखतमां पामे ठे. ॥ २१ ॥

॥ इति जावकुलक ॥

॥ अथ उपदेशरत्न कोश ॥

उवणसरयणकोसं, नासिअनीसेसलोगदोगच्चं ॥

उवणसरयणमालं, वुठं नमिऊण धीरजिणं ॥१॥

शब्दार्थ—श्री वीरप्रज्जुने नमस्कार करीने हुं नाश कख्यां ठे
सर्व लोकना दारिड्र जेषे एवा अने उपदेशरूप रत्ननी माला
रूप उपदेश रत्नकोशने कहुं ठुं. ॥ १ ॥

जीवदयाइं रमिऊइ, इंदियवग्गो इमिऊइ सयावि ॥

सच्चं चैव चविऊइ, धम्मस्स रहस्समिणामेव ॥२॥

शब्दार्थ—जीव दयामां रमवुं, इंदियोना समूहने नित्य द
मवो अने सत्यज वोलवुं. एज धर्मनुं रहस्य ठे. ॥ २ ॥

सोलं न हु खंमिऊइ, न संवसिऊइ समं कुसीलोहिं ॥

गुरुवयणं न खलिऊइ, जइनऊइधम्मपरमठो ॥३॥

शब्दार्थ-निश्चे शीलने न खंभुं. कुशीलियानी साये न वसवुं, गुरुनुं वचन न उलंघवुं. एज श्री जिनेश्वरना धर्मनो उत्कृष्ट अर्थ ठे. ॥ ३ ॥

चवलं न चंकमिऊइ, विरइऊइ नेव उप्रमो वेसो ॥

वंकं न पलोइऊइ, रुढावि ज्ञांति किं पिसुणा ॥४॥

शब्दार्थ-चपलपणाथी (अयतनाथी) न चालवुं, उन्नत वेपं न पहेरवो, वांकी दृष्टिथी न जोवुं के, जेथी रीसायला एवा पण चानीया शुं बोले ? ॥ ४ ॥

निअमिऊइ नीअजीह, अविअरिअ नेव किऊए कजां न कुलकमोअ लुप्पइ, कुविअ किं कुणइ कलिकालो ॥

शब्दार्थ-पोतानी जीजने वडा करवो, अविचारधुं काम न करवुं अने पोताना सारा कुलाचारने न लोपवो; तो पठी को प पामेलो कलिकाल पण शुं करे ? अर्थात् कांइ न करे. ॥५॥

मम्मं नउ लूविऊइ, कस्सवि आलं न दिऊइ क्या ।

कोवि न उक्कोसिऊइ, सऊणमग्गो इमो दुग्गो ॥६॥

शब्दार्थ-कोइनुं मर्म वचन न बोलवुं, कोइने क्यारे पण आल न देवुं तेमज कोइने तिरस्कार पण न करवो. आ प्रमाणे सऊतनो मार्ग उर्ध्वन ठे. ॥ ६ ॥

सव्वस्स उवपरिऊइ, न पम्हसिऊइ परस्स उवयारो ॥

विहलं अवलंविऊइ, उवएसो एस विअसाणं ॥७॥

शब्दार्थ-सर्वने उपकार करवो, पारको उपकार न विस्तारवो, दुःखीने आधार आपवो. ए डाह्या पुरुषोने उपदेश जाणवो कोवि न अन्नविऊइ, किऊइ कस्सवि न पण्णाभंगो ॥ दीणां न य जंपिऊइ, जीविऊइ जाव जिअलोए ॥८॥

शब्दार्थ—ज्या सुधी जीवलोकां जीविये त्यां सुधी कोड
नो पासे याचना न करवी, तेमज कोडनी याचनानो जंग न
करवो अने दोन वचन न बोलवुं. ॥ ८ ॥

अप्या न पसंसिऊइ, निंदिऊइ दुखाणोवि न कयावि ॥
बहु बहुसो न हसिऊइ, लप्रइ गुरुअत्ताणं तेण ॥९॥

शब्दार्थ—पोतानां वखाण न करवां, दुर्जनने कपारे पण
न निंदवो, बहु बहु न हसवुं के, जेथी म्होटाइपणुं पामीये. ए
रिजाणो न वीससिऊइ, कयावि वंचिजए न वीसत्तो ॥
न कयग्घेहिं हविऊइ, एसो नायस्स नीसंदो ॥१०॥

शब्दार्थ—शत्रुनो विश्वास न करवो, विश्वासनालाने कपारे
पण न ठगवो, करवा गुणना लोपक (कृतघ्न) न धवुं. ए न्या
यनो रस्तो जाणवो. ॥ १० ॥

रचिऊइ सुगुणोसु. वझइ राज न नेहवप्रेसु ॥

किऊइ पत्तपरिस्का. दम्काण इमोअ कसवटो ॥११॥

शब्दार्थ—सारा गुणनालाने विपे राचीये, साचा स्नेह रदि
तनी साथे राग न बांधीये अने पात्रनी परीक्षा करीये. माटा
पुरुपनी एज कसोटी ठे. ॥ ११ ॥

नाकळमायरिऊइ, अप्या पामिऊए न वयणिऊ ॥

न य साहसं चइऊइ, उप्पिऊइ तेण जगहठो ॥१२॥

शब्दार्थ—अकार्य न आदरवुं, पोते निंदनीयकां न पटवुं
अने साहसने न त्यजी देवुं के, तेथी जगत्कां हाप ठजो रहे. १२
यसणोवि न मुप्पिऊइ, मुग्गइ माणो न नाम भग्णोवि ॥

विहवसएणवि दिऊइ, वयमसिधारं गु धीगाणं ॥१३॥

शब्दार्थ—दुःखमां पण न मुंजावुं, मरण थाय तो पण मा

नतुं नाम न मूकवुं, लक्ष्मीनो नाशाय तो पण दान आपवुं,
 ए वीरपुरुषोतुं अतिधारा (तरवारनी धार सरखुं) वृत वे. १३
 अग्नेहो न वहिऊइ, रूसिऊइ न य पिएवि पयदिहं ॥
 वधारिऊइ न कली, जलंजली दिऊइ डहाणां ॥ १४ ॥

शब्दार्थ—कोशनी साथे बहु स्नेह न करवो, स्नेही उपर
 निरंतर न रीसावुं, छेरा न वधारवो तेमज डुःखोने जलंजली
 आपवी. अर्थात् डुःखने त्यजी देवुं. ॥ १४ ॥

न कुसंगेण वसिऊइ, वालस्सवि घिप्पए हिअं वयणं ॥
 अनयात्त निवहिऊइ, न होइ वयणिऊया एवं ॥ १५ ॥

शब्दार्थ—कुसंगीनी साथे न वसवुं, बालकनुं पण दित व
 घन प्रदण करवुं, अन्यायथी पाग फरवुं के, जेपी आपणुं को
 इ मावुं न बोले ॥ १५ ॥

विहयेवि न मच्चिऊइ, न विसीइऊइ असंपयाएवि ॥
 वहिऊइ समजावे, न होइ रणरणइ संतावो ॥ १६ ॥

शब्दार्थ—घनवंतपणामां अज्जिमान न करवुं तेमज निर्य
 नरपामां गेद न करवो, शत्रु मित्रने विपे समजाव राखवो
 के, जेपी मागे गोट्टे संताप न होय ॥ १६ ॥

वन्निऊइ निचगुणां, न परुक्कं न य सुअस्स पच्चखं ॥
 मट्ठिनात्त नां जयाविहु, न नस्सए जेण माहप्पं ॥ १७ ॥

शब्दार्थ—संवहना गुण पावल न वर्णयवा, तेमज पुत्रना
 गुण समह न वर्णयवा, स्त्रीना गुण पावल अने समह न
 वर्णयवा के, जेपी आपणी गोट्टाइ नाश न पाये. ॥ १७ ॥

जंपिऊइ पिअवयाणां, किऊइ विणात्तअ दिऊए दाणां ॥
 परमुणमद्दाणां किऊइ, अमूलमंतं यसोकराणां ॥ १८ ॥

(१६९)

शब्दार्थ—प्रीय वचन बोलवुं, विनय करवो, दानं आपवुं
अने पारका गुण ग्रहण करवा. ए मूल विनानो वशीकरण मंत्रवे.

पन्नावे जंपिऊइ, सम्माणिऊइ खलोवि बहुमझे ॥

न ऊइ सपरविसेसो, सयलठा तस्स सिझंति ॥१९॥

शब्दार्थ—उचित अवसरे बोलवुं, बहु माणसोनी मध्ये ख
लने पण सन्मान आपवुं, स्वपरनुं विशेषपणुं न त्यजवुं. ए प्र
माणे चालनाराना सर्वे अर्थां सिद्ध धाय वे. ॥ १९ ॥

मंतंताण न पासे. गम्मइ नइ परग्गहे अवीएहिं ॥

पम्भिव्रं पालिऊइ, सुकुलीणत्तं हवइ एवं ॥ २० ॥

शब्दार्थ—मंत्र तंत्रने न जोवां, एकला पारका घरमां न ज
वुं अने पोतानुं कहेलुं पालवुं. ए प्रमाणे चालवाथी सारुं कुलीन
पणुं होय वे. ॥ २० ॥

जुंजइ जुंजाविऊइ. पुत्थिऊ मणोगयं कहिऊ सयं ॥

दिऊइ लिऊइ उचिअं, इत्थिऊइ जइ थिरं पिम्मं ॥२१॥

शब्दार्थ—जो मित्रनी साथे स्थिर प्रेम इच्छिये तो तेने घेर
जर्माये अने तेने जमाढीये, आपणां मननो विचार तेने पूठीए अने
ते पूठे तेनो उत्तर आपीए; यली योग्य वस्तु आपीए अने लइए.

कोवि न अवमन्निऊइ. न य गविऊइ गुणोहिं निअएहिं ॥

न य विम्हंत्तं वहिऊइ, बहुरयणा जेणिमा पुहवी ॥२२॥

शब्दार्थ—कोशने पण अपमान न आपवुं, तेम पोताना गु
णथी गर्व पण न करवो. यली मनमां आश्चर्य पण न पामवुं.
कारण के, आ पृथ्वी बहु रत्नवाली वे. ॥ २२ ॥

आरंजिऊइ लहुअं, किऊइ कऊ महंत मविपन्ना ॥

न य उक्करिसो किऊइ, लप्रइ गुरुअत्तणं जेण ॥२३॥

शब्दार्थ—प्रथम आरंभ शोभो करवो अने पाठलया म्होदुं कार्य पण करवुं. वलो पोतानुं उच्छृष्टपणुं न करवुं के, जेथी म्होटाउपणुं पामीये. ॥ २३ ॥

जाइऊड परमप्पा, अप्पसमाणो गण्णिऊड परो ॥

किऊड न रागदोसो, विन्निऊड तेण संसारो ॥ २४ ॥

शब्दार्थ—परमात्मानुं ध्यान करवुं, बीजाने पोतानां समान गणना, गग दोर पण न करवो, तेथी संसार वेदाइ जाय वे. २४ उचणसरयाणामालं. जो एवं उवइ सुठ निअकंठे ॥

गो नर मियसुहलळी, वन्नपले रमइ सत्ताइ ॥ २५ ॥

शब्दार्थ—जे पुरुष आ प्रमाणे उपदेशरत्नमालाने पोता ना कंठने विषे स्थापन करे वे; तेनां वरुस्यलमां मोक्ष सुगती राहमी पोतानी इछा प्रमाणे क्रीडा करे वे. ॥ २५ ॥

॥ इति उपदेश रत्न कोष.

॥ अथ शाश्वताजिन नामादि संख्या स्तवन ॥

मिदि उमद्र वदमाण, चंदाणाण वारिमेण जिणचंद ॥

नमिन्नं मागय जिण जव—गा संख्य परिक्कितां काहं ॥ १ ॥

शब्दार्थ—सामान्य कवलीनी मध्ये चंइ समान श्री स्तन देव. श्री वदमान स्वामी, श्री चंदानन अने श्री वारिमेणने नम स्तन करेने शाश्वता जिननुवननी संख्यानुं कीर्तन करे वे. ॥ १ ॥ जेठ वणिसु अर्गसा, गग कोहि विगयमि लुम्फ नवणेइ बुद्धमी लुम्फा गगनवठ, गदम नेवांगुयमि लोण ॥ २ ॥

शब्दार्थ—ग्यातमी अने ग्यातने विर अर्गसाया, नुत लुम्फा स्तन क्रीडा अने वंतेर लाम, तथा उचं सोहमां वं

सी लाख सत्ताणुं हजार अने त्रेवीस जिन जुवन ठे. ॥ २ ॥

वावन्ना नंदोसर—वरंमि चउ चउ कुंमले रूअगो ॥

इअ सठी चउवारा, तिउवारा सेसजिण जवणा ॥३॥

शब्दार्थ—आठमा नंदोश्वर क्षीपमां वाचन तथा कुंमल क्षी
प अने रुचकक्षीपमां चार चार. एम साठ जिनजुवन चार वा
रणा वाला ठे अने वाकोना जिनजुवनो त्रण वारणावाला ठे. ३

पत्तेअं वारेसु, मुहमंभव रंगमंभवे ततो ॥

मणिमयपीठं तउवरि, थूजे चउदिसिसु चउ पम्पिमा ४

शब्दार्थ—प्रत्येक वारणामां मुखमंरुप अने रंगमंरुपठे.
त्यार पठी मणिमयपीठ ठे. ते पीठ उपर स्थूज अने ते स्थूज
उपर चार दिशामां चार प्रतिमा ठे. ॥ ४ ॥

ततो मणीपोठजुगे, असोग धम्मअउ अ पुक्करणी ॥

पइजवाणं पम्पिमाणं, मझे अउत्तर सयं च ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—त्यार पठी मणिपीठनुं जोरुलुं, अशोक वृक्ष, धर्म
ध्वज अने पुक्करिणी वाच्य ठे. प्रत्येक जुवननी मध्ये (गजारा
मां) एकसो आठ प्रतिमाउ ठे. ॥ ५ ॥

पम्पिमा पुण गुरुअणु, पाण धणुसय लहु अ सत्तहउाउ ॥

मणिपोठे देवठं—इयंमि सीहासणनिसन्ना ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—बली म्होटी प्रतिमाउ पांचसो धनुष्यनी अने
न्दानी प्रतिमाउ सात हाथनी ठे. ते प्रतिमाउ मणिपीठ उपर
देवठं दामां सिंहासन उपर वेठेली ठे. ॥ ६ ॥

जिण पिठे ठत्तधरा, पम्पिमा जिणजिमुह उत्रि चमरधरा

नागा जूआ जस्का, कुंडधरा जिणमुहा दो दो ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—जिनप्रतिमानो पाठल एक उत्रधर प्रतिमा अने

पहोला १५-उंचा ३६ नागकुमारमां-१५-११॥-१८ व्यंतर्मां
११॥-६॥-ए-योजन अनुक्रमे जाणवा. ॥ १५ ॥

दिग्गयगिरिसु चत्ता, दहे असो कंचाणोसु इगसहसो ॥
सत्तरि महानईसु, सतरिसयं दीह वेअह्हे ॥ १६ ॥

शब्दार्थ-दिग्गज पर्वत उपर चालीश, इहमां एंसी, कंच
न गिरिने विपे एक हजार, मदा नदीयोमां सीतेर अने लांवां व
ताढ्य उपर एकसो सीतेर जिन ज्ञुवन ठे. ॥ १६ ॥

कुंमेसु तिसय असोआ, वीसं जमगेमु पंच चूलासु ॥
इकारस सय सत्तरि, जंवूपमुहे दसतरूसु ॥ १७ ॥

शब्दार्थ-कुंडने विपे त्रणसो एंसी, यमक पर्वत उपर वीस,
मेरुपर्वतनी चूलिका उपर पांच अने जंवू प्रमुख दश वृक्ष उपर
अगीयार सो सीतेर जिनज्ञुवन ठे. ॥ १७ ॥

वट्टेअह्हे वीसा, कोस तयद्वंच दीहविठारा ॥

चउदस धाणुसय चालीस, अहिअ उच्चत्तणे सव्वे १८

शब्दार्थ-वृत्त वैताढ्य उपर वीश जिनज्ञुवन ठे. ए सर्वे
दिग्गजादि दश स्थानना १९५५ जिनज्ञुवनो एक गाउ लांवां
अने अर्धो गाउ पहोलां तेमज चौद सो चालीस धनुष्य उंचां ठे.
अमदीविदिदिसिसोलस, सोहम्मीसाणंग्गदेविनयरीसु ॥
एवं वत्तीससया, गुणसठि जुआ तिरिअलोए ॥१९॥

शब्दार्थ-आठमा क्षीपनी विदिशाए सौवर्म अने ईशान ए
वे इंडनी सोल देवीनी सोल नगरीयोमां सोल जिनभुवन ठे. ए
म तिर्थांलोकमां सर्व मली वत्रीससो ने उगणसाठ जिनज्ञुवनठे
एवं तिहुअणमप्रे, अम कोमी सत्तवन्न लस्काई ॥
दोअसया वासीया, सासय जिणज्जवण वंदामि ॥२०॥

शब्दार्थ—ए प्रमाणे पूर्वं कहेला उर्ध्व, अथो अने तिर्था ए
ग्रणे लोकमां आठ कोड, सत्तावन लाख, वसोने व्यासी शाश्वता
जिनभुवनने हुं वांडुं. ॥ २० ॥

सत्ती लस्का गुणनवइ कोमि, तेरकोमि सय विंव जवणोसु
तिअसय वीसा इगनवइ. सहस लस्क तिगं तिरिअं २१

शब्दार्थ—तेरसो कोड, नव्यासी कोड अने साठ लाख एट
लां जिनविंव भुवनपतिमां ठे, तेमज ग्रण लाख, एकाणुं हजार
त्रणसो वीस जिनविंव तिर्थांलोकमां ठे. ॥ २१ ॥

एगं कोमि सय खलु, वावना कोमि चणवइ लस्का ॥
चउ चत सहस सगसय, सत्ता वेमाणि विंवाणि ॥२२॥

शब्दार्थ—एकसो कोरु, वावन कोड, चोराणुं लाख, चुमालीडा
हजार सातसो साठ एटलां जिनविंव वैमानिक देव लोकमां ठे.
पनरस कोमि सयाइं, डुचत कोडि अरुवन्न लस्काइं ॥
उत्तीससहस असीआ. तिहुअण विंवाणि पणामां २३

शब्दार्थ—पंदर सो कोरु, वेतालोसकोरु, अठवन लाख,
उत्रोस हजार अने एंसी एटला त्रण भुवनमां सर्व जिनविंवेने
हुं प्रणाम करुंतुं. ॥ २३ ॥

सिरि जरह निवइ पमुहे—हिं जाइं अनाइं इत्त विहिआइं
देविंद मुणिंदयुआइं, दिंतु जवीयाण सिद्धिसुहं ॥२४॥

शब्दार्थ—श्री जरतचक्रवर्ती विगेरे राजाउए आ अदीक्षीप
मां जे प्रतिविंबो निपजाव्यां ठे अने देवेंड सूरीश्वरे स्तव्या ठे, ते
जिनविंव जव्यजनोने सिद्धि सुख आपो. ॥ २४ ॥

उस्सेह मंगुलोणं, अह उहमसेस सत्त रयाणीउ ॥

तिरिदोए पण धणु सय. सासय पणिमा पणिवयामि२५

(१७६)

द्वन्द्वार्थ-उत्प्लेक्षंगुलनां प्रमाणे करी अथोलोकमां अने उ
 स्त्रैजोकमां सर्वे सात द्वायनी अने तिर्थांलोकमां पांचसो धनुष्य
 नां शाश्वति प्रतिमाने हुं प्रणमुं वुं. ॥ १५ ॥

॥ इति शाश्वत जिननामादि संख्या स्तवन समाप्तम् ॥

॥ अथ त्रिलोक चैत्य विंश संख्या ॥

॥ अथोलोकमां जिनजुनविंश संख्या ॥

क्रमांक संख्या	ध्याननां नाम	जुन संख्या	जिनविंश संख्या
१	अनुत्तुमाग्मां ॥	६४०००००	१११०००००००
२	नागत्तुमाग्मां ॥	८४०००००	१११०००००००
३	सुराणत्तुमाग्मां ॥	७७ ताग	१०१०००००००
४	विश्वत्तुमाग्मां ॥	७२ ताग	१३६०००००००
५	अग्नित्तुमाग्मां ॥	७१ ताग	१३६०००००००
६	दीपत्तुमाग्मां ॥	७६ ताग	१३६०००००००
७	वृक्षत्तुमाग्मां ॥	७१ ताग	१३६०००००००
८	विष्णुत्तुमाग्मां ॥	७१ ताग	१३६०००००००
९	वसुत्तुमाग्मां ॥	७६ ताग	१०००००००००
१०	इन्द्रत्तुमाग्मां ॥	७६ ताग	१३६०००००००
कुल		७१०००००	१३६०००००००

(१७७)

॥ उर्ध्वलोकमां जिनभुवन विवसंख्या ॥

स्थान संख्या	स्थाननां नाम	भुवन संख्या	जिनविव संख्या
१	सौधमदेवलोके ॥	३२ लाख	५७६००००००
२	ईशानदेवलोके ॥	२८ लाख	५०४००००००
३	सनत्कुमारमां ॥	१२ लाख	२१६००००००
४	माहेंद्रेवलोके ॥	८ लाख	१४४००००००
५	ब्रह्मदेवलोके ॥	४ लाख	७२००००००
६	लांतकदेवलोके ॥	५००००	९००००००
७	महाशुक्रदेवलोके ॥	४००००	७२०००००
८	सदस्वारदेवलोके ॥	६०००	१०८००००
९	आनतदेवलोके ॥	२००	३६०००
१०	प्राणतदेवलोके ॥	२००	३६०००
११	आरणदेवलोके ॥	१५०	२७०००
१२	अच्युतेदेवलोके ॥	१५०	२७०००
३	प्रथमत्रीके	१११	१३३२०
३	बीजेत्रीके	१०७	१२८४०
३	त्रोजेत्रीके	१००	१२०००
५	अनुत्तरपांचे	५	६००
		कुल ८४९७०२३	कुल १५२९४४४७६०

प्रथमदेवलोकयो १२ मा सुधी प्रत्येक चैत्ये १८० प्रतीमा ठे ॥
 पांच सज्जानी ६० प्रतीमा । अण बारणाना चोमुखनी १२ प्रती
 मा । मध्य चैत्यनी १०८ प्रतीमा । सर्व मली १८० जाणवी ॥ प्रै
 वेक अनुत्तरे १२० कड्यातीत ठे, माटे सज्जा नथी ॥

॥ तिर्छालोकमां चैत्य विंवसंख्या ॥

स्थान संख्या	स्थाननां नाम	जिनचैत्य संख्या	जिनविंव संख्या
१	व्यंतर असंख्यनगरे ॥	असंख्यचुवन	असंख्यविंव
२	जोतपीचरथरमां ॥	असंख्यचुवन	असंख्यविंव
३	नंदीश्वरद्वीपमां ५०१२४	५२	६४४८
४	कुंरुलद्वीपमां ॥	४	४९६
५	रुचकद्वीपमां ॥	४	४९६
६	कुंरुलगिरिमां ५०१२०	३०	३६००
७	दय उत्तरकुरुमां ॥	१०	१२००
८	मैरुवनने विणे ॥	८०	९६००
९	गजवंना पर्वते ॥	२०	२४००
१०	रागार पर्वते	८०	९६००
११	बहुकार पर्वते ॥	४	४८०
१२	मानुषोण पर्वते ॥	४	४८०
१३	दिग्गजे ॥	४०	४८००
१४	दिग्गजे ॥	८०	९६००
१५	कंचनगिरिये ॥	१०००	१२००००
१६	महानाथोय ॥	७०	८४००
१७	दिव्य विनादय गिरिये ॥	१७०	२०४००
१८	कुंरु ॥	३८०	४५६००
१९	यमकगिरिये ॥	२०	२४००
२०	मन्मथवनती नृसीकाय	११	६००
२१	बहुमभुज मूर्ति ॥	११७०	१४०४००
२२	मृतीनाथकृष्णगिरिये ॥	७०	२४००
२३	जयगो काव्यादिक ॥	१६	१९७०
		६४	६४
		३२५९	३९१४२०

(१७९)

एदमां ६० प्रासाद तेमां प्रत्येके १२४ पातिमा वाकी ३१९९
प्रासाद त्रौड्वारा । तेमां प्रत्येके १२० पतिमा ॥

॥ त्रिजगसंख्या ॥

अधोलोके ॥	७७००००००	१३८९६००००००
उर्ध्वलोके ॥	८४९७०२३	१५२९४४४७६०
तिर्थालोके ॥	३२५९	३९१३२०

॥ एम त्रणलोकमां ॥

साश्वता प्रासाद ॥	साश्वता जिनविं ॥
८५७००२८२	१५४२५८३६०८०

॥ इति साश्वतां जिनजुवन तथा जिनविं संख्यायंत्र समाप्तम् ॥

॥ अथ शत्रुंजय लघुकल्प ॥

अद्भुतपकेवलिणा, कहिअं सेतुंजतिवमाहृष्यं ॥

नारयरिसिस्स पुरउ, तं निसुणह जावउ जविअ्या ॥१॥

शब्दार्थ—हे अव्यजनो! अति मुक्त मुनिये नारदरूपिनी श्राग
व शत्रुंजय तोर्यनुं महात्म्य क.ह्यं ठे, तेने तमे जावथी सांजलो.

सेतुंजे पुंमरीउ, सिधो मुणिकोमीपंचसंजुतो ॥

चित्तस्स पुणिमाए, सो जन्नइ तेण पुंमरिउ ॥ २ ॥

शब्दार्थ—शत्रुंजय उपर पुंमरिक गणधर पांच क्रोड साधु
सहित चैत्रमासनी पुनमे सिद्ध थया ठे, तेथी ते पर्वतनुं नाम
पुंमरिक कदेवाय ठे. ॥ २ ॥

नमि विनमि रायाणो, सिद्धा कोमिहिं दोर्ही साहुणं ॥
तह दविम वालोखिल्ला, निव्वुआ दसय कोडिनं ॥३॥

शब्दार्थ—नमि अने विनमि राजा वे कोड साधुसहित
सिद्ध श्रया. तेमज झविम अने वालीखिल वे बंधु मुनियो दशकोम
साधु साथे सिद्ध श्रया वे. ॥ ३ ॥

पञ्जत्रसंवपमुहा, अघु वाठ कुमारकोमिं ॥

तह पमवावि पंचय, सिद्धिगया नारयरिसि य ॥४॥

शब्दार्थ—प्रद्युम्न सांव विगेरे साडा श्राठ कोम कुमारो तेमज
पांच पांनवो अने नारदरूपि सिद्धि पद पाम्या. ॥ ४ ॥

थावच्चा सुय सेलं—गाय मुण्णिणोवि तह राममुण्णि ॥

जरहो दसरहपुत्तो, सिद्धा वंदामि सेत्तुंजे ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—थावच्चा पुत्र मुनि, शुकमुनि, शैलकमुनि तेमज
दशरथना पुत्र राममुनि अने जरतमुनि शत्रुंजय उपर सिद्ध
याठे, तेमने हुं वांदु वुं. ॥ ५ ॥

अत्रेवि खविथमोहा, उसन्नाइविसालवंससंजूआ ॥

जे सिद्धा सेत्तुजे, तं नमह मुण्णि असंखिजा ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—बोजा पण मोहने खपावनारा अने रूपन्नादिक
विशाल वंशमां उत्पन्न श्रयेला जे मुनियो शत्रुंजय उपर सिद्ध
श्रया ठे ते असंख्याता मुनियोने हुं वांडु वुं. ॥६॥

पंनास जोयणाइं, आसी सेत्तुंजविठडो मूले ॥

दसजोयणा सिहरतले, उच्चतं जोयणा अठ ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—मूलमां शत्रुंजयनो विस्तार पचास जोजन हतो
शिखर उपर दश जोजन अने उंचपणे आठ जोजन हतो.

(१८१)

जं लहइ अन्नतिष्ठे, उग्गेण तवेण वंजचेरेण ॥
तं लहइ पयत्तेणं, सेतुंजगिरिम्मी निवसंते ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—अन्यतीर्थमां उग्रतपथी अथवा ब्रह्मचर्यथी जे फल प्राप्त थाय ते फल प्रयत्ने शत्रुंजय उपर वसवाथी थाय ठे. ८

जं कोमिए पुन्नं, कामियआहारजोइआ जेउ ॥
जं लहइं तन्न पुन्नं, एगो वासेण सेतुंजे ॥ ९ ॥

शब्दार्थ—शुद्धित जोजन वडे क्रोर माणसने जमारुवाथी जे पुण्य थाय, ते पुण्य शत्रुंजय उपर एक उपवास करवाथी थाय ठे.

जं किंची नामतीठं, सग्गे पायाले माणुसे लोए ॥
तं सबमेव दिठं, पुंमरिए वंदिए संते ॥ १० ॥

शब्दार्थ—स्वर्ग, पाताल अथवा मनुष्य लोकमां जे कोइ पण नाम मात्र तीर्थ होय, ते सर्व फक्त शत्रुंजयने वांदवाथी दीगं जाणवां. ॥ १० ॥

पम्लिज्जंतं संघं, दिठमदिठेय साहूसेतुंजे ॥
कोमिगुणं च अदिठे, दिठेअ आणंतये होइ ॥११॥

शब्दार्थ—शत्रुंजय पर्वतने दीग अणदीग पण तेना सन्मुख चालवाथी चतुर्विध संघनी जक्ति करवा जेटुं पुण्य थाय ठे, न देखवाथी क्रोर गणुं अने देखवाथी अनंतगणुं थाय ठे.

केवलनाणुप्पती, निघाणं आसि जन्न साहूणं ॥
पुंमरिए वंदित्ता, सबे ते वंदिया तन्न ॥ १२ ॥

शब्दार्थ—ज्यां साधुठने ज्ञाननी उत्पत्ति अने मोक्षप्राप्ति होय ठे; त्यां ते पुंमरीकगिरिने वंदन करवाथी ते सबं मुनियोने वांदा जाणवा. ॥ १२ ॥

शब्दार्थ—कृष्ण अगुरुना धूपथी पंदर दिवसना उपवास्तु
फल अने कर्पूरना धूपथी एक मासना उपवास्तु फल थाय ठे
वली साधुने शुद्ध आहारादिक आपवाथी केटलाक मासना
उपवास्तु फल थाय ठे. ॥ १२ ॥

न वितं सुवन्न जूमी—जूसणादाणेण अन्नतिष्ठेसु ॥

जं पावइ पुत्र फलं, पुत्र्या न्हावणेण सित्तंजे ॥ १३ ॥

शब्दार्थ—शत्रुंजय उपर तीर्थपतिने पूजा न्हावण कराववाथी
जेटलुं पुण्यफल प्राप्त थाय, तेटलुं पुण्यफल बीजा तीर्थमां सुवर्ण,
जूमी अथवा आजूपणनां दानथी पण न थाय. ॥१३॥

कंतार चोर सावय, समुद्ध दारिद्र रोग रिठ रुद्धा ॥

मुच्चंति अविग्घेणं, जे सेतुंजं धरंति मणे ॥ १४ ॥

शब्दार्थ—जे माणस मनमां शत्रुंजयनुं ध्यान करे ठे ते मा
णस अरण्यना, चोरना, सिंहादिकना, समुद्धना, दारिद्रना, रोग
ना, शत्रुना अने जयंकर अग्निना जयने निविघ्नपणे त्यजी देठे.
सारावली पयन्नग, गाहाळ सुअहरेण जणिआठ ॥

जो पढइ गुणइ निसुणइ, सो लहइ सित्तुंजजत्तफलं १५

शब्दार्थ—श्रुतघरे सारावली नामना प्रज्ञापना सूत्रमां जे
गाथाळ कदी ठे, तेने जे माणस जणे ठे, गणे ठे अथवा सांजले
ठे, ते शत्रुंजयनी जात्राना फलने पामे ठे. ॥१५॥

॥ इति शत्रुंजय लघुकल्प समाप्त ॥

(१७५)

॥ अथ उपगारी श्री रत्नागरसूरिजी कृत ॥

॥ श्री रत्नाकर पचीसी ॥

श्रेयःश्रियां मंगलकेलिसद्यः, नरेंद्रदेवेंद्रनतांधीपद्य ॥

सर्वज्ञ सर्वातिशय प्रधान, चिरं जय ज्ञानकलानिधान ?

शब्दार्थ—मोक्ष लक्ष्मीने मंगल एवं क्रीडा करवानुं मंदिर,
चक्रवर्ती अने इंद्रो जेमनां चरण कमलमां नमस्कार करी रत्ना
के एवा, सर्वं जाण, चोत्रीश अतिशये करीने प्रधान अने ज्ञान
कलाना जंनार एवा हे प्रज्ञो ! तमे दीर्घकाल जयवंता वर्तो. ?

जगत्प्रयाधार ऋपावतार, दुर्वारसंसारविकारवेद्य ॥

श्रीवीतरागत्वयिमुग्धजावा, विज्ञप्रज्ञोविज्ञपयामिकिंचित् ॥

शब्दार्थ—त्रण जगत्प्रना आधार, ऋपाना अवतार, दुःखे
निवारवा योग्य संसाररूप विकारने दुर करनारा वेद्य एवा हे
विशेष जाण प्रज्ञो ! हुं ज्ञोला ज्ञावधी तमारी आगल कांइ वि
नंती करुं वुं. ॥ २ ॥

किं बाललीलाकलितो न बालः,

पित्रोःपुरो जल्पति निर्विकल्पः ॥

तथा यथायं कथयामि नाथ,

निजाशयं सानुशयस्तवाग्रे ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—हे नाथ ! बालक्रीडा सहित एवा बालक मा
ता पितानी आगल विकल्प रहित ठुं नथो बोलतो ? तेम हुं
पण तमारी आगल पश्चाताप करतो वतो म्हारो पोतानो आ
शय कहुं वुं. ॥ ३ ॥

दत्तं न दानं परिशीलितं च,

न शालिशीलं न तपोन्नितम् ॥

शुन्नो न ज्ञावोऽप्यन्नवन्नवेऽस्मिन्,

विज्ञो मया च्चांतमहो मुधैव ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—हे विज्ञो ! मैं दान आप्युं नथी, सुशोजित एवं शील पाब्धुं नथी, तप करधुं नथी तेमज आ न्नवमां मने शुन्न ज्ञाव पण थयो नथी, माटे अहो ! हुं फोगटज च्चांती पाम्योहुं.

दग्धोऽग्निना क्रोधमयेन दष्टो,

दुष्टेन लोञ्जारुख्यमहोरगेण ॥

प्रस्तोऽग्निमानाजगरेण माया—

जालेन वध्नोऽस्मि कथं न्नजे त्वां ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—हे प्रज्ञो ! क्रोधरूप अग्निथी बल्लेलो, लोञ्जरूप उ ए महा सर्पे डसेलो, अग्निमान रूप अजगरे गल्लेलो अने माया थो वंधाइ रहेलो हुं तमने शी रीते न्नजी शकुं ? ॥ ५ ॥

कृतं मयामुत्र हितं न चेह,

लोकेऽपि लोकेश सुखं न मेऽन्नूत् ॥

अस्मादृशां केवलमेव जन्म,

जिनेश जज्ञे न्नवपूरणाय ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—हे लोकेश ! मैं परलोकमां हितकारी अने आ लोकमां पण हितकारी एवं कांइ करधुं नथी, जेथी मने आ ज न्नमां सुख नथी मब्धुं. हे जिनेश्वर ! ते माटे अमारा सरखा नो जन्म फक्त न्नव पूरवा माटेज थयो वे. ॥ ६ ॥

मन्ये मनो यन्न मनोज्ञवृत्तं,

त्वदास्यपोयूपमयूखलाज्ञात् ॥

द्वृतं महानंदरसं कठोर—

मम्मादृशां देव तदश्मतांऽपि ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—हे मनोजवृत्त ! हुं जाणुं तुं के, तमारां मुखरूप
 अमृतनां किरणोनो लाज्ज थयाथी पण अमारुं मन महा आनंद
 ने गृहण करतुं नथी, तेथी ते पड्डरथो पण कवीण ठे ॥ ७ ॥

त्वतःसुदुःप्राप्यमिदं मयाप्तं, रत्नत्रयं जूरिन्नवन्नमेण ॥

प्रमादनिजावशतो गतं तत्, कस्याधतो नायकपूत्करोमि

शब्दार्थ—संसारमां बहु जटकता एवा में डुखे मेलवी श
 काय एवा आ ज्ञान, दर्शन अने चारित्ररूप त्रण रत्न तमाराथी
 मेलव्यां हतां ते प्रमाद निज्जा वशथो गुमावी दीघां ठे, तो हवे
 हे नायक ! हुं कोनो आगल जज्ञे पोकार करुं ॥ ८ ॥

वैराग्यरंगो परवंचनाय, धर्मोपदेशो जनरंजनाय ॥

वादाय विद्याध्ययनं च मे ज्ञूत्, कियद्दुवे हास्यकरं स्वमीश

शब्दार्थ—हे ईश ! म्हारो वैराग्य रंग वीजाने ठगवाने अर्थ
 थयो, धर्मोपदेश माणसोने राजो करवाने अर्थ थयो अने विद्या
 ज्यास वाद करवा माटे थयो. आवुं म्हारुं हास्यकारक कृत्य
 केटलुं कहुं ? ॥ ९ ॥

परापवादेन मुखं सदोषं, नेत्रं परस्त्रीजनवीक्षणोऽपि ॥

चेतःपरापायविचिंतनेन, कृतं ज्ञविष्यामि कथं विज्ञोहम् १०

शब्दार्थ—हे विज्ञो वीजाना अठता दोष बोलवाथो मुखने,
 परस्त्रीने जोवाथो नेत्रने अने वीजानेने कष्ट चिंतववाथो चित्त
 ने एम ए त्रणेने मलीन करथां ठे, तो हवे म्हारी शी गति थशे ?

विम्वितं यत्स्मरघस्मरार्ति—दशावशात्स्यंविपयाधलेन ॥

प्रकाशितं तद्भवतो हिर्यैव, सर्वज्ञ सर्वं स्वयमेव वेत्ति ११

शब्दार्थ—हे सर्वज्ञ कामदेवना पापनी पीमाना वश्यथो वि
 पयवरे आंधला थपेला में. म्हारुं पोतानुं जे कुकृत्य हतुं ते सर्व

आपनो आगल लज्यायो कह्युं ठे. वधारे शुं कह्युं ? कारण आ
पज सर्व जाणो ठे. ॥ ११ ॥

ध्वस्तोऽन्यमंत्रैः परमेष्ठिमंत्रं, कुशास्त्रवाक्यैर्निहितागमोक्ति
कर्तुंवृथाकर्मकुदेवसंगात्, अवांविहिनायमतिचमोमे ११

शब्दार्थ—में मारणादि बीजा मंत्रोथी परमेष्ठि मंत्रनो नाश
कख्यो, कुशास्त्र वचनोथी आगम वचननो नाश कख्यो अने कु
देवना संगथी वृथा कर्म करवानो इच्छा करो. हे नाथ ! आ सर्व
मने मतिचम थयो ठे. ॥ १२ ॥

विमुन्यटकल्लङ्घयगतंज्वंतं, ध्यातामयामूढधियाहदंतः ।
कटाक्षक्षोजगर्जीरनाजो, कटीतटीयःसुहशांविजासाः ।

शब्दार्थ—हे प्रज्ञो ! नेत्रनो सन्मुख रहेला तमने त्यर्जाव
गुड बुढिवाला में स्त्रीयांनां कटाक्ष, स्तन, गर्जीर नाजो, कडन
नाथ अने विजासोनुं हृदयमां ध्यान कर्तुं ठे. ॥ १३ ॥

सोमोऽन्नागावक्रनिरोक्तापोन, योमानसोगगलवोविलप्रः ।
नगृहमिद्वानपपोधिमथ्ये, धौतोप्यगात्ताम्ककार्माकिं ।

शब्दार्थ—हे ताम्क ! स्त्रीयांनां मुखने जोयाथी जे श्वा
मने रिंग श्वां रंग लाग्यो ठे, ते रंगने में शुद्ध सिद्धांत समु
दां थोड नश्यो तो पण गयो नहि, तेनुं शुं कारण ? ॥ १४ ॥

अंगंनयंगंनगागोगुणानां, ननिर्मलःकोपिकलाविलाग ।
म्हृत्स्वन्नानप्रनृनाचकापितयाप्यहंकाम्कदर्थिनाहम ।

शब्दार्थ—म्हारे अंग श्वां नथी, श्वागमां थोड गुणगम
नथी, थोड निर्मल कलाविलाग नथी, तेम देहाप्यमान कांति
श्वा थोड पण दानुना नथी, तो पण हं, अहंकार्यो क
हं कर्मां ठे. ॥ १५ ॥

आयुर्गलत्याशुनपापबुद्धिः, गतंवयोनोविषयाञ्जिलापः ॥
यत्रश्चज्ञैपज्यविधौनधर्मे, स्वामिन्महामोहविम्वनामे १६.

शब्दार्थ—हे स्वामिन् ! हमेशां आयुष्य गलतुं जाय ठे, पण पाप बुद्धि गली जतो नथो; वाढ्यादि अवस्था गइ, पण विषयनो अञ्जिलाप गयो नहि; बली औपघविधिमां यत्न करयो, पण धर्ममां यत्न करयो नहि. खरेखर आ मने म्होटी मोह विटंबना लागी ठे. १६
नात्मानपुण्यंनञ्चवोनपापं, मयाविटानांकट्टुगीरपीयं ॥
आधारिकार्णत्वयिकेवलार्के, पग्स्फुटेसत्यपिदेवधिग्मां ॥

शब्दार्थ—हे देव ! केवल ज्ञाने करीने सूर्यरूप आप प्रगट उता में, “ आत्मा नथो, पुण्य नथो, नच नथो, पाप नथो. ”
आवी नास्तिकोनी करवी वाणीने पान करो तथा कानमां धारण करी, तेथी मने धिक्कार ठे. ॥ १७ ॥
न देवपूजा न च पात्रपूजा, न श्राद्धधर्मश्च न साधुधर्मः ॥
लब्ध्वापिमानुष्यमिदंसमस्तं, कृतं मयारण्यविलापतुल्यं ॥

शब्दार्थ—में मनुष्य जन्म पामीने देव पूजा न करी, पात्र पूजा न करी, श्रावक धर्म न पाढ्यो तेमज साधुधर्म पण न पाढ्यो; तेथो में ए सधलो मनुष्य जन्म अरण्यमां विलाप करवा तुल्य करयो ठे. अर्थात् फोगट गुमावी नास्यो ठे. ॥१८॥
चक्रेमयासत्यपिकामधेनुः, कल्पद्विचिंतामणिपुस्पृहार्तिः ॥
नजैनधर्मेस्फुटशर्मदेषि. जिनेशमेपश्यविमूढजावं ॥१९॥

शब्दार्थ—हे जिनेश्वर ! में असत्य एवी कामधेनु, कल्प वृक्ष अने चिंतामणि रत्न विगोरे वस्तुमां स्पृहा करी; परंतु प्रगट सुख ध्यापनारा जिन धर्मने विषे स्पृहा करी नहि. ए म्हारा विशेष मूढ जावने जूठ. ॥ १९ ॥

सन्नोगलोत्थानचरोगकोला, धनागमोनोनिधनागम
द्वाराकारानरकरूपचित्ते, विचिंतितिनित्यंमयकाधमे

शब्दार्थ-मं अथम चित्तमां नित्य शब्दादि सारा च
लीलानो विचार करयो पण तेथी थता रोगरूप लीलनो
वग्घो नहि; धन मेत्तववानो विचार करयो, पण भरणनो
करयो नहि; स्त्रीपोनो विचार करयो, पण नरकनी वेडी
पाम वग्घो नहि. ॥ २० ॥

न्यूननगाधोगहृदिमाधुवृत्तात्, परोपकारान्नपगोडि
तनंनर्वाशोन्नगाादिकुन्यं, मयामुद्राहृष्टितमेवजन्म

शब्दार्थ-श्लारा हृदयमां उत्तम साधुवृत्ति रही नहि
मं परोपकार मांटे पण मेत्तवयो नहि. गलो तोथे उ
शां पण वग्घो नहि, तेथी मं गोरगर श्लारो जन्म फो
मांटे नागपो. ॥ २१ ॥

पराधर्मो न गुरुद्विनेषु, न चूर्जनानां वचनेषु शांति
नःपराधर्मोशोममकोपिंदेव, तार्यःकथंकारमपंत्य

शब्दार्थ-मंने गुरुण कंठ्यां वचनमां वेगगारंग न
चूर्जनानां वचनेषु शांति पण न थट. यती मने कोड
पराधर्म पेश प्रगशां नहि; तेथी हे देव ! श्लाराथी शा
मपट्ट शो मने तराय ॥ २२ ॥

एवंतदशान्मियानपुण्यं, श्रानामितजन्मन्यपिनोव
नरेन्द्रशंभुपदेननशा, नूनान्नवज्ञावित्तपत्रपीशः

शब्दार्थ-जे एवंप्रतमा पुण्य करयो नशी, यायता न
नल कर्मण नरेके, नरेके श्लारा न गी रशांटे, मांटे क श
नरे, नरेक्य अत्र नरेक्य कायता थल नरेक्य पुया नाश

कैवामुधाहंबहुधासुधाञ्जुक्, पूज्यत्वदधेचरितंस्वकीयं ॥

तल्पामियस्मात्त्रिजगत्स्वरूप-निरूपकस्त्वंकियदेतदत्र ॥

शब्दार्थ-इ श्रमृतज्जोजी ! हुं तमारी आगल फोगट म्हा
चरित्र वधारे शुं कहुं ? कारण के, हे पूज्य ! तमे त्रण-जगत्
स्वरूपने निरूपण करानारा वो, तो पवी आ म्हारुं कहेवुं
गेण मात्र ठे ॥ २४ ॥

दीनोद्धारधुरंधरस्त्वदपरो नास्ते मदन्यः कृपा-
पात्रं नात्र जने जिनेश्वर तथाप्येतां न याचे श्रीयम् ॥
किंत्वर्हन्निदमेव केवलमहो सद्बोधिरत्नं शिवः,
श्रोरत्नाकरमंगलैकनिलयश्रेयस्करं प्रार्थये ॥२५॥

शब्दार्थ-हे जिनेश्वर तमारा विना बीजो कोइ दीन मा
सोनो उद्धार करवाने समर्थ नथी तेमज लोकमां म्हारा वि
बीजो कोइ दया करवा योग्य पात्र नथी, तो पण हुं ते ल
स्मीने मागतो नथी; परंतु हे श्ररिहंत ! हे मोक्षलक्ष्मीना समु
! हे मंगलना एक स्थान हुं फक्त कळ्याणकारी एवां श्रने मो
हेतु एवां उत्तम बोधीबीजरूप रत्ननी याचना करुं ठुं. २५

॥ इति रत्नाकर पञ्चीशी ॥

सन्नोगलीलानचरोगकीला, धनागमोनोनिधनागमश्च ॥
 दारानकारानरकस्यचित्ते, विचिंतितिनित्यंमयकाधमेन २०

शब्दार्थ—मं श्रधम चित्तमां नित्य शब्दादि सारा ज्ञोगनी
 लीलानो विचार करचो पण तेथी यता रोगरूप खीलनो विचार
 करचो नहि; धन मेलववानो विचार करचो, पण मरणनो विचार
 करचो नहि; स्त्रीयोनो विचार करचो, पण नरकनी वेडीनो वि
 चार करचो नहि. ॥ २० ॥

स्थितंनसाधोरहृदिसाधुवृत्तात्, परोपकारान्नयशोर्जितं च ॥
 कृतंनतीर्थोद्भ्रंशणादिकृत्यं, मयामुद्राहारितमेवजन्म २१

शब्दार्थ—म्हारा हृदयमां उत्तम साधुवृत्ति रही नहि तेम
 में परोपकार माटे यश पण मेलव्यो नहि. वलो तोर्थ उद्भ्रंशणादि
 कार्य पण कर्युं नहि, तेथी में खरेखर म्हारो जन्म फोण्ट मु
 मारी नारुयो. ॥ २१ ॥

वेराग्यरंगो न गुरुद्वितेषु, न दुर्जनानां वचनेषु शांतिः ॥
 नाध्यान्मल्लेशोममकोपिदेव, तार्यःकथंकाग्मयंजवाद्यि

शब्दार्थ—मने गुरुए कळेलां वचनमां वेराग्यरंग न पणे
 दुर्जनानां वचनमां शांति पण न थड. वली मने कोइ पण
 ध्यान्म लेश प्रगट्यो नहि; तेथी हे देव ! म्हाराथी आ संता
 समुद्र डी गीत तगप ॥ २२ ॥

पूर्वजवकाग्मियानपुण्यं, आगामिजन्मन्यपिनोकस्मिन्पे
 यदोदोदोदंममंनननशा, जूतांनवजाविजवत्रयीशः ॥२३

शब्दार्थ—में पूर्वजवमां पुण्य करधुं नथी, आनता जने वि
 पण करगश नहि के, जेथी हं आगां दुःखी म्हारांनुं:मांटे दे इडा म्हा
 मृत, जेवज्य अने वर्गमान कायना अणे जन्म गुथा नाडा पाप्म

किं वामुधाहं बहुधा सुधाञ्जुक्, पूज्यत्वदग्रे चरितं स्वकीयं ॥
जल्पामियस्मात्त्रिजगत्स्वरूप-निरूपकस्त्वं किं पदेतदत्र ॥

शब्दार्थ-हे श्रमृतजो जो ! हुं तमारी आगल फोगट म्हा
रुं चरित्र वधारे शुं कहुं ? कारण के, हे पूज्य ! तमे त्रण-जगत्
नां स्वरूपने निरूपण करानारा ठो, तो पढी आ म्हाहं कदेवुं
कोण मात्र ठे ॥ १४ ॥

दीनोद्धारधुरंधरस्त्वदपरो नास्ते मदन्यः कृपा-
पात्रं नात्र जने जिनेश्वर तथाप्येतां न याचे श्रीयम् ॥
किं त्वर्हन्निदमेव केवलमहो सद्बोधिरत्नं शिवः,
श्रोरत्नाकरमंगलैकनिलयश्रेयस्करं प्रार्थये ॥१५॥

शब्दार्थ-हे जिनेश्वर तमारा विना बीजो कोइ दीन मा
णसो नो उद्धार करवाने समर्थ नथी तेमज लोकमां म्हारा वि
ना बीजो कोइ दया करवा योग्य पात्र नथी, तो पण हुं ते ल
क्ष्मीने मागतो नथी; परंतु हे अरिहंत ! हे मोक्षलक्ष्मीना समु
ह ! हे मंगलना एक स्थान हुं फक्त कल्याणकारी एवां घने मो
क्षनुं हेतु एवां उत्तम बोधीबीजरूप रत्ननी याचना करुं ठुं. १५

॥ इति रत्नाकर पञ्चीशी ॥

सन्नोगलोत्थानचरोगकोला, धनागमोनोनिधनागमश्च ॥
 दारानकारानरकस्यचित्ते, विचिंतितिनित्यमयकाधमेन १०

शब्दार्थ—मं अधम चित्तमां नित्य शब्दादि सारा जोगनी
 लोलानो विचार करयो पण तेथो धता रोगरूप खीलनो विचार
 करयो नहि; धन मेलववानो विचार करयो, पण मरणनो विचार
 करयो नहि; स्त्रीयोनो विचार करयो, पण नरकनी वेडीनो वि
 चार करयो नहि. ॥ २० ॥

न्यितंनसाधोरहदिसाधुवृत्तात्, परोपकारान्नपशोर्जिनंवा ॥
 कुनंनतीर्थोत्तराणादिकृत्यं, मयामुद्राहारितमेवजन्म ११

शब्दार्थ—म्हारा हृदयमां उत्तम साधुवृत्ति रही नहि तेम
 में परोपकार माटे यश पण मेलवयो नहि. वलो तीर्थ उदारवि
 कायं पण कर्युं नहि, तेथी में गोरखर म्हारो जन्म फागट गु
 मारी नाग्यां. ॥ २१ ॥

वेगम्यगंगो न गुरुदितेषु, न दुर्जनानां वचनेषु शांतिः ॥
 नाख्यान्मज्जेशोममकोपिदेव, तार्यःकथंकाग्मयंनवाग्निः ॥

शब्दार्थ—मं गुरु कहेलां वचनमां वेगम्यगंग न पयो,
 दुर्जनानां वचनमां शांति पण न थड. वली मने कोड पण म
 ग्यन्म विज प्रगशां नहि; तेथी हे देव ! म्हारागी आ गंगार
 मसुट हो गीत तगाय ॥ २२ ॥

पूर्वज्ञवकाग्मियानप्राण्यं, आगामिजन्मन्यपिनोकाग्निः ॥
 यदीदृशोदंमनतेननशा, नृतांनयज्ञाविजयत्रयीशः ॥२३॥

शब्दार्थ—मं पूर्वज्ञवमां प्राण्य कर्युं नशी, आगता जयने वि
 दन करीत नहि के, तेथी हे आगी दुःखी श्यांनुं, माटे ए इश म्हारा
 नृ, नृव्य शंते वनेमान कागता थो जन्म मृया नाश पावत.

किंवा मुधाहं बहुधा मुधाञ्जुक्, पूज्यत्वदग्नेचरितं स्वकीयं ॥
जल्पामियस्मात्त्रिजगत्स्वरूप-निरूपकस्त्वं कियदेतदत्र ॥

शब्दार्थ-हे अमृतजो जी ! हुं तमारी आगल फोगट म्हा
हं चरित्र वधारे तुं कहुं ? कारण के, हे पूज्य ! तमे त्रण-जगत्
नां स्वरूपने निरूपण करानारा जो, तो पळी आ म्हारुं कहेवुं
कोण मात्र ठे ॥ २४ ॥

दीनोद्धारधुरंधरस्त्वदपरो नास्ते मदन्यः कृपा-
पात्रं नात्र जने जिनेश्वर तथाप्येतां न याचे श्रीयम् ॥
किंत्वर्हन्निदमेव केवलमहो सहो धिरत्नं शिवः,
श्रोरत्नाकरमंगलैकनिलयश्रेयस्करं प्रार्थये ॥ २५ ॥

शब्दार्थ-हे जिनेश्वर तमारा विना वीजो कोइ दीन मा
णसोनो उद्धार करवाने समर्थ नथी तेमज लोकमां म्हारा वि
ना वीजो कोइ दया करवा योग्य पात्र नथी, तो पण हुं ते ल
क्ष्मीने मागतो नथी; परंतु हे अरिहंत ! हे मोक्षलक्ष्मीना समु
ह ! हे मंगलना एक स्थान हुं फक्त कळ्याणकारी एवां अने मो
क्षुं हेतु एवां उत्तम बोधीवीजरूप रत्ननी याचना करुं वुं. २५

॥ इति रत्नाकर पञ्चीशी ॥

नशोगञ्जोलानचरोगकीला. धनागमोनोनिधनागमभ
दागनकागनरकस्यचित्ते. विचिंतितिनित्यमयकाधमेन

शब्दार्थ-मं अथम निचमां नित्य शब्दादि सारा ज्ञे
कीनानो विचार करयो पण तेथो अता रोगरूप खीजनो वि
रुग्णे नदि: धन मेनचानो विचार करयो, पण मरणो वि
रुग्णे नदि: स्त्रीपोना विचार करयो, पण नरयनी येडीनो
पण रुग्णे नदि. ॥ २० ॥

निर्जनगताधोरदिसाधुनुतात्. परोपकागन्नपशोर्दित्त
ह तेन शोणोदगणादिकल्पं, मयामुद्राहास्तिमंजन्म

शब्दार्थ-इदारा हरयमां उतम साधुनुति रही नदि
अ कल्पका सादि यज्ञपण मेवव्यां नदि. वतो तोर्थ उभा
कां पण कर्तुं नदि, तेथी मे संस्कार इदारा जन्म कां
सादि कल्पं. ॥ २१ ॥

तथापि न गृह्णन्ति. न दुर्जनानां यजनं शुभं न
न तां नतेशोमसकोपितं, तार्थः कथं काम्मं नवादि

इ तर्था मने गृह्णन्ते कोपिता यजनमां वेरतापं न प
२ वेमेन ननकसा शांति पण न भदु. यती मने कोर पण
ननक वेर वलशां नदि, तेथी के देव । इदाराथी आ मी
कल्प इति वेन नकप ॥ २२ ॥

पुनश्च ज्ञानियमानपुण्यं, आनामित्तमन्वपिनोक्ति
रुद्रैश्च नृपयं नृपयं, नृपयं नृपयं नृपयं ॥३

शब्दार्थ-जे पुं ज्ञाना पुण्य करयो नरी, आना नारा
पण कनेद नदि क कल्पे इथा एवु मीरुवादे, सांदि क इसा
नदि, नृपयं नृपयं नृपयं नृपयं ॥ २३ ॥

(१९१)

किं वामुधाहं बहुधा सुधाञ्जुक्, पूज्यत्वदग्रे चरितं स्वकीयं ॥
जल्पामियस्मात्त्रिजगत्स्वरूप-निरूपकस्त्वं कियदेतदत्र ॥

शब्दार्थ-हे श्रमृतज्ञोजी ! हूं तमारी आगल फोगट म्हा
हं चरित्र वधारें शूं कहूं ? कारण के, हे पूज्य ! तमे त्रण-जगत्
नां स्वरूपने निरूपण करानारा ठो, तो पत्नी आ म्हाहं कहेवुं
कोण मात्र ठे ॥ १४ ॥

दीनोद्धारधुरंधरस्त्वदपरो नास्ते मदन्यः कृपा-
पात्रं नात्र जने जिनेश्वर तथाप्येतां न याचे श्रीयम् ॥
किं त्वर्हन्निदमेव केवलमहो सद्वोधिरत्नं शिवः,
श्रोरत्नाकरमंगलैकनिलयश्रेयस्करं प्रार्थये ॥१५॥

शब्दार्थ-हे जिनेश्वर तमारा विना बीजो कोइ दीन मा
णसोनो उद्धार करवाने समर्थ नहीं तेमज लोकमां म्हारा वि
ना बीजो कोइ दया करवा योग्य पात्र नहीं, तो पण हूं ते ल
क्ष्मीने मागतो नहीं; परंतु हे अरिहंत ! हे मोक्षलक्ष्मीना ममु
इ ! हे मंगलना एक स्थान हूं फक्त कळ्याणकारी एवां अने मो
क्षनुं हेतु एवां उत्तम बोधीबीजरूप रत्ननी याचना करूं ठुं. १५

॥ इति रत्नाकर पच्चीशी ॥

सन्नोगलीलानचरोगकीला, धनागमोनोनिधनागमश्च ॥
दारानकारानरकस्यचित्ते, विचिंतिनित्यमयकाधमेन २०

शब्दार्थ—मं अघम चित्तमां नित्य शब्दादि सारा जोगनां लीलानो विचार करचो पण तेथी थता रोगरूप खीलनो विचार करचो नहि; धन मेलववानो विचार करचो, पण मरणनो विचार करचो नहि; स्त्रीयोनो विचार करचो, पण नरकनी वेडीनो विचार करचो नहि. ॥ २० ॥

स्त्रितंनसाधोरहृदिसाधुवृत्तात्. परोपकारान्नयशोर्जितंवा।
कृतंनतीर्थोद्धरणदिकृत्यं, मयामुद्धारितमेवजन्म २१

शब्दार्थ—म्हारा हृदयमां उत्तम साधुवृत्ति रही नहि तेम में परोपकार माटे यश पण मेलव्यो नहि. वलो तोर्थ उद्धारादि कार्य पण कर्युं नहि, तेथी में खरेखर म्हारो जन्म फोगट गुमायी नास्यो. ॥ २१ ॥

वेराग्यरंगो न गुरुदितेषु. न दुर्जनानां वचनेषु शांतिः ॥
नाध्यान्मलेशोममकोपिदेव, तार्यःकथंकाग्मयंजवाग्धिः॥

शब्दार्थ—मने गुरुए कहलां वचनमां वेराग्यरंग न थयो, दुर्जनानां वचनमां शांति पण न थड. वली मने कोइ पण अध्यान्म लेश प्रगथो नहि; तेथी हे देव ! म्हाराथी आ संसार समुद्र शो रीते तराय ॥ २२ ॥

पूर्वजवेकाग्मियानपुण्यं, आगामिजन्मन्यपिनोकस्त्विये॥
यदीदृशोदंममतेननष्टा, जूतोन्नवजाविजवत्रयीशः ॥२३॥

शब्दार्थ—में पूर्वजवमां पुण्य करचुं नथी, आवता जगते निरे पण कर्मदा नहि के, जेथी हूं थायो दुःखी रह्योतुं; माटे हे इश म्हाग नूत, नविन्य अजे वगेमान काखना थणे जन्म वृथा नाश पाया.

(१०१)

किंयामुधाह्वयहुधासुधानुक्, पूज्यत्वदग्नेचरितंस्वकीयं ॥
जल्पामियस्मात्त्रिजगत्स्वरूप-निरूपकस्त्वंकियदेतदत्र॥

शब्दार्थ-हे अमृतजो जी ! हुं तमारी आगल फोगट म्हा
रुं चरित्र वधारे शुं कहुं ? कारण के, हे पूज्य ! तमे त्रण-जगत्
नां स्वरूपने निरूपण करानारा वो, तो पगी आ म्हाहं कहेवुं
कोण मात्र ठे ॥ २४ ॥

दीनोच्चारधुरंधरस्त्वदपरो नास्ते मदन्यः कृपा-

पात्रं नात्र जने जिनेश्वर तथाप्येतां न याचे श्रीयम् ॥

किंत्वर्हन्निदमेव केवलमहो सहोधिरत्नं शिवः,

श्रोरत्नाकरमंगलैकनिलयश्रेयस्करं प्रार्थये ॥२५॥

शब्दार्थ-हे जिनेश्वर तमारा विना बीजो कोइ दीन मा
णसोनो उच्चार करवाने समर्थ नथी तेमज लोकमां म्हारा वि
ना बीजो कोइ दया करवा योग्य पात्र नथी, तो पण हुं ते ल
क्ष्मीने मागतो नथी; परंतु हे अरिहंत ! हे मोहलक्ष्मीना समु
ह ! हे मंगलना एक स्थान हुं फक्त कळ्याणकारी एवां अने मो
क्षुं हेतु एवां उत्तम बोधीबीजरूप रत्ननी याचना करुं वुं. २५

॥ इति रत्नाकर पच्चीशी ॥

सन्नो गल्लोलानचरोगकोला, धनागमोनो निधनागमश्च ।
दागनकारानरकस्यचित्ते, विचिंतितिनित्यंमयकाधमेन १७

शब्दार्थ-मं अथम चित्तमां नित्य शब्दादि सारा ज्ञेयते
सौख्यानो विचार करयो पण तेथो अता रोगरूप खीलनो विना
कर्मो नहिः धन मेलवचानो विचार करयो, पण मरणो विना
कर्मो नहिः स्वीयोनो विचार करयो, पण नरकनी घेडीनो वि
चार कर्मो नहिः ॥ २० ॥

शिवानंनगाशोगरुद्रिसाधुवृत्तात्, परोपकारान्नपशोर्जिनंपा
तुर्वनवीर्यांतरणादिकुर्व्यं, मयामुदाहारितमंबजन्म १८

शब्दार्थ-श्याग हस्यमां उत्तम साधुवृत्ति रही नहि तेम
मं परोपकार मांटे पण मेलवचो नहि. वलो तोर्थे उदाहारी
शो पण कर्म नहि, तेथो मं मरेणर श्यागे जन्म काणट पु
शांति माण्यो. ॥ १९ ॥

समाप्तं न गुरुद्विषु, न दुर्जनानां वचनेषु शांतिः ॥
नानासमोशांममकांपिदेव, तार्थःकथंकारमपंतपाशिव

शब्दार्थ-मने गुरुण केशयो वचनमां वेगापणं न पर्यो
दुर्जनानां वचनमां शांति पण न थट्ट. यर्था मने कोः पण म
नानासमोशांममकां नहि; तेथो हे देव ! श्यागरी आ मंगण
शब्द हे मने नगाय ॥ २० ॥

संज्ञकान्मियानपार्थ, श्यागानिजन्मन्गपिनोकारिण्य
संज्ञकान्मियानपार्थ, नृत्तान्मियापिजन्मन्गपिनोकारिण्य ॥२१॥

शब्दार्थ-मं पुत्रिणना पणय कर्मो नरी, श्याक नांवेति
पण कर्मो नहि, तेथो हे देव ! श्यागरी आ मंगण
नर. नृत्तान्मियानपार्थ कर्मो नरी, श्याक नांवेति

किंवा मुधाहं बहुधा मुधाञ्जुक्. पूज्यत्वदप्रेचरितं स्वकीयं ॥
जल्पामियस्मात्त्रिजगत्स्वरूप-निरूपकस्त्वं कियदेतदत्र ॥

शब्दार्थ-हं अमृतमोजी ! हुं तमारी आगल फोगट म्हा
रुं चरित्र वधारे हुं कहुं ? कारण के, हे पूज्य ! तमे त्रण-जगत्
नां स्वरूपने निरूपण करानारा ओ, तो पत्नी आ म्हारुं कहेवुं
कोण मात्र ठे ॥ २४ ॥

दीनोद्धारधुरंधरस्त्वदपरो नास्ते मदन्यः कृपा-
पात्रं नात्र जने जिनेश्वर तथाप्येतां न याचे श्रीयम् ॥
किंत्वर्हन्निदमेव केवलमहो सद्बोधिरत्नं शिवः,
श्रोरत्नाकरमंगलैकनिलयश्रेयस्करं प्रार्थये ॥२५॥

शब्दार्थ-हं जिनेश्वर तमारा विना वोजो कोइ दीन मा
णतोनो उद्धार करवाने समर्थ नथो तेमज लोकमां म्हारा वि
ना वोजो कोइ दया करवा योग्य पात्र नथो, तो पण हुं ते ल
क्ष्मीने भागतो नथी; परंतु हे अरिहंत ! हे मोक्षलक्ष्मीना समु
द ! हे मंगलना एक स्थान हुं फक्त कल्याणकारी एवां अने मो
क्षनुं हेतु एवां उत्तम बोधीधीजरूप रत्ननी याचना करुं वुं. २५

॥ इति रत्नाकर पञ्चीशी ॥

(१७२)

॥ अथ समाधि शतक ॥

येनात्माबुध्यतात्मैव, परत्वेनैव चापरम् ॥

अक्षयानंतबोधाय, तस्मै सिद्धात्मने नमः ॥१॥

शब्दार्थ—जेमणे आत्माने आत्मारूपे जाण्यो वे अने आत्माना जेद पणाए करीने शरीरने जाण्युं वे ते अक्षय अने अंत त बोधवाला सिद्ध जगवानने नमस्कार थाळ. ॥ १ ॥

जयंति यस्यावदतोऽपि जारतो—

विज्रूतयस्तीर्थकृतोऽप्यनीहितुः ॥

शिवाय धात्रे सुगताय विष्णावे,

जिनाय तस्मै सकलात्मने नमः ॥ २ ॥

शब्दार्थ—तीर्थंकर ठता पण वांच्छा रहित अने ताड्वादि कथी अक्षरोने नहि उच्चारता एवाय पण जे प्रज्जुनो वाणोनी संपत्तियो (अथवा वाणी अने ठत्र चामरादि संपत्तियो) जयवं ती वतें वे. ते मोक्ष पामेला, ऋष्यादिद्वारा लोकोने उद्धार कर नारा, उत्तम ज्ञानवाला, केवल ज्ञानथी सर्व लोकना व्यापक एया, अनेक प्रकारनां जवजुःखने आपनारां कर्मने जीतनारा, ते मज आत्मरूपे रहेला ते प्रज्जुने नमस्कार थाळ ॥ २ ॥

श्रुतेन लिंगेन यथात्मशक्ति,

समाहितातःकरणेन सम्यक्

समीड्य कैवल्यसुखस्पृहाणां.

विचिक्तभात्मानमयान्निधास्ये ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—हुं म्दारी शक्ति प्रमाणे शास्त्रथी, हेतुथी अने नि भ्रल एवा अंतःकरणथी उन्नमगीते अनुभव कराने पगी सर्व क

(१७३)

मना रहित पणाने विषे (मोक्षने विषे) सुखनो इच्छा करनारा
उनुं कर्ममलरहित जीवस्वरूप कहीश ॥ ३ ॥

वहिरंतःपरश्चेति, त्रिधात्मा सर्वदेहिषु ॥

उपेयात्तत्र परमं, मध्योपायाद्वह्निस्त्यजेत् ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—सर्वे प्राणीयोमां वहिरात्मा, अंतरात्मा अने पर
मात्मा एम त्रण प्रकारना आत्मा ठे. तेमां मध्य अंतरात्माना
उपायथी परमात्माने पामवुं तथा वहिरात्माने त्यजी देवां ॥४॥

वहिरात्मा शरीरादौ, जातात्मन्नांतरांतरः ॥

चित्तदोषात्मविज्ञातिः परमात्मातिनिर्मलः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—शरीर, वाणी, मन इत्यादिकने विषे आत्मा एवी
जेनी ज्ञाति थाय ते वहिरात्मा जाणवो. चित्त, दोष अने आत्मा
तेमने विषे जेनी ज्ञाति नाश पामे अर्थात् चित्तने चित्तपणाथी,
दोषो ने दोषपणाथी अने आत्माने आत्मापणाथी जाणे ते अंतरा
त्मा जाणवो अने जेना सर्व कर्ममल क्षय थइ गया होय ते
परमात्मा जाणवो. ॥ ५ ॥

निर्मलः केवलः शुद्धो, विविक्तः प्रचुरव्ययः ॥

परमेष्ठी परात्मेति, परमात्मेश्वरो जिनः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—कर्मना मलरहित, शरीरादि संबंध रहित, इव्य
जाय कर्मना अज्ञायथी अत्यंत शुद्ध, शरीर अने कर्मथी न एपर्ण
थंपलो, इंद्रादिकनो स्वामी, नहि चवे तेवो, इंद्रादि देवोंने वांदवा
योग्य पदने विषे रहेलो, संसारी जीवोथी उत्कृष्ट. निरंतर उन्नम
ऐश्वर्ययुक्त अने सर्व कर्मने उखेडी नाखनारो जे होय ते
परमात्मा जाणवो ॥ ६ ॥

वहिरात्मेन्द्रियद्वारै—रात्मज्ञानपरादुर्गवः ॥

स्फुरितस्वात्मनो देहमात्मत्वेनाध्यवस्यति ॥७॥

शब्दार्थ—इन्द्रिय द्वारे करीने व्धारना अर्थने प्रदण करतो वहिरात्मा आत्मज्ञानथी अवला मुखवालो होय ठे; तेथी ते व हिरात्मा प्रगट पोताना देहने आत्मारूपज जाणे ठे. ॥ ७ ॥

नरदेहस्थमात्मानमविघ्नान्मन्यते नरम् ॥

तिर्यचं तिर्यगङ्गस्थं, सुराङ्गस्थं सुरं तथा ॥८॥

शब्दार्थ—वहिरात्मा मनुष्य देहमां रहेला आत्माने मनुष्य, तिर्यचना शरीरमां रहेला आत्माने तिर्यच, तेमज देवतानां शरीरमां रहेला आत्माने देवता माने ठे. ॥ ८ ॥

नारकं नारकांगस्थं, न स्वयं तत्त्वतस्तथा ॥

अनंतानंतधीशक्तिः, स्वसंवेद्योऽचलस्थितिः ॥९॥

शब्दार्थ—बली नारकीना शरीरमां रहेला आत्माने नारकी माने ठे, परंतु तत्त्वथी तेवी रीते पोताने जाणतो नथी. परमात्मा पोते तो अनंत अनंत बुद्धि अने शक्तिवालो, पोतानेज जाणवा योग्य अने अचल स्थितिवालो ठे. ॥ ९ ॥

स्वदेहसदृशं हृद्गा, पद्मेदहमचेतनम् ॥

पद्ममाधिष्ठितं मूढः, पद्मेनाध्यवस्यति ॥१०॥

शब्दार्थ—परमान्माण कर्मना वडयथी अंगीकार करेला अने अचेतन एवा पद्मेदहने पोताना देह सग्या जोड मूढ एवो बहि गन्मा ते पद्मेदहने परमात्मपणाए अंगीकार करे ठे. ॥ १० ॥

न्यपगध्ययमायन, देहप्यविदितात्मनाम् ॥

यनेने विद्वमः पुमां, पुत्रनार्यादिगोचरः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ—आत्मन्यस्य न जाणनाग पुरुषांने देहने विद्वत्ताना अने पद्मा अध्ययमायकी पुत्र स्त्री विगोरेने गोचर ए दो विद्वम आय ठे. अर्थान् अनात्मरूप अने अपकार करणाग

(१९५)

एवाय पण स्त्री पुत्रादिकने अने धन धान्यादिकने पोतानो उप
कार करनारा जाणे ठे वली तेमना लाजने विपे संतोष अने
अलाजने विपे परिताप तथा आत्मवध पण करे ठे. ॥ ११ ॥

अविद्यासंज्ञितस्तस्मात्संस्कारो जायते दृढः ॥

येन लोकोद्भूमेयं स्वं, पुनरप्यज्जिमन्यते ॥ १२ ॥

शब्दार्थ—ते विघ्नम थकी अविद्या नामवालो अविचल सं
स्कार घाय ठे के, जे संस्कार करीने अविचेकी लोक जन्मांतर
ने विपे पण पोतानां शरीरनेज आत्मा माने ठे. ॥ १२ ॥

देहे स्वबुद्धिरात्मानं, युनक्तयेतेन निश्चयात् ॥

स्वात्मन्येवात्मधीस्तस्माद्वियोजयति देहिनम् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ—शरीरने विपे आत्मबुद्धि करनारो बहिरात्मा परमा
र्थशी ए देहे करीने आत्माने जोमो देठे, अर्थात् दीर्घ संसारो क
रवे अने पोताना आत्माने विपे आत्मबुद्धि करनारो अंतरात्मा ते
शरीरादिशी आत्माने वियोग करावे ठे, अर्थात् मुक्ति पमादेठे.

देहेष्व्वात्मधिया जाताः, पुत्रचार्यादिकल्पनाः ॥

संपत्तिभात्मनस्ताज्जिर्मन्यते हा हतं जगत् ॥ १४ ॥

शब्दार्थ—देहने विपे आत्मबुद्धि करवाथी पुत्र चार्यादि क
ल्पना अश ठे अने ते अनात्मिय कल्पनाथी पुत्र चार्यादिने आत्मा
नो संपत्ति माने ठे. हाय हाय ! एज कारणे पोतानां स्वरूपना
ज्ञानथी नृष्ट अथेलुं जगत् नाश पाम्युं ठे, अर्थात् बहिरात्मा
रूप बन्युं ठे. ॥ १४ ॥

मूलं संसारदुःखस्य, देह एवात्मधीस्ततः ॥

त्यक्तवैनां प्रविशेदंतर्बहिरव्यावृत्तैश्चियः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ—शरीर एज आत्मा एवी जे बुद्धि तेज संसारना

शब्दार्थ—आत्मस्वरूपबडे करीने विषयथी निवृत्ति पामीने
आत्मस्वरूपने विषे रईला म्हारा ज्ञानस्वरूप अने उन्नम आ
नंदथी सुखी एवा आत्माने हुं प्राप्त थयेलो वुं. ॥ ३२ ॥

यो न वेत्ति परं देहा-देवमात्मानमव्ययम् ॥

लज्जते न स निर्वाणं, तप्त्वापि परमं तपः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ—जे पुरुष, प्राप्त थयेला देहथी पर अने अव्यय एवा
आत्माने कहेली रीते नथो जाणतो, ते उत्कृष्ट एवां तपने करतो
वतो मोक्षपद पामतो नथी. ॥ ३३ ॥

आत्मदेहांतरज्ञान-जनिताह्लादनिर्वृतः ॥

तपसा दुष्कृतं घोरं, चञ्जानोऽपि न खिद्यते ॥३४॥

शब्दार्थ—आत्मा अने देहना जेदज्ञानथी उत्पन्न थयेला
हपें करीने सुखी थयो वतां वार प्रकारनां तपथो घोरं पापने
जोगवतो एवां पण माणस खेद पामतो नथी. ॥ ३४ ॥

रागद्वेषादिकद्बोलैरलोलं यन्मनोजलम् ॥

स पश्यात्यात्मनस्तत्त्वं, स तत्त्वं नेतरो जनः ॥३५॥

शब्दार्थ—रागद्वेषादि कद्बोलथी जेनुं मन रूप जल मोलाइ ग
थुं नथो, ते आत्मतत्त्वने जूए ठे. वली ते जोनारो पोतेज पर
मात्मरूप ठे. बीजो परमात्म रूप नथो. ॥ ३५ ॥

अविद्धिप्तं मनस्तत्त्वं, विद्धिप्तं चांतिरात्मनः ॥

धारयेतदविद्धिप्तं, विद्धिप्तं नाश्रयेत्ततः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ—रागादिकथी अपरिणामित एवुं आत्मानुं वास्त
विक स्वरूप ठे अने तेनाथी जे उलटुं ते आत्मानो चांति आ
त्मरूप रहित ठे. ते कारण माटे रागादिकथी अपरिणामित एवा
मनने धारण करवुं, परंतु रागादिकना विकारवाला मननो आ
श्रय करवो नहि. ॥ ३६ ॥

(३०१)

अविद्याभ्याससंस्कारैरवशं क्षिप्यते मनः ॥

तदेव ज्ञानसंस्कारैः, स्वतस्तत्त्वेऽवतिष्ठते ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ—शरीरने विवेक पवित्र अने स्थिर एवं आत्मा तथा आत्मिय विगरे जे ज्ञान ते अविद्या, ते अविद्याना अन्त्या तयो उत्पन्न अयेलो बान्नाये करीने अवश (वियपने अने अन्वियो ने आविन तथा आत्माने आविन नहि) एवं मन घाय ठे, तेज म न ज्ञानसंस्कारे करीने आत्मस्वरूपने विपे रहे ठे ॥ ३७ ॥

अपमानादयस्तस्य, विद्वेषो यस्य चेतमः ॥

नापमानादयस्तस्य, न द्वेषो यस्य चेतमः ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ—जेनां चित्तने रागादि परिणाम ठे तेने अपमाना दि होय ठे अने जेना चित्तने रागादि परिणाम नथी तेने अपमानादि पण नथी ॥ ३८ ॥

यदा मोहात्प्रजायेते, रागद्वेषौ तपस्विनः ॥

तदेव जावयेत् स्वस्थमान्मानं शाम्प्यतः क्षणान् ३९

शब्दार्थ—ज्यार तपस्विने मोहनीय कर्मना उदयधौ रागद्वेष उत्पन्न घायठे त्यारे तेठ क्षणमात्रमां रागद्वेषने शांति पन्नाट ना ठना पोतानां स्वरूपमां रदेला आत्माने जाये ठे ॥ ३९ ॥

यत्र काये मुनेः प्रेम, ततः प्राच्यव्य दैहिनम् ॥

बुद्ध्या तदुत्तमे काये, योजयेन्नेम नश्यति ॥ ४० ॥

शब्दार्थ—मुनिने जे पोताना अथवा पन्ना इतरेने दिने स्नेह घायठे ते इतरेधो बुद्धिने आत्माने पाणे परदेने तेधो पण उत्तम एवा चिदानंदमय आत्म स्वरूपने दिने जोटे ठेइ, जेधो रापा उत्तर स्नेह धतो नथी ॥ ४० ॥

आत्मविद्धमजं दुःखं—मान्ज्ञानात्प्रशाम्प्यति ॥

नापमानात्प्र निर्वान्ति, कृत्यापि पन्न नर ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ—शरीरादिकमां आत्मा एवा विन्नमयी थयेलुं दुःख
आत्मज्ञानथी नाश पामे ठे. वली आत्मस्वरूपमां असाववान
एवा पुरुषो उक्कष्ट एवं तप करीने पण मोक्ष पामता नथी. ४१

शुचं शरीरं दिव्यांश्च, विषयानन्निवांठति ॥

उत्पन्नात्ममतिर्देहे, तत्त्वज्ञानी ततश्च्युतिम् ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ—शरीरने विषे उत्पन्न थयेली आत्म बुद्धिवालो अ
थात् वहिरात्मा पुरुष शुच एवा शरीरने अने दिव्य एवा विष
योने इच्छे ठे. तथा तत्त्वज्ञानी पुरुष शरीरनी निवृत्तिने इच्छे ठे.

परत्राहंमतिः स्वस्माच्च्युतो बध्नात्यसंशयम् ॥

स्वस्मिन्नहंमतिश्च्युत्वा, परस्मान्मुच्यते बुधः ॥४३॥

शब्दार्थ—शरीरने विषे आत्मबुद्धिवालो वहिरात्मा आत्म
स्वरूपथो ब्रष्ट थरने खरेखर बंधन पामे ठे अने आत्मस्वरूपने
विषे आत्मबुद्धिवालो अंतरात्मा शरीरादिकथी जूदो थरने
मुक्ति पामे ठे. ॥ ४३ ॥

दृश्यमानमिदं मूढस्त्रिलिंगमवबुध्यते ॥

इदमित्यवबुधस्तु, निष्पन्नं शब्दवर्जितम् ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ—वहिरात्मा आ देखाता पुरुष, स्त्री अने नपुंसक
रूप अण लिंगने त्रिलिंगरूप माने ठे अने अंतरात्मा अनादिति
अने विकल्पादिके वर्जित एवा आत्मतत्त्वनेज माने ठे. ॥४४॥

जानन्नप्यात्मनस्तत्त्वं, विविक्तं ज्ञावयन्नपि ॥

पूर्वविन्नमसंस्कारान्नांतिं नूयोऽपि गच्छति ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ—अंतरात्मा आत्मतत्त्वने जाणतो गतो तथा शरीरा
दिकथी जूडुं मानतो गतो पण पूर्व विन्नमना संस्कारथी करीने
पण न्नांति पामे ठे. ॥४५॥

अचेतनमिदं दृश्य-मदृश्यं चेतनं ततः ॥

क रूप्यामि क तुप्यामि, मध्यस्थोऽहं ज्ञवाम्पतः ४६

शब्दार्थ-आ देखातुं एवं शरीरादि जड ठे अने न देखातुं एवं आत्मस्वरूप चैतन्यरूप ठे, माटे हुं कोना उपर क्रोध अने को ना उपर संतोष कहं. तेथो इवे हुं मध्यस्थरूप घातुं हुं. ४६

त्यागादाने बहिर्मूढः, करोत्यध्यात्ममात्मवित् ॥

नांतर्बहिरुपादानं. न त्यागो निष्ठितात्मनः ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ-बहिरात्मा बाह्यवस्तुने विषे त्याग अने अज्ञिलाप करे ठे. अंतरात्मा आत्मस्वरूपने विषे त्याग अने अज्ञिलाप करे ठे, परंतु कृत कृत्य एवा परमात्माने तो अंतरात्माने विषे अज्ञिलाप अने बहिवस्तुने विषे त्याग एमानुं कांड नथी. ॥ ४७ ॥

युंजीत मनसात्मानं, वाक्कायान्यां वियोजयेत् ॥

मनसा व्यवहारं तु. त्यजेद्वाक्काययोजितम् ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ-भानसिक ज्ञानथी आत्मानुं ध्यान करवुं, पल वाणी अने कायाथी आत्माने जूदो करवो. बली मननां माघे वा णी अने कायाथी जोडाएला व्यवहारने मने करीने त्यजी देवो.

जगद्देहात्मदृष्टीनां, विश्वास्यं रम्यमेव च ॥

म्व्वात्मन्येवात्मदृष्टीनां, क विश्वासः क वा रतिः ४९

शब्दार्थ-शरीरने विषे आत्मदृष्टिवाला अर्थात् बहिरात्माने जगत विश्वास करवा योग्य अने मनोहर लागे ठे, परंतु आत्माने विषे आत्मदृष्टिवाला अर्थात् अंतरात्माने क्यां विश्वास अने क्यां रति होय ठे? अर्थात् तेने पुत्रादिकने विषे विश्वास अथ वा प्रीति होतो नथी. ॥ ४९ ॥

आत्मज्ञानात्परं कार्यं, न बुद्धी धारयेद्दिग्म् ॥

कुर्यादर्थवशात्किंचिद्वाक्कायान्यामतत्परः ॥ ५० ॥

शब्दार्थ—आत्मज्ञान विना वीजुं कार्य बहु वखत मनमां धारुं नहि अने तेवुं जोजन व्याख्यानादिक कार्य करवुं पडे तो ते आसक्ति रहित अने फक्त पोताना अने परना उपकारना वशप्रोज करवुं. ॥ ५० ॥

यत्पश्यामोन्जियेस्तन्मे. नास्ति यन्नियतेन्जियः ॥

अंतःपश्यामि सानंदं, तदस्य ज्योतिरुत्तमम् ॥५१॥

शब्दार्थ—हुं इंद्रियोवने जे शरीरादिक जोउं वुं, ते म्हारुं रूप नथो, परंतु इंद्रियोने स्वाधिन करीने हुं म्हारी अंदर उत्तम सुखरूप अने इंद्रियोने अगोचर एवुं जे ज्ञान जोउं वुं, ते म्हारुं स्वरूप ठे. ॥५१॥

सुखमारब्धयोगस्य, वहिर्दुःखमथात्मनि ॥

वह्निरेवामुखं सौख्य-मध्यात्मं ज्ञावितात्मनः ॥५२॥

शब्दार्थ—आत्मस्वरूप जाणवामां उद्यमवंत अयेलाने बाह्य विषयमां सुख आय ठे तथा आत्मविषयमां दुःख आय ठे अने यथार्थ आत्मस्वरूप जाणेलां बाह्यविषयमां दुःख तथा आत्मविषयमां सुख आय ठे. ॥५२॥

तद्भूयात्तत्परान्पृच्छे—तदिच्छेत्तत्परो ज्ञेत् ॥

येनाविद्यामयं रूपं, त्यक्त्वा विद्यामयं ब्रजेत् ॥५३॥

शब्दार्थ—ते आत्मस्वरूप पोते कहेवुं, वीजाने पूठवुं, ते आत्मस्वरूपनेज इच्छवुं अने तेमां तत्पर अंके, जेथी वहिरात्मरूप त्यजो दड आत्मस्वरूपने पमाय. ॥५३॥

शरीरे वाचि चात्मानं, संधत्ते वाक्शरीरयोः ॥

चान्तोऽचान्तः पुनस्तत्त्वं, पृथगेपां निबुध्यते ॥५४॥

शब्दार्थ—वाणी अने शरीरने विषे चान्ति पामेलो वहिरा

त्मा पोताने शरीरमां अने वाणीमां आरोपण करे ठे. वली यथार्थ ते स्वरूपने जाणनारो अंतरात्मा वाणीनां, शरीरनां अने आत्मानां स्वरूपने जूदा जूदा जाणे ठे. ॥ ५४ ॥

न तदस्तीर्द्धियार्थेषु, यत्क्षेमंकरमात्मनः ॥

तथापि रमते बाल-स्तत्रैवाज्ञानज्ञावनात् ॥५५॥

शब्दार्थ-इंद्रियार्थने विषे तेवुं कांइ नथी के, जे आत्मानुं कुशल करनार धाय. तो पण अज्ञानी बहिरात्मा ते इंद्रियोना अर्थने विषे मिथ्यात्वना संस्काराथी रमे ठे. ॥ ५५ ॥

चिरं प्रसुप्तास्तमसि, मूढात्मानः कुयोनिषु ॥

अनात्मोयात्मज्ञूतेषु. ममाहमिति जाग्रति ॥५६॥

शब्दार्थ-अनादि मिथ्यात्व संस्कार होवाने लीधे चोराशी लाख कुयोनिमां दीर्घकालथी सूतेला बहिरात्मा परमार्थथी पोताना संबधी नदि एवा पुत्र स्त्री विगेरेने विषे ' हुं अने म्हारुं ' एम केहेता ठता जागे ठे. ॥ ५६ ॥

पश्येन्निरंतरं देहमात्मनोऽनात्मचेतसा ॥

अपरात्मधियाऽन्येषामात्मतत्त्वे व्यवस्थितः ॥५७॥

शब्दार्थ-आत्मतत्त्वने विषे रहेलो अंतरात्मा पोतानां शरीरने अनात्मबुद्धियो (आ आत्मा नथी एवा विचारथो) निरंतर जूए ठे तेमज बीजाठने आ परमात्मा नथी ए एवी बुद्धियो जूए ठे.

अज्ञापितं न जानंति. यथा मां ज्ञापितं तथा ॥

मूढात्मानस्ततस्तेषां, वृथा मे ज्ञापनाश्रमः ॥ ५८ ॥

शब्दार्थ-मूढात्मा जेम आत्मस्वरूप न समजाव्या ठता नथी जाणतो तेमज समजाव्या ठता पण नथी जाणतो, तेथी ते मूढात्माने म्हारे समजाववानो श्रमज फोगट ठे. ॥५८॥

यद्बोधयितुमिच्छामि, तत्राहं यदहं पुनः ॥

ग्राहं तदपि नान्यस्य, तत्किमन्यस्य बोधये ॥५९॥

शब्दार्थ—जे विकल्पमां व्याप्त थइ रहेला आत्मस्वरूपने भ्र
पवा देहादिकने समजाववानी इच्छा करुं वुं. ते हुं पोते परमार्थशी
आत्मस्वरूप नथी अने वली जे हुं चिदात्मरूप वुं ते बीजाने प्रा
ह्यमां आबुं तेम नथी. तो पगी हुं बीजाने शा माटे आत्म त
त्वनो बोध करुं? ॥ ५९ ॥

बहिस्तुव्यति मूढात्मा, पिहितज्योतिरंतरे ॥

तुष्यन्पन्तः प्रबुद्धात्मा, बहिर्व्यावृत्तकोतुकः ॥६०॥

शब्दार्थ—अंदरना तत्व विषयने विषे मोहधी ठंकाइ गपेला
ज्ञानवालो बहिरारमा शरीरादि बाह्य अर्थने विषे प्रसन्न थाय ठे
अने शरीरादिकने विषे प्रीति रक्षित एवो अंतरारमा पोतानां स
रूपने विषे प्रसन्न थाय ठे. ॥६०॥

न जानति शरीराणि, सुखदुःखान्यबुद्धयः ॥

निप्रदानुप्रदधिपं, तथाप्यत्रैव कुर्वते ॥ ६१ ॥

शब्दार्थ—शरीरे सुख दुःखने जाणतां नथी, तो पण बहिरा
रमा एत शरीरादिकने विषे उपवासमादि कर्याची निप्रद कर्यानी
अने कुंडल कर्मा विंगरथी शरणारवायठे अनुप्रद कर्यानी मुदि
करे ठे. ॥ ६१ ॥

स्ववृद्ध्या यावद्दृग्गीषान्, कायवाक्येनगां व्रपम् ॥

संसारमनावर्तेषां, नैदान्यामे नु नियुक्तिः ॥ ६२ ॥

शब्दार्थ—ग्यांमूर्ती शरीर, वाणी अने चित्त ए प्रणने आत्म
वृद्धी प्रद करे ग्यांमूर्ती संसार थाय ठे अने ते प्रणनां नै
दान्यामे अने एतने मुक्ति थाय ठे. ॥६२॥

घने वस्त्रे यथात्मानं, न घनं मन्यते तथा ॥

घने स्वदेहेऽप्यात्मानं न घनं मन्यते बुधः ॥ ६३ ॥

शब्दार्थ—ज्ञानी पुरुष जेम मजबुत वस्त्र पहरेवाथी पोताने मजबुत मानतो नथी तेम शरीर पण मजबुत होय तोपण आत्माने मजबुत मानतो नथी. ॥६३॥

जीर्णं वस्त्रे यथात्मानं, न जीर्णं मन्यते तथा ॥

जीर्णं स्वदेहेऽप्यात्मानं, न जीर्णं मन्यते बुधः ॥६४॥

शब्दार्थ—ज्ञानीपुरुष जेम जीर्ण वस्त्र पहरेवाथी पोताने जीर्ण मानतो नथी तेम जीर्ण शरीर ठतां आत्माने जीर्ण मानतो नथी.

नष्टे वस्त्रे यथात्मानं, न नष्टं मन्यते तथा ॥

नष्टे स्वदेहेऽप्यात्मानं, न नष्टं मन्यते बुधः ॥६५॥

शब्दार्थ—ज्ञानीपुरुष जेम वस्त्र फाटी जवाथी पोताने नाश पामेलो जाणतो नथी तेम देह नाश पाम्या ठतां आत्माने नाश पामेलो मानतो नथी. ॥ ६५ ॥

रक्ते वस्त्रे यथात्मानं, न रक्तं मन्यते तथा ॥

रक्ते स्वदेहेऽप्यात्मानं, न रक्तं मन्यते बुधः ॥६६॥

शब्दार्थ—ज्ञानी पुरुष जेम वस्त्र रक्त ठतां पोताने रक्त मानतो नथी तेम पोतानो देह रक्त ठतां आत्माने रक्त मानतो नथी. ॥ ६६ ॥

यस्य सस्पंदमाज्ञाति, निस्पंदेन समं जगत् ॥

अप्रज्ञमक्रियाज्ञोगं, स कामं याति नेतरः ॥६७॥

शब्दार्थ—जेने चंचल एवं आ जगत् जड, तेमज पदार्थतुं ज्ञान अने सुखादिकनो अनुभव न होवाने लीधे काष्ट अने पापण तुल्य जणाय ठे, ते शांतिने पामे ठे. बीजो पामतो नथी.

शरीरकंचुकेनात्मा, संवृतज्ञानविग्रहः ॥

नात्मानं बुद्ध्यते तस्मान्नमत्यतिचिरं ज्वे ॥ ६८ ॥

अर्थ-शरीर रूप कंचुकायी ठंकाइ गयो ठे ज्ञानरूपो ह जेनो एवो बहिरात्मा पोताने जाणो शकतो नयी, तेथी ते संसारमां बहु कालथी जटके ठे ॥ ६८ ॥

प्रविशज्जलनां व्यूहे, देहेऽणूनां समाकृतौ ॥

स्थितिज्ञान्या प्रपद्यते, तमात्मानमब्रुव्यः ॥६९॥

अर्थ-पेगतां अने निकलतां एवा परमाणुनां समूहस्य अने समानाकाराना बहने विषे स्थितिनी व्रांतिथी बहिरात्मा ते एते आत्मा माने ठे ॥ ६९ ॥

गौरः स्यूतः कुशो वाहमिन्पङ्कनाविशंपयन ॥

आत्मानं धारयन्निभं, केवलज्ञप्रियफलम् ॥७०॥

अर्थ-कुं गौरो कुं जासो कुं अथवा पातलो कुं, एम प्रीय ते स्यात् एतमह न कर्तो वतो फल जाणवणास्य शरीरात् ए आत्मानं विषय धारण करे ठे ॥ ७० ॥

सृष्टिकर्तृत्वान्निर्वाणस्य, विने यस्यानद्या भूतिः ॥

स्यैवैकान्तिकी मुक्तिर्यस्य नाम्यनद्या भूतिः ॥७१॥

अर्थ-जेना विनया अविचय आत्मस्वरूपनु धारण क रवणनु ठे तेन सारस्य सृष्टि प्राण प्राय ठे अने जेना विनया अविचय आत्मस्वरूपनु धारण करवा पणुं नथी तेन सारस्य सृष्टि प्राण प्राय नथी ॥ ७१ ॥

जनेनो वाङ्मन स्यैव, मनसाधिप्रविचमाः ॥

वृत्तिरस्यैवसुते जनेयोगी ननस्यजेन ॥७२॥

अर्थ-वाङ्मनस्यैव मनसाधिप्रविचमाः ननस्यजेन ॥७२॥

(१०९)

घन प्रवृत्तिथी मननी व्यग्रता धाय ठे अने तेथी नाना प्रकारना विकल्पो धाय ठे. माटे योगी पुरुषोपे माणसोनी साथे समाग म त्यजी देवो. ॥ ७१ ॥

ग्रामोऽराण्यमिति वेधा, निवासोऽनात्मदर्शिनान् ॥

दृष्टात्मनां निवासस्तु, विविक्तात्मैव निश्चलः ॥ ७३ ॥

शब्दार्थ—आत्मस्वरूपने न पामेलाने गाम अने अरण्य एम वे प्रकारे निवास स्थान ठे. तथा आत्मस्वरूपने पामेलाने व्याकुलता रहित एवो शुद्ध आत्माज निवास स्थान ठे. ॥७३॥

देहांतरगतेर्बीजं, देहेऽस्मिन्नात्मज्ञावना ॥

बीजं विदेहनिष्पतेरात्मन्येवात्मज्ञावना ॥७४॥

शब्दार्थ—आ देहने विपे आत्मज्ञावना करवी एज बीजा ज वनी प्राप्तिनुं कारण ठे अने आत्माने विपे आत्मज्ञावना करवी एज मोक्ष प्राप्तिनुं बीज ठे. ॥७४॥

नयत्यात्मानमात्मैव, जन्मनिर्वाणमेववा ॥

गुरुरात्मात्मनस्तस्मान्नान्योऽस्ति परमार्थतः ॥७५॥

शब्दार्थ—आत्मा आ देहादिकने विपे आत्मज्ञावना वश्यथी पोताने संसारमां जटकावे ठे अने आत्माने विपे आत्मज्ञावनाना वश्यथी पोताने मोक्ष प्रत्ये पमामे ठे, माटे परमार्थथी आत्मानो गुरु तो आत्माज ठे. बीजो कोइ नथी. ॥७५॥

दृढात्मबुद्धिर्देहादाबुत्पश्यन्नाशमात्मनः ॥

मित्रादित्रिवियोगं च, विज्ञेति मरणान्निशम् ॥७६॥

शब्दार्थ—देहादिकने विपे दृढ एवी आत्मबुद्धिवालो बहिरात्मा पोताना मरणने जोतो ठतो अने मित्रादिकना वियोगने जाणतो ठतो मृत्युथी बहु ज्ञय पामे ठे ॥७६॥

आत्मन्येवात्मधीरन्या, शरीरगतिमात्मनः ॥

मन्यते निर्जनं त्यक्त्वा, वस्त्रं वस्त्रांतरग्रहम् ॥७७॥

शब्दार्थ—एक वस्त्रने त्यजी दइ वीजा वस्त्रने ग्रहणं करवा नी पेठे आत्माने विषे आत्मबुद्धिवालो अंतरात्मा ज्ञय रहितपणे शरीरनी परिणतिने (वाड्यादि अवस्थाने) पोताथी जूदो माने ठे. अर्थात् शरीरनी उत्पत्ति अने नाशना अवसरे पोतानी उत्पत्ति अने नाश नथी मानतो. ॥७७॥

व्यवहारे सुषुप्तो यः, स जागत्यात्मगोचरे ॥

जागर्ति व्यवहारेऽस्मिन्सुषुप्तश्चात्मगोचरे ॥ ७८ ॥

शब्दार्थ—प्रवृत्ति निवृत्तिरूप व्यवहारमां जे सूतेलो (अतत्पर) ठे ते आत्मविषयमां जागतो (तत्पर) ठे अने जे प्रवृत्ति निवृत्ति रूप व्यवहारमां जागतो (तत्पर) ठे ते आत्मविषयमां सूतेले (अतत्पर) ठे. ॥ ७८ ॥

आत्मानमंतरे दृष्ट्वा, दृष्ट्वा देहादिकं वहिः ॥

तपोरंतरविज्ञानादन्यासादच्युतो भवेत् ॥ ७९ ॥

शब्दार्थ—आत्माने अंदर जोइ अने शरीरादिकने व्हार जे अने ते वनेना जेद ज्ञाननी जावनाथी मुक्त अवाय ठे. ॥७९॥

पुं दृष्टात्मतत्त्वस्य, विज्ञात्पुन्मत्तवङ्गत् ॥

स्वन्यस्तात्मधियः पश्चात्काष्ठपापाणरूपवत् ॥८०॥

शब्दार्थ—प्रथम आत्मतत्त्वने जोनारा अर्थात् योगारंजी पु अने आ जगत् उन्मत्त समान देखायठे अने पठी आत्मतत्त्वने मारी गते अन्यास करनाराने काष्ठ अने पापाण समुं देखाय ठे.

शृण्वन्नप्यन्यतः कामं, वदन्नपि कलेवगतं ॥

आत्मानं ज्ञायंपन्निरं, पावनायन्न मोक्षजाकं ॥८१॥

(१११)

शब्दार्थ—बीजा पासेधी अत्यंत सांजलतो अने पोते बीजा ने केहेलो वतो पण ज्यांसुधी शरीरथो आत्माने जूदो जावतो नथो त्यांसुधी मोक्षनुं पात्र थतो नथी. ॥७१॥

तथैव जावयेद्देहाद्—व्यावृत्त्यात्मानमात्मनि ॥

यथा न पुनरात्मानं, देहे स्वप्नेऽपि योजयेत् ॥७२॥

शब्दार्थ—देहधी जूदो करीने आत्माने आत्माने विषे तेवी रीते जाववो के, जेथी ते फरीथी स्वप्नामां देहने आत्मरूप न माने.

अपुण्यमव्रतैः पुण्यं, व्रतैर्मोक्षस्तयोर्व्ययः ॥

अव्रतानीव मोक्षार्थी, व्रतान्यपि ततस्त्यजेत् ७३

शब्दार्थ—हिंसादिक विकल्पोधी पाप अने अहिंसादिक वि कल्पोधी पुण्य थाय ठे. तथा ते वब्रेनो त्याग करवाधी मोक्ष थाय ठे, तो मोक्षना अर्थीये हिंसादिकनी पेटे पुण्यादिकने त्यजी देवा.

अव्रतानि परित्यज्य, व्रतेषु परिनिष्ठितः ॥

त्यजेत्तान्यपि संप्राप्य, परमं पदमात्मनः ॥७४॥

शब्दार्थ—प्रथम हिंसादि अव्रताने त्यजी दइ पुण्यादि व्रतने विषे सावधान थाय अने पठी आत्माना परम पदने पामीने अ र्थात् वीतरागपणुं पामीने ते पुण्यादि व्रतने पण त्यजी दे. ७४

यदन्तरजल्पसंपृक्तमुत्प्रेक्षाजालमात्मनः ॥

मूलं दुःखस्य तन्नाशे, शिष्टमिष्टं परं पदम् ॥७५॥

शब्दार्थ—जे अंतर वचनना व्यापारे सहित एवी चिंतारूप जाल तेज आत्माने दुःखनुं मूल ठे. माटे ते जालनो नाश थये इष्ट एवुं परमपद प्राप्त थाय ठे. ॥

अव्रती व्रतमादाय, व्रती ज्ञानपरायणः ॥

परात्मज्ञानसंपन्नः, स्वयमेव परो ज्ञेवत् ॥ ७६ ॥

(११७)

शब्दार्थ—हिंसादि करवावालो अचती हिंसा न करवारूप
व्रत लइ अने पवी ते व्रत लेनारो व्रती ज्ञानमां तत्पर एवो थाय
वे. पवी ते उक्कष्ट एवा आत्मज्ञानमां लोन अइने पोतेज परमा
त्मा रूप थाय वे. ॥७६॥

लिंगं देहाश्रितं दृष्टं, देह एवात्मनो जवः ॥

न मुच्यंते जवात्तस्मात्ते ये लिंगकृताग्रहाः ॥७७॥

शब्दार्थ—जटाधारण अथवा नम्रपणुं ए विगेरे लिंग, देहने
आश्रिने देखाय वे अने देह एज आत्माने संसाररूप वे, माटे
जेठ लिंगने विपे आग्रह करनारा वे तेठ ते संसारथी मूकाता नथी.

जातिर्देहाश्रिता दृष्टा, देह एवात्मनो जवः ॥

न मुच्यंते जवात्तस्मात्ते ये जातिकृताग्रहाः ॥७८॥

शब्दार्थ—जाति ए पण देहने आश्रिने देखाय वे अने देह
वे ते आत्माने संसार वे, माटे जेठ जातिमां आग्रह करनारा वे
तेठ ते संसारथी मूकाता नथी. ॥७८॥

जातिलिंगविकल्पेन, येषां च समयाग्रहः ॥

तेऽपि न प्राप्नुवन्त्येव, परमं पदमात्मनः ॥ ७९ ॥

शब्दार्थ—जाति अने लिंगना जेवे करीने जेठने आगम ठ
पर आग्रह वे तेठ पण आत्माना परम पदने पामता नथीज.

यत्प्यागाय नियतं, जोगेन्यो यद्वापये ॥

प्राप्तिं तत्रैव कुर्वन्ति, द्वेषमन्यत्र मोहिनः ॥ ८० ॥

शब्दार्थ—जे शरीरना निर्ममत्वेने अर्थ पुष्पनी माया अथ
वा श्री विगेंथी निवृत्ति पामे वे अथवा उचम एवा नीतरागप
षानो प्राप्तिने अर्थ निवृत्ति पामे वे नथी ते शरीरने नियं प्राप्ति
नेने नने नीतरागपणामां विय करे वे. तेठने मोहवासा प्राणवा.

अनंतरङ्गः संधते, दृष्टिं पंगोर्यथांधके ॥

संयोगादृष्टिमंगेऽपि, संधते तद्ददात्मनः ॥९१॥

शब्दार्थ—जेम पांगलानी दृष्टि आंधलाने विषे धारण कराय ठे तेम शरीर अने आत्माने विषे अज्ञेदनो आग्रह करनारो पुरुष देह अने आत्माना संयोगाओ आत्मानो आशय देहने विषे पण धारण करे ठे. ॥ ॥ ९१ ॥

दृष्टजेदो यथा दृष्टिं, पंगोरंधे न योजयेत् ॥

तथा न योजयेद्देहे, दृष्टात्मा दृष्टिमात्मनः ॥ ९२ ॥

शब्दार्थ—पांगलानो अने आंधलानो जेद जाणनारो पुरुष जेम पांगलानी दृष्टि आंधलाने विषे न धारण करे तेम देह अने आत्मानो जेद जाणनारो अंतरात्मा पुरुष आत्मानो दृष्टि देहने विषे न धारण करे. ॥ ९२ ॥

सुप्तोत्पत्ताद्यवस्थेव, विचित्रमोऽनात्मदर्शिनाम् ॥

विचित्रमोऽक्षीणादापस्य, सर्वावस्थात्मदर्शिनः ॥९३॥

शब्दार्थ—बदिरात्मारतने सुप्तावस्थानी पेटे अने उन्मत्तादि अवस्थानी पेटे विचित्रम ठे. तथा यात्रकुमादि लक्षणवाली सर्व अवस्थाने आत्मा एम जाणारा बदिगात्मारतने विचित्रमज होय ठे.

विदिताशेषशाम्नाऽपि, न जायदपि मुच्यते ॥

देहात्मदृष्टिर्ज्ञानात्मा, सुप्तोत्पत्ताऽपि मुच्यते ॥९४॥

शब्दार्थ—बदिगात्मा सर्वे क्षाम्यने जाणायाने क्षीणे जायतो उतो पण मुक्तानी नश्री अने शीतगत्या गुण एवमुत्पन्न उतो पण मुक्ताय ठे. ॥ ९४ ॥

यत्रैवाहितधीः पुंसाः, श्रद्धा नः

यत्रैव श्रद्धा, धिनं नः ॥ १०० ॥

(११६)

तान्यात्मनि समारोप्य, साक्षाद्यास्ते सुखं जम् ॥

त्यक्त्वारोपं पुनर्विद्वान्, प्राप्नोति परमं पदम् ॥१०४॥

शब्दार्थ—जम् एवो वहिरात्मा इन्द्रियो सहित ते शरीररूप
यंत्रोने आत्माने विषे आरोपण करी “ हुं गौरुं, हुं सारां नेत्र
वालो हुं. ” एम मानीने न सुख वतां सुख माने वे अने अंत
रात्मा ते आरोपने त्यजी दइ मोक्षपदने पामे वे. ॥ १०४ ॥

मुक्त्वा परत्र परबुद्धिमंहधियं च,

संसारदुःखजननीं जननाद्धिमुक्तः ॥

ज्योतिर्मयं सुखमुपैति परात्मनिष्ठ-

स्तन्मार्गमेतदधिगम्य समाधितंत्रम् ॥१०५॥

शब्दार्थ—संसारत्री मुक्त अने परमात्म स्वरूपनो जाण
एयो पुरुष परमास्वरूपना जाणपणानां एकाग्रताने प्रतिपादन
करनारा मोक्षमार्गना उपायरूप आ शास्त्रने पामीने शरीरादिक
पदार्थमां परमात्म बुद्धिने अने संसारना दुःखने उत्पन्न करना
री अर्द्धबुद्धिने त्यजी दइ ज्ञानमय एवां सुखने पामे वे. ॥१०५॥

॥ इति समाधि शतकं संपूर्णम् ॥



(२१७)

॥ अथ सज्जनचित्तवल्लभ ॥

नत्वा वीरजिनं जगत्रयगुरुं मुक्तिश्चियो वल्लभं,

पुष्पेपुङ्खपनीतवाणनिवहं संसारदुःखापहम् ॥

वद्वये ज्ञव्यजनप्रबोधजननं ग्रंथं समासादहं,

नाम्ना सज्जनचित्तवल्लभमिमं शृण्वतुं संतो जनाः १

शब्दार्थ—त्रय जगत्ना गुरु, मुक्तिरूप लक्ष्मीना पति, कामना वाण समूहने क्य करनारा अने संसारनां दुःखने नाश करनारा श्री वीर प्रभुने नमस्कार करीने ज्ञव्य माणसोने ज्ञान प्रगट करनारा आ सज्जनचित्तवल्लभ नामना ग्रंथने संक्षेपथो कहुं वुं, तेने संत पुरुषो सांजलो ॥ १ ॥

रात्रिश्चंद्रमसा विनाज्जनिवहैर्नो ज्ञाति पद्माकरो.

यद्वत्पंक्तिलोकवर्जितसज्जा दंतीव दंतं विना ॥

पुष्पं गंधविवर्जितं मृतपतिः स्त्री चेह तद्वन्मुनिः.

चारित्र्येण विना न ज्ञाति सततं यद्यप्यसौ शास्त्रवान् १

शब्दार्थ—जेम रात्री चंद्र विना, तलाव कमलोना समूह विना, सज्जा पंक्तिलोक विना, हाथी दंत विना, पुष्प गंध विना अने स्त्री पति विना नथी शोभती तेम जोके शास्त्रनो जाण एवो पण मुनि चारित्र्य विना शोभतो नथो ॥ १ ॥

किं वस्त्रत्यजनेन ज्ञो मुनिरसावेतावाता जायते,

द्वेमेन च्युतपन्नगो गतविपः किं जातवान् जूतले ॥

मूलं किं तपसः क्षमंजियजयः सत्यं सदाचारता—

रागादींश्च विज्जर्त्ति चेन्न स यतिर्लिङ्गी ज्वेत्केवलम् ३

शब्दार्थ—अरे ! वस्त्रने त्यजवाथो शुं ? आ पुरुष ए वस्त्रने त्यजी देवाथी शुं मुनि थाय ? अर्थात् न थाय. विप खरी परेलो

अर्थात् विप रहित एवो सर्पं शुं पृथ्वीने विपे प्राय खरो? अर्थात् न प्राय. तपनुं मूळ क्रमा, इंद्रियजय, सत्य अने सदाचारपुं ठे उता जो यति रागादिकने धारण करेठे तो ते यति नहि, परंतु लिंगधारी कहेवाय ॥ ३ ॥

किं दीक्षाग्रहणेन नो यदि धनाकांक्षा ज्वेचेतसि,
किं गार्हस्थ्यमनेन वेपधरणेनासुंदरं मन्यसे ॥

उच्योपार्जनचित्तमेव कथयत्यन्यंतरस्थांगजं,
नो चेदर्थपरिग्रहग्रहमतिर्जिह्वोर्न संपद्यते ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—हे यति! जो धननी इच्छा प्राय तो दीक्षा लेवाची शुं? कारणके, ए यतिवेपने धारण करवाची ग्रहस्थपणाने तुं शुं गोठो माने ठे? इय मेलववानुं चित्तज अंतरना कामने देवाडी प्रांप ठे अने जो अंतरनो कामविकार न होय तो साधुने धनने अने स्थान ग्रहण करवानी इच्छा थतीज नथो. ॥४॥

पोपापंभ्रुकगोविधर्जितपदे संतिष्ठ जिह्वो सदा.

जुक्ताद्वाग्मकारितं परगृहे लब्धं यथामंजवम् ॥

पट्टथावड्यकमन्क्रियासु निरतो धर्मादिगगं वदन्.

माद्यं योगिजिगन्मपावनपरं ग्लनत्रयालंकृतः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—हे साधो! स्त्री, जीव तथा पशु चिनाना स्थानकने विपे निरंतर गृहे अने पारके घरे नहि करवायला तेमज अगमर प्रमाणे मंत्रेना आदारने ज्ञातन कर. वली आत्माची एवित्र तेमज ज्ञान, दर्शन अने चाग्निरूप ग्रण ग्नेथी सुशान्ति एया योगी दुन्येनी माद्ये धर्मादि राग करतो उतो उ प्रकारनी आद्यशर क्रियाने विपे तय्य था. ॥५॥

(११९)

डुर्गंधं वदनं वपुर्मलगृहं त्रिद्विघाटनाज्ञोजनम् ,
शया स्थंमिलज्जूमिषु प्रतिदिनं कट्यां न ते कर्पटम् ॥
मुंमं मुंमितमर्धदग्धशववत्त्वं दृश्यसे ज्ञो जनैः,
साधोऽद्याप्यवलाजनस्य ज्वतो गोष्ठी कथं रोचते ६

शब्दार्थ—मुख डुर्गंधवालुं, शरीर मलनुं घर, त्रिद्विघा माग
वाघी ज्ञोजन, प्रति दिवस पृच्छीने विषे शयन, केरु उपर वल्ल
पण नहि एवुं, अर्ज शवनी पेटे माथुं मुंमेलुं. आ प्रमाणे आक
तोवाला तने हमेशां माणसो जूवे ठे गता हे साधो! तने आज
सुधी स्त्रीपोनी साथे वातो करवी केम रुचे ठे? ॥६॥

अंगं शोणितशुक्रसंज्ञवमिदं मेदोस्थिमज्जाकुलं .

बाह्ये माह्निकपत्रसन्निजमहो चर्मावृतं सर्वतः ॥

नो चेत्काकवृकादित्रिवपुरहो जायेत जट्ट्यं ध्रुवम् ॥

दृष्ट्वाद्यापि शरीरशब्दानि कथं निर्वेदना नास्ति ते ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—आ शरीर रुधिर अने वीर्यथी उत्पन्न थयुं ठे. ते
मज ते चरवी, दाडका अने स्नायुथी ज्ञरपुरठे. वली व्दारना
जागमां मांखीनुनी पांखोना मरखी चामडीथी चारे तरफ टंका
यलुं ठे. जो आ वर्णन करवा प्रमाणे शरीर न होय तो ते शरीर
कागना अने नार विगरे जीवोथी आश्चर्यकारी रीते ज्ञक्षण कराय ठे.
तेवा शरीरने जोशने पण तने ते शरीर उपर वैराग्य केम नथो थतो.

स्त्रीणां ज्ञावद्विलासविचित्रमगतिं दृष्ट्वानुरागं मनाक्,

मागास्त्वं विपवृहपक्कफलवत्सुस्वादयंत्यस्तदा ॥

इत्सेवनमात्रतोऽपि मरणं पुंसां प्रयत्नंति ज्ञो.

तस्मान् दृष्टिर्विपाह्वित्परिहर त्वं दूरतोऽमृत्यवे

शब्दार्थ—स्त्रीयांना ादि विलासनी वि

ने जोड़ तुं जरा पण राग न कर. कारणके, ते फक्त जोवाने श्रव
सरे विपवृद्धनां पाकेलां फलनी पेठे उत्तम स्वादवाली देखाय ठे.
परंतु हे मुनि! ते स्त्री जरापण सेवन करवाथो माणसोने मृत्यु
आपे ठे, माटे ते स्त्रीयोने तुं त्हाऱा पोतानां जीवितने माटे दृष्टि
विष सर्पनी पेठे दूरश्रो त्यजी दे. ॥७॥

यद्यद्वाञ्छसि तत्तदेव वपुषे दत्तं सुपुष्टं त्वया,
साध्वं नैति तथापि ते जन्मते मित्रादयो यांति किम् ॥
पुण्यं पापमिति द्वयं च जवतः पृष्टेऽनुयाचिष्यते,
तस्मात्त्वं न कृथा मनागपि महामोहं शरीरादिषु ॥८॥

शब्दार्थ—तुं जे जे वस्तुनो इच्छा करे ठे ते ते वस्तु तें शरीरने
आपोने तेने पुष्ट वनावी दोधुं, तोपण हे जन्मुळि! ते शरीर
त्हारी साथे आववानुं नथी. वली शुं मित्रादि आववाना ठे? अ
र्थात् तेज पण आववाना नथी. परंतु पुण्य अने पाप एवत्रे त्हारी
पाठल आववाना ठे, माटे तुं शरीरादिकने विषे फोगट एवा महा
मोह न कर. ॥ ८ ॥

अष्टाविंशतिज्ञेदमात्मनि पुरा संरोप्य साधौ वृत्तं,
साक्षीकृत्य जिनान् गुरुनपि कियत्कालं त्वया पालितम्
जंक्तुं वाञ्छसि शीतवातविहतो जूत्वाधुना तद्वृत्तं,
दारिद्र्योपहः स्ववांतमसनं जुक्ते क्षुधातोऽपि किम्? १०

शब्दार्थ—हे साधु! तें श्रो जिनेश्वरने तथा गुरुने साक्षी करी
अष्टाविंश जेदयाला साधु वतने श्रंगीकार करीने केटलोक काल
पाठ्युं ठे. वली इवणां ते तुं विषयरूप वायुश्री इणायो वतो धरने
तेने जांगवानी इच्छा करे ठे. परंतु दारिद्र्यश्री इणापेलो एवो
पण जुळ्यो माणस शुं पोताना वमन करेला पदार्थने ग्वाय ख
रो? अर्थात् न खाय. ॥१०॥

सौरूपं वाञ्छसि किं त्वया गतज्ञये दानं तपो वा कृतं,
 नो चेत्त्वं किमिहैवमेव लज्जसे लब्धं तदत्रागतम् ॥
 धान्यं किं लज्जते विनापि वपनं लोके कुटुंबीजनो-
 देहे कीटकजङ्घितेक्षुसदृशे मोहं वृथा मा कृत्याः ॥११॥

शब्दार्थ—हे साधु! तूं देह सुखनी इच्छा करे ठे? तो भुंते पुर
 ज्ञये दान अथवा तप करयुं ठे? जो ते दान अथवा तप नहीं
 करयुं तो तूं आ ज्ञवमां भुं पामवानो ठे? अने सुख प्राप्त करया
 नो इच्छाथो जे शुजाशुज कर्म करयुं ठे ते आ ज्ञवमां तेनी मेवेज
 प्राप्त अर्पयुं ठे. दृष्टांत कहे ठे के, लोकमां कणयो लोक भुं वाग्या
 विना क्यारेपण धान्य पामे करा? मांटे कीडाथी जक्षण करगंधनां
 शरमोना सरग्या देहने विषे वृथा मांद न कर. ॥११॥

यत्काले लघुज्जामंडितकरो ज्ञत्या परेषां गृहे,
 जिज्ञार्थं चमसे तदापि ज्वतो मानापमाना नहि ॥
 जिज्ञो तापसवृत्तितः कदशनात्किं तप्स्यमंस्तनिंशं.
 श्रेयोथं किल सन्नते मुनिवर्गवाधा मुधाद्युज्जया ॥ १२ ॥

शब्दार्थ—जे अचमसे न्हानां पात्रोथो मुनोन्नित तापसायो एह
 लोकोनां घरने विषे जिज्ञाने मांटे ज्ञमे ठे त्पार पण तेने मान इवमा
 न पतुं नहीं, हे साधु! तो पठी तापस वृत्तिने लोथे मुनिने इच्छागदी
 गतदियम शा मांटे खेद करे ठे? कारण उत्तम मुनिने इच्छागदीने
 मांटे जुग्य आदिथी उत्पन्न अयेथी यह पीडाठने निधे मरन अरे ठे.
 एकाकी विरहत्यनःस्थितवस्त्रिवर्ती यथा श्वेत्तया,

योपामध्यपरतस्त्वमेवमपि ज्ञात्यनवात्मयुचं यते ॥
 तस्मिंश्चेदज्ञिलापता न ज्वतःकिं क्षाम्यसि प्रत्यहम् .
 मध्ये साधुजनस्य तिष्ठति न किं कृत्वा मदाचारताम् १३

शब्दार्थ—हे मुनि! जेम गानीमां जोमायेलो एक वलद पोतानो मरजी मुजव क्रीमा करेठे तेम तुं पण पोताना समूहने (मुनि समूहने) त्यजो दइ स्त्रीयोना मध्यमां आसक्त थयो ठतो क्रीडा करेठे. जो कदापि त्हारे ते स्त्रीयोनी इच्छा न होय तो तुं ते उना मध्ये निरंतर शा माटे फरेठे अने सदाचार पालीने साधु उना समूहने विपे केम नथी रहेतो? ॥१३॥

कीतान्नं जवतो जवेत्कदशने रोपस्तदा श्लाघ्यते,

जिह्वायां यदवाप्यते यतिजनैस्तद्भूज्यते सादरात् ॥

जिह्वो जाटकसद्वसन्निजतनोः पुष्टिं वृथा मा कृथाः.

पूां किं दिवसायधौ क्षणमपि म्थातुं यमो दास्यति १४

शब्दार्थ—जो त्हारे खरात्र जोजनमां पण वेचाथी अन्न ला गुं परतुं होय तो रोप करवो योग्यठे, परंतु मुनिजनोए जिह्वामां जे अन्न मेलवाय तेज आदरथी जोजन करायठे, माटे हे जिह्वु! जाढाना घर सग्या आ शरीरने तुं वृथा पोपण न कर. कारणेंक, ते शरीरनी अवधि पूर्ण थइ रहेडो त्यां तेने यम क्षण माय पण तेमां रंद्या देडो नहि. ॥१४॥

लब्धान्नं यदि धर्मदानं विषये दातुं नयैः शक्यते,

शार्ङ्गोपहृतामन्थापि विषयाशक्तिं न मुचंति ये ॥

धृत्वा ये चर्गा जिनेंजगदितं तस्मिन् सदा नादग-

न्तेषां जन्म निगर्थकं गतमजाकंते म्नाकाग्वत् ? ७

शब्दार्थ—जो के जे गृहस्थो पोताने मलेणु अन्न धर्मदान करवामां आनी शक्या नथी, जेउ दरिद्र्यो क्षणाया उता पण विश्वासार्थिने मृकता नथी अने जेउ जिनगंत कंठ्या पाणिने शरणा करी तेने विपे आदर करता नथी. ते सर्वजो जन्म परकी

ना कंठे रहेला स्तननो पेटे निष्फल गयो ठे. ॥१५॥

दुर्गंधं नवज्जिर्वपुः प्रवहति क्षरैरिमं संततं.

संदृष्ट्वापि हि यस्य चेतसि पुनर्निवेदता नास्ति चेत् ॥

तस्माद्यद्बुवि वस्तु किदृशमहो तत्कारणां कथ्यते,

श्रोखंमादिन्निरंगसंस्कृतिरियं व्याख्याति दुर्गंधतां १६

शब्दार्थ—आ शरीर नवहारोथो इमेगां दुर्गंधनेज वहन क

रे ठे; ते शरीरने जोइने जे पुरुषना चित्तमां जो वैराग्य नथी थयो

तो पठी आश्रयं ठे के, तेने पृथ्वां उपर बीजां कइ वस्तु वैराग्यनुं

कारण कहेवाय ? आ प्रत्यक्ष श्रोखंमचंदन विगरेथी करेली अंग

नी संस्कृतो पण दुर्गंधनेज प्रगट करे ठे. ॥१६॥

शोचंति न मृतं कदापि वनिता यद्यस्ति गेहे धनं.

तत्रेन्नास्ति रुदंति जीवनधिया स्मृत्वा पुनः प्रत्यहम् ॥

कृत्वा तद्दहनक्रियां निजनिजव्यापारचिंताकुला—

स्तन्नामापि च विस्मरंति कतिञ्चिः संवत्सरैर्योपितः १७

शब्दार्थ—स्त्री जो घरने विपे धन होय तो मृत्यु पामेला प

तिनो शोक करतो नथी अने जो धन नथी होतुं तो आजीविका

नी बुद्धिथी तेने दररोज वारंवार संजारीने रुदन करे ठे, वली ते

स्त्रीयो पतिनो उर्ध्वदेहिक क्रीया करीने पठी पोत पोतानां का

ममां आकुल व्याकुल अइ ठती केटलाक वपं तेनुं नाम पण

विसरी जाय ठे. ॥ १७ ॥

अन्येषां मगां जवानगाायन्स्वस्यामरत्नं सदा.

दहिन चितपसीडियद्विपवशी जूत्या

अथ म्यः पुनगगमिष्यति यमो न

तग्मादात्मदहनं कुर्वत्यमनिराक्षरं

॥
१७

शब्दार्थ—हे देहधारी ! तू वीजातनां मरणने नहि गणकार
तो वतो हमेसां पोतानां अमरपणानो विचार करे वे अने तेथीज
तुं इंद्रियरूप दायीतुने वडा थड जटके वे; परंतु मृत्यु आज
आवडो अथवा काले आवडो ते तल्यथी जाणी शकतुं नथी,
मांडे तुं तरत पोताना हितकारक एवा जिनेश्वरे कोहेला धर्मेने
आचरण कर. ॥ १८ ॥

देहे निर्ममता गुरौ विनयता नित्यं श्रुताच्यासता,
चाग्निज्वलता महोपशमता संसारनिर्वेदता ॥
अंतर्बाह्यपरिमल्यजनता धर्मज्ञता साधुता.

साधो साधुजनस्य लक्षणाभिदे संसारविज्ञेदनम् ॥१९॥

शब्दार्थ—हे साधु! शरीरने विषे निर्ममपणुं, गुरुने विषे
विनयपणुं, निरंतर शास्त्रेने विषे अन्यासपणुं, चारित्र्यनुं उग्रव्य
पणुं, श्लोडुं उपशमपणुं, संसारमां नैराग्यपणुं, अंतर्गना अने या
ज्ञता परिमलने स्पजवापणुं, धर्मज्ञपणुं अने साधुपणुं. आ उपर
करे हे साधुजननुं लक्षण संसारना नाश करुनाहे वे. ॥१९॥

सृष्ट्वा मानुषजातिमुत्तमकुलं रूपं च नीरोगतां,
शुद्धिं भीषणसंवनं सुवर्णां श्रीमज्जिनंजंजितम् ॥
सोऽन्नायं समुपांशेत्तुजिग्यं म्तांकाय गोरुयाप ज्ञो.

देहिन् देहगुणानकं गुणानूर्तं जेकनुं किमिज्जाम्नि ने २०

शब्दार्थ—हे देहधारी ! मनुष्यजातिने, उत्तमकुलने, स्प
ने नैरोगपणने, शुद्धिने, भीषणसंवनं म्तांकाय अने श्रीजिनगत
कोहेला चारित्र्यने शरीरपामीने गुणने अथे धनने एवना करुना
करुणाने मरुभुं ने सोऽं मृगान मांडे गुणथी गुणं तवा आ
देहव्य उदम न्तां नापनाती शरीर इथा वे? ॥२०॥

(११५)

वेतालाकृतिमर्षदग्धमृतकं दृष्ट्वा ज्वरं यते.

यासां नास्ति ज्वरं त्वया सममहो जटपंति प्रत्युत्तरम् ॥

राक्षस्यो नृविनो ज्वरंति वनिता मामागता ज्वरितुं.

मत्तैवं प्रपलायतां मृतिजयात् त्वं तत्र मा स्याःक्षणम् ॥

शब्दार्थ—हे यति! वेतालना सरखी आकृतीवाला अने अर्षदग्ध अथेला शव सरखा तने जोड जे खोपोने ज्वर अतो नथी, तेज खीउ तमने उत्तर आपे वे. शुं ते खीयो पृथ्वीने विषे गरुसीयो न कहेवाय? अर्थात् कहेवाय. 'ते खीउ मने ज्वरण कखा आवोवे.' एम मानो तुं मृत्युना ज्वरथी नासी जा पण त्यां क्षणमात्र रहिडा नदि. ॥११॥

मागाम्त्वं युवतीगृहेषु सततं विश्वासतां संशयो—

विश्वासे जनवाच्यता ज्वरति ते न स्यात्पुमर्थं ततः ॥

स्वाध्यानुरतो गुरुक्तवचनं चित्ते समारोपयन्,

तिष्ठ त्वं विकृतिं पुनर्व्रजसि चेद्यासि त्वमेव क्षयम् ११

शब्दार्थ—तुं स्त्रीयोना घरने विषे निरंतर विश्वासपणुं न कर. कारणके, विश्वास करवाथी संशय अने लोकमां निंदा थाय वे अने तेथी त्दारो कांड पुरुषार्थ अवानो नथी. माटे तुं गुरुनां केहलां वचनने चित्तमां धारण करी जणवा जणाववामां आस थया ठतो रहे. वली जो तुं विकार पाप्मो तो तिथे नाश पामीश. किं मंस्कारशतेन विट् जगति ज्ञो कास्मीरजं जायते.

किं देहःशुचितां ब्रजेदनुदिनं प्रक्षालनादेजसा ॥

संस्कारो नखदंतवक्रवपुषां साधो त्वया युज्यते,

नाकामी किल मंडनप्रिय इति त्वं सार्थकं मा कृथाः ॥

शब्दार्थ—हे मुनि! जगतमां शंकाओं उपायोथी पण शुं वि

एा होय ते कंकु पाय खरुं? अथवा हमेशां टांकडोवार प्रयन्त
 घोवाथी शरीर शुं पवित्रपणाने पामे? माटे त्हांर नाय उनारव
 दांत साफ करवा, मुख साफ राखवुं अथवा शरीर घावुं निगे
 संस्कार करवा योग्य नथी? तो 'तुं शुं अकामी नथी? अथवा
 मंमनप्रिय ठे?' ए वचनने तुं सार्थक न कर. ॥७३॥

आयुष्यं तव निज्यार्द्रमपरं चायुस्त्रिजेदादहो,

बालत्वे जरया कियव्यसनतो यातीति देहिन् वृथा ।

निश्चित्यात्मनि मोहपासमधुना संविद्य बोधासिना,

मुक्तिशीवनितावशीकराणसञ्चारित्रमाराधय ॥ ७४ ॥

शब्दार्थ—हे देहिन्! त्हांरुं अर्धुं आयुष्य निजामां चाड्य
 जायठे अने वाकोनुं अर्धुं त्रण जेदशी चाड्युं जायठे ते त्रण
 जेदमां केटलुंक वाड्यावस्थामां, केटलुंक वृजवस्थामां अने के
 लुंक विषयादिव्यसनमां फोगट जायठे. आ प्रमाणे तुं आत्मां
 विषे निश्चय करी हवणां बोधरूप खड्गथी मोह पासने कापी न
 खी मुक्ति श्रो रमणीने वशीकरण एवा उत्तम चारित्रने आराध
 वृत्तैर्विंशतिर्निश्चतुर्जिरधिकैः सल्लक्षणो नान्वितः,

ग्रंथं सज्जनचित्तवद्वज्जमिमं श्रीमद्विप्रेणोदितम् ॥

श्रुत्वात्मैर्जियकुंजरान्समदतो रुद्रंतु ते दुर्जयान् .

विद्वांसो विषयाटवीपु सततं संसारवित्रित्तये ॥ ७५ ॥

शब्दार्थ—श्री मद्विप्रेण गुरुए उत्तम लक्षणवाला चोवीड
 काव्योवरे कहेला आ सज्जनचित्तवद्वज्ज नामना ग्रंथने सांज्जल
 ने ते पूर्वे कहेला संत पुरुषो संसारनो छेद करवा माटे विषयरूप
 शरण्यमां जटकता एवा दुर्जय इंद्रियरूप गजोने वश करो. ७५

॥ इति सज्जनचित्तवद्वज्ज संपूर्ण ॥

॥ अथ श्री वीरजिन स्तवन ॥

जइका समणे जयवं, मदावीरे जिणुत्तमे ॥
 लोगनाहे सयंबुद्धे, लोगंतिय चिवोद्धिए ॥ १ ॥
 वधरं दिन्नदाणोदे, संपूरियजणामए ॥
 नाणत्तयसमान्ते, पुत्ते सिद्धराइणो ॥ २ ॥
 चिच्चा रळं च रळं च, पुरं अंतंत्तरं तदा ॥
 निस्कमिन्ता आगारात्त, पवइए अणगारियं ॥ ३ ॥
 परोत्तदाणं नो ज्ञीए, ज्ञेरथाणं ग्वमाखमे ॥
 पंचदा ममिए गुत्ते, वंत्तयारी अकिंचणे ॥ ४ ॥
 निम्ममे निरहंको, अकोदे माणवज्जाए ॥
 अम.ए ज्ञोत्तविमुक्के, पमंतं छिन्नबंधणे ॥ ५ ॥
 पुस्कंवा अन्वेय संख्याइय निरंजणे ॥
 जीविवा अप्पाम्मिघाए, गयणंय निरासए ॥ ६ ॥
 वात्तव्य अप्पाडवंधे, कुम्मावा गुत्तइंदिए ॥
 विपमुक्के विहंगव्य, ग्वगिमिंंगय एगमे ॥ ७ ॥
 ज्ञारंमेवा पमंतय, वमहंवा जाय थामए ॥
 कुंजगेइव मंमंरि, मीहंवा दुळरिम्मए ॥ ८ ॥
 मायगंइव गंत्तंरि, चंदे इय सोमलेसए ॥
 सुमंवा दिन तेपहं, हेमंवा जाप रुवए ॥ ९ ॥
 मळं मंह धरित्तव्य, सायरंबुच्च सच्छेदे ॥
 सुद्धुप ह्यासुच्च, जलमाणेय तेपसा ॥ १० ॥
 वासी वंदण कप्पेय, समाणे लोहुं कंचणे ॥
 ममे पूया वमाणसु, ममे मोखे, जवे तहां
 नाणेणं, देसणेणं च, चरित्तेण मज्जुत्तरे ।
 अ हारेण, महंवेण

लाघवेणं च खंतीए, गुत्ती मुत्ती अणुत्तरे ॥
 संजमेण तवेणं च, संवरेणं मणुत्तरे ॥ १३ ॥
 अणुग गुण सपाइने, धम्म सुक्काण जायए ॥
 धास्सकएण संजाए, अणंतवर केवली ॥ १४ ॥
 वीयराएय निग्गंघे, सव्वद्दु सव्वदंसणे ॥
 देविंद दाणविंदेहिं; निव्वत्तिय महामहे ॥ १५ ॥
 मव्व ज्ञासाणुगाएय, ज्ञामाए सव्व संसए ॥
 जुगवं मव्वजीवाणं, विंदित्त जिन्नगोपरे ॥ १६ ॥
 हिए सुहेय निस्सेय, कारए मव्व पाणिणं ॥
 महन्नपाणि पंचेव, पन्नविच्चा सज्जावणे ॥ १७ ॥
 संमाग्गायं बुद्ध, जंतुसंताण ताए ॥
 ज्ञाणुव्व देगियं तिग्ग, संपत्ते पंचमं गइं ॥ १८ ॥
 मे गिने अपत्ते निग्गे, अरुणे अवरामरे ॥
 वम्मवपंचत्तम्मुक्के, ज्ञाण्यं जएत्तिणे ॥ १९ ॥
 मे तिणे ववमाण्य, महावीरं मद्दायमे ॥
 अमंयदुक्क गिग्गाणं, अग्गाणं वेत्त निव्वुइ ॥ २० ॥
 इय वम्म वमाया संयुत्त वीरनाहो,
 वम्मवममहाणा देत्त तुद्धनणं मे ॥
 दमममुद्धुत्तमु मग्गगिब्बी जवेमु,
 कणयहयवेमु मत्तु मिंतमुवादि ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीवीरगतिन स्तवन ॥

॥ अथ श्रीमंधरस्वामीनुं स्तवन ॥

केवलनाण सणाहं, विदेहवासंमि संठियं घोरं ॥
 मुरमणुअनमियचलेणं, सीमंधरसामियं वंदे ॥१॥
 जय सीमंधर सामिय, ज्ञवियमहाकुमुयवोहणमयंक ॥
 ममरामि तं महायस, ऽह विउ ज्ञारहे वासं ॥ २ ॥
 सीमंधरदेव तुमं, गामागेपट्टणेसु विहरंतो ॥
 धम्मं कहेसि जेसिं, सहलं चिय जीवियं तेसिं ॥ ३ ॥
 किं ज्ञयवं मह कम्मं, ममठियं ताग्गिहेहिं पावेहिं ॥
 जं नहजाउ जम्मो, तुह पयमूले मया कालं ॥ ४ ॥
 चिंतामणि सारिठो, अहवा कण्ण मध्य मुहफलउ ॥
 अप्पुव्व कामधेणू, नहु नहु ताणंपि अहोयरो ॥ ५ ॥
 उऊड तुह सामिनं, तिदूयण मयंमि नउण अन्नम्म ॥
 जम्हा एरिसि रिओ, न हु दीसइ सेसपुग्गिसम्म ॥ ६ ॥
 कइया हं सामि तुमं, सिंहामणमंठियं मपरिवारं ॥
 धम्मं वागग्माणं, पिच्चस्सं नियनयणेहिं ॥ ७ ॥
 पुऊंतु ते मणोरह, निञ्चं जे हिययमंठिया मय ॥
 पावइ रंकोवि फलं, मंपत्ते कप्परुखंमि ॥ ८ ॥
 निञ्चं जाणमि अदं, तुह पयकमलेसु निम्ममं धोर ॥
 तह कुरु देव पसायं, जह दग्गिमायं ममं हेमि ॥ ९ ॥
 ते धमा कपपुमा, देवा देवीय माणवा मध्ये ॥
 जे संसय वुठेयं, करंति तुहपायमूलेमि ॥ १० ॥
 अदयं पुन्नविदूणो, गणे गणंमि संसया वमिउ ॥
 ऽछामि विसुरंतो, उउमठो नाणपरिहाणो ॥ ११ ॥
 कुणसु पसायं गुरुयं, वण्णोसंमयाण जह होए
 जम्हा नहाणु, वागय वड्ढसा ॥

लाघवेणं च खंतीए, गुत्ती मुत्ती अणुत्तरे ॥
 संजमेण तवेणं च, संवरेणं मणुत्तरे ॥ १३ ॥
 अणोग गुण सयाइन्ने, धम्म सुक्काण जायए ॥
 घाइस्काएण संजाए, अणंतवर केवली ॥ १४ ॥
 वीयराएय निगंथे, सब्बद्धं सब्बदंसणे ॥
 देविंद दाणविंदेहिं; निव्वत्तिथ महामहे ॥ १५ ॥
 सब्ब ज्ञासाणुगाएय, ज्ञासाए सब्ब संसए ॥
 जुगवं सब्बजीवाणं, विंदित्त जिन्नगोयरे ॥ १६ ॥
 हिए सुहेय निस्सेय, कारण सब्ब पाणिणं ॥
 महब्बयाणि पंचेय, पन्नविन्ना सज्जावणे ॥ १७ ॥
 संमारमायरं बुद्ध, जंतुसंताण तारए ॥
 जाणुव्य देसियं तिच्च, संपत्ते पंचमं गइं ॥ १८ ॥
 मे मिये अयलं निजे, अरुवे अयरामरे ॥
 कम्मप्पपंचउम्मुक्के, जणवीरे जणजिणे ॥ १९ ॥
 मं जिणे वडमाणेय, महावीरे महायमे ॥
 अमंयडुम्कविन्नाणं, अम्हाणं देउ निव्वुइ ॥ २० ॥
 इय परम पमाया संशुत्त वीरनाहो,
 परमपममदाणा देउ तुल्लत्तणं मे ॥
 अमममुद्दुद्देमु मग्गमिठी जंवेमु,
 कणयकयवंगमु सत्तु मित्तमुयायि ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीवीरजिन स्तवन ॥

॥ अथ श्रीमंधरस्वामोनुं स्तवन ॥

केवलनाण सणाहं, विदेइवासंमि संठियं धीरं ॥
 सुरमणुअनमियंचलणं, सोमंधरसामियं वंदे ॥१॥
 जय सोमंधर सामिय, ज्ञवियमहाकुमुयवोहणभयंक ॥
 ममरामि तं महापस, ङह ठिठं जारहे वासे ॥ २ ॥
 सोमंधरदेव तुमं, गामागरिपट्टणेसु विहरंतो ॥
 धम्मं कहेसि जेसिं, सहलं चिय जीवियं तेसिं ॥ ३ ॥
 किं जयवं मह कम्मं, समठियं ताग्गिमेहिं पावेहिं ॥
 जं नहजात्र जम्मो, तुह पयमूले मया कालं ॥ ४ ॥
 चिंतामणि सारिञ्चो, अहवा कप्प मुअ मुहफलत्तं ॥
 अप्पुअव कामवेणू, नहु नहु ताणंपि अहीयगं ॥ ५ ॥
 वज्जड तुह मामिचं, तिदूयण मअंमि नत्तण अन्नम्म ॥
 जम्हा एरिस रिञ्चो, न हु दीमड सेसपुग्गिम्म ॥ ६ ॥
 कइया हं सामि तुमं, सिंहासणमंठियं सपरिचारं ॥
 धम्मं वागरमाणं, पिञ्चस्सं नियनयणेहिं ॥ ७ ॥
 पुञ्जंतु ते मणोरह, निञ्चं जे हिययसंठिषा मअ ॥
 पायड रंकोवि फलं, संपत्ते कप्परुखंमि ॥ ८ ॥
 निञ्चं जाणमि अहं, तुह पयकम्मलेसु निम्मलं धीर ॥
 तह कुरु देव पसायं, जह दरिमायं ममं वेसि ॥ ९ ॥
 ते धन्ना कयपुत्ता, देवा देवीय माणवा मअ ॥
 जे संसय वुछेयं, करंति तुहपायमूलंमि ॥ १० ॥
 अदयं पुअविहूणो, ठाणे ठाणंमि संसया वन्ति ॥
 ङ्छामि विसूरंतो, अत्तमत्तो नाणपरिहीणो ॥ ११ ॥
 कुणसु पसायं गुरुयं, यछत्तीसंमयाण जह होइ ॥
 जम्हा महाणुजावा, सरणागय यछत्ता हुंति ॥ १२ ॥

लाघवेणं च खंतीए, गुत्ती मुत्ती अणुत्तरे ॥
 संजमेण तवेणं च, संवरेणं मणुत्तरे ॥ १३ ॥
 अणेग गुण सयाइत्ते, धम्म सुक्काण जायए ॥
 घाइस्करण संजाए, अणंतवर केवली ॥ १४ ॥
 वीयरएण निग्गंथे, संब्वंहु संब्वदंसणे ॥
 देविंद दाणविंदेहिं; निव्वत्तिय महामहे ॥ १५ ॥
 सब्व ज्ञासाणुगाएय, ज्ञासाए सब्व संसए ॥
 जुगयं सब्वजीवाणं, विंदित्त जिन्नगोयरे ॥ १६ ॥
 हिए सुहय निस्सेय, कारण सब्व पाणिणं ॥
 महब्बयाणि पंचेय, पन्नविन्ता सत्तावणे ॥ १७ ॥
 मंसास्मायं बुद्ध, जंतुसंताण तारए ॥
 जाणुअ देसियं तिष्ठ, संपत्ते पंचमं गइं ॥ १८ ॥
 मं मिये अयले निचे, अरुये अयरामरे ॥
 कम्मपपंचत्तम्मुक्के, जणवीरे जएजिणे ॥ १९ ॥
 मे जिणे वडमाणेय, महावीरे मदायमे ॥
 अमंअडुम्फगिन्नाणं, अम्हाणं देत्त निव्वुइ ॥ २० ॥
 इय परम पमाया संयुत्त वीरनाहो,
 परमपममहाणा देत्त तुल्लनणं मे ॥
 अममगुहडुत्तेमु मग्गमिढी जंवेत्तु,
 कणयक्यवंगमु मत्तु मित्तमुवावि ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीवीरजिन स्तवन ॥

॥ अथ श्रीमंधरस्थामीनुं स्तवन ॥

केवलनाण सणाहं, विदेद्वासंमि संठियं धीरं ॥
 सुरमणुअनमियंचलणं, सीमंधरसामियं वंदे ॥१॥
 जय सीमंधर सामिय, ज्ञवियमहाकुमुपवोदणमयंक ॥
 ममरामि तं महापस, इह विठ जारहे वासे ॥ २ ॥
 सीमंधरदेव तुमं, गामागरेपदणेसु विहरंतो ॥
 धम्मं कहेसि जेसिं, महलं चिय जीवियं तेसिं ॥ ३ ॥
 किं ज्ञयवं मह कम्मं, समठियं तारिमेहिं पावेहिं ॥
 जं नहजात्त जम्मो, तुह पयमूले मया कालं ॥ ४ ॥
 चिंतामणि सारिञ्चो, अहया कण्ण मध्व मुहफलत्त ॥
 अण्णुव्य कामधेणुं, नहु नहु ताणंपि अहीयगे ॥ ५ ॥
 वज्जड तुह सामिनं, तिदूयण मद्यंमि नत्तण अन्नम्म ॥
 जम्हा एरिग्ग रिञ्चो, न हु दोमड सेसपुग्गिम्म ॥ ६ ॥
 कडया हे सामि तुमं, मिंहामणमंठियं सपग्गियं ॥
 धम्मं वाग्ग्माणं, पिच्चम्मं नियनयणेहिं ॥ ७ ॥
 पुळ्लंतु ते मणोरह, निशं जे हिययमंठिया मद्य ॥
 पावड रंकांचि फलं, संपने कण्णरुवंकमि ॥ ८ ॥
 निशं जाएमि अदं, तुह पयकमलंसु निम्मवं धोर ॥
 तह कुरु देव पसायं, जह दग्गियायं ममं हेमि ॥ ९ ॥
 ते धमा कयपुमा, देया देवीय माणवा मध्ये ॥
 जे संसय पुच्छयं, करंति तुहपायमूलंसि ॥ १० ॥
 अदयं पुन्नविहूणो, ठाणे ठाणंसि संसया वमित्त ॥
 उच्चामि विसुरंतो, उत्तमहो नाणपरिहीणो ॥ ११ ॥
 कुणसु पसायं गुरुयं, वच्छनीसंमयाण जह होइ ॥
 जम्हा महाणुनाया, सरणागय वट्ठला हुंति ॥ १२ ॥

कम्मवसेणय अहयं, नारहवासंमि जइवि चिणमि ॥
 तहवि तुमं महियए, रयणायर चंदणाएण ॥ १३ ॥
 तं पडु तं मप्र गुरु, तं देवो वंघवो तुमं चेव ॥
 गुरु संसारगणां, जीवाणं हुळु तं सरणं ॥ १४ ॥
 संसारजलदिमद्धे, निबुडुमाणोहिं न्भव सत्तेदिं ॥
 पइदिवसं समरिळ्ळइ, सीमंधर सामि पयकमलं ॥ १५ ॥
 जइ इच्छह परमपयं, निव्वंत्ता तइय जम्ममरणाणं ॥
 ता समरह जिणनाहं, विदेहवासंमि विहरंतं ॥ १६ ॥
 जो निच्चं न्बवाणं, विदेहवासंमि सामि विहरंतो ॥
 स कम्मदेसणाए, मिच्चत्त पणासणं कुणाइ ॥ १७ ॥
 पञ्चूत्ते मच्चणे, संजा समयंमि सब्बकालंमि ॥
 सीमं धर तिच्चपरं, वंदेहं परम नत्तोए ॥ १८ ॥
 पंच घणुस्सय माणो, चउरात्ती पुव्वलख वरिसाऊ ॥
 सो सोमंधरनाहो, अणंतनाणी सया जयन्तु ॥ १९ ॥
 मुणिसुव्वय नमि तिच्चपर, अंतरे रळ्ळलच्चि विच्छइं ॥
 छंमिय पव्वन्नदिरकं, सोमंधर सामियंवंदे ॥ २० ॥
 इय सीमंधरनाहो, शुत्त मए नत्तिरापकलिएणं ॥
 सासय सुइक्क जणत्तं, जयनाहो होत्त नवियाणं ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीमंधरजिन स्तवनं ॥

॥ अथ श्रीगुरु पदज्ञाना ॥

गोअम सुहम्म जंयू, पञ्चवो सिङ्गनवाइ आयरिआ ॥
 अन्नवि जुगप्पहाणा, पइं दिठे सुगुरु ते दिवा ॥ १ ॥
 अऊ कपटो जम्मो, अऊ कपटं च जीवियं मच्च ॥
 जेण तुह दंसणामय-रसेण सत्ताइं नयणाइं ॥ २ ॥
 सो देसो तं नगरं, तं गामो सोअ आसमो धन्नो ॥
 जत्त पटु तुम्हपाया, विहरंति सयावि सुपसन्ना ॥ ३ ॥
 हत्ता ते मुकपट्टा, जे किङ्कम्मं कुणंति तुह चक्षणे ॥
 वाणो बहुगुण ग्वाणी, सुगुरु गुणा वन्निआ जीए ॥ ४ ॥
 अवरिया सूरधेणू, संजाया महगिहे कणवुढो ॥
 दारिदं अऊगयं, दिठे तुह सुगुरु मुदकमले ॥ ५ ॥
 चिंतामणि सारिद्धं, समनं पावियं मए अऊा ॥
 मंसारो दूग्किद्धं, दिठे तुह सुगुरुमुदकमले ॥ ६ ॥
 जा रिद्धो अमरगणा, नुंजंता पियतमाई संजुत्ता ॥
 सापुण किन्नियमिता, दिठे तुह सुगुरु मुदकमले ॥ ७ ॥
 मणवयकाएहिं मए, जं पावे अऊियं सया जयवं ॥
 तं सव्वं अऊ गयं, दिठे तुह सुगुरुमुदकमले ॥ ८ ॥
 उल्लहो जिणिंदधम्मो, उल्लहो जीवाण माणुसो जम्मो ॥
 लक्ष्णि मणुअजम्मे, अउ उल्लहा सुगुरु सामग्गी ॥ ९ ॥
 जत्त न दीसंति गुरु, पच्चसे उण्णिहिं सुपसन्ना ॥
 तत्त कहां जाणिक्कड, जिणवयणं अमिअसारिद्धं ॥ १० ॥
 जइ पान्तसंमि मोरा, दिणयर उदयंमि कमलवणसंता ॥
 विहसंति तेमतच्चिय, तह अम्हे दंसणे तुम्ह ॥ ११ ॥
 जउ सरइ मुरहि वडो, वसंतमासं च कोईला सरई ॥
 वंजं सरई गइंदो, तह अम्म मणं तुमं सरई ॥ १२ ॥


अहो न निहिन्यो अहो, अहो मानो वगावित् ॥
 अहो न निगिह्या माया, अहो लोडो वनीडोत् ॥ १४ ॥
 अहो न अज्वं माहृ, अहो न नाहु मडवं ॥
 अहो न वनमा र्वनी, अहो न मुनि वनमा ॥ १५ ॥
 अहो न वनमा र्वनी, इजाहोहिसि वनमा ॥
 अहो न वनमा र्वनी, निहि गह्यमि नीगुत् ॥ १६ ॥
 आयग्यि नमुक्कागे, जीवं मोएड जवनहस्नात् ॥
 जीवण कीरमाणो, होड पुणो बोहिल्लज्जाए ॥ १७ ॥
 आयग्यिनमुक्कागे, सव्वपावप्यणामणा ॥
 मंगलाणं च सञ्चंसि, तड्यं हवड मंगलं ॥ १८ ॥
 ॥ इति श्रो गुरु प्रदक्षणा समाप्त ॥

॥ अथ जीवानुशास्ति कुलक ॥

रेजीव किं न बुध्यसि, चन्नगडमंसारमायरे घोरे ॥
 जमीत्त अणंतकाले, अरहट्ट थडिच्च जलमञ्चे ॥ १ ॥
 रेजीव चिंतसि तुमं, निमित्तमित्तं परो हवड तुच्च ॥
 अमुहपरिणामजणायं, फलमेयं पुव्वकम्माणं ॥ २ ॥
 रेजीव कम्मत्तरिच्चं, उवएसं कुणसि मुठ विवरिच्चं ॥
 दुग्गयगमणमण्णाणं, एसच्चिय हियइ परिणामो ॥ ३ ॥
 रेजीव तुमं सोत्त, सवणा दाऊण सुणसु महवयणं ॥
 जं सुखं नइ पाचिसि, ता धम्मविचजित्तं नूणं ॥ ४ ॥
 रेजीव मा विसायं, जाहितुमं पिच्छिऊण पररिखी ॥
 धम्मरहियाण कुत्ता, संपजाइ निवहसंपत्ती ॥ ५ ॥

रेजीव किं न पिबति, जिज्ञंतं जुब्बणं धणं जीभं ॥
तहविहु मिग्घं न कुणति, अप्पहियं पवरजिलाघम्मं ॥ ६ ॥
रेजीव माणवजिअ, साहस परिहोण दोण गयलज्ज ॥
अत्राति किं वीसन्नो, नहु धम्मे आयरं कुणति ॥ ७ ॥
रेजीव मल्लुपजम्मं, अरुयन्नं जुब्बणं च वोलोणं ॥
नय चिन्नं उग्गतवं, नय लहो माणिआ पवरा ॥ ८ ॥
रेजीव किं न कात्तो, तुच्च गन्न परमुहं नीयंतस्त ॥
जं ङ्खिअं न पत्तं, तं अतिघारावयं चरसु ॥ ९ ॥
इयमासुह सुमणेणं, तुच्च निरी जा परस्त आइना ॥
ता आयरेण गिन्दसु, मंगोय विदिपयत्तेण ॥ १० ॥
जोवं मरजेसत्तमं, उरुद्धं जुब्बणं सद जराए ॥
गिहो विणास मदिआ, हरित नित्तानं नय वापन्नो ॥ ११ ॥
॥ इति जोवानुशास्ति कुलक समाप्त ॥



A decorative border with intricate floral and scrollwork patterns surrounds the central text.

॥ श्री प्रकरणमाला समाप्त. ॥

शुद्धिपत्र.

पृष्ठ.	लोटी.	अशुद्ध.	शुद्ध.
८	५	गप्रायां	गप्रया
१४	६	य	
१६	४	अनुष्टुभ	अनुष्टुप्
२८	१४	मागणा	मार्गणा
४९	२३	अमत्रोस	अढतालोस
५३	१	पाच	पाच
७७	२१	वत्रे ने	त्रमो
१४५	१३	इथ्या	इद्या
१४०	१	थयेला	थयेलानी
१४७	२२	धन	धना
१६४	३	देमको	देमको
१७३	१६	श्रीसी	श्रींसी
१८३	७	सील	शोल
१८७	८	निज्ञा	निज्ञाना
१८७	११	कियद्बुवे	कियद्बुवे
१९०	८	रहदि	हदि
१९०	८	वलि	वली
१९१	८	श्रीयम्	श्रीयम्
१९२	१९	समाहितातः	समाहितांतः
१९९	८	यतोऽनीत	यतोऽनीत
१९७	१२	जय	अजय
२११	२	कदेतो	कदेतो
२२०	१८	तद्बृतं	तद्बृतं

आ पुस्तक मलवाना ठेकाणां.

- शा. नोगीलाल ताराचंद ठेण हाजापटेलनी पोलमां लांबेमर.
शा. वालाजाइ श्रीकमलाल ठेण गीचीरोड उपर पुस्तकोनी दुकाने
पा. झवेरजाइ उमेदजाइ ठेण रीचीगेरु उपर पुस्तकोनी दुकाने
शा. जेठालाल दलसुखजाइ ठेण देवगाने पामे.

अमदावाद.

आ पुस्तक मलवाना ठेकाणां.

- शा. जोगीलाल ताराचंद ठेण दाजापटेलनी पोलमां लांबिसर.
शा. बालाजाइ श्रीकमलाल ठेण रीचीरोड उपर पुस्तकोनी डुकाने
पा. झवेरजाइ उमेदजाइ ठेण रीचीरोड उपर पुस्तकोनी डुकाने
शा. जेगलाल दलसुखजाइ ठेण देवशाने पाने.

अमदावाद.

आ पुस्तक मलवाना ठेकाणां.

- शा. जोगीलाल ताराचंद ठे० दाजापटेलनी पोलमां लांबेसर.
शा. वालाजाइ श्रीकमलाल ठे० रीचीरोड उपर पुस्तकोनी डुकाने
पा. झवेरजाइ उमेदजाइ ठे० रीचीरोड उपर पुस्तकोनी डुकाने
शा. जेगलाल दलसुखजाइ ठे० देवशाने पामे.

अमदावाद.

આ પુસ્તક મલવાના ઠેકાણાં.

- શા. જોગીલાલ તારાચંદ ઠેં ઠાજાપટેલની પોલમાં લાંબેસર.
શા. વાલાજાઠ શ્રીકમલાલ ઠેં રીચીગેડ ઉપર પુસ્તકોની ડુકાને
વા. શવેરજાઠ ઉમેદજાઠ ઠેં રીચીગેડ ઉપર પુસ્તકોની ડુકાને
શા. જેઠાલાલ વલસુવજાઠ ઠેં વેચઠાને પાદે.

અમદાવાદ.

आ पुस्तक मलवाना ठेकाणां.

- शा. जोगीलाल ताराचंद ठे० हाजापटेलनी पोलमां लांबेसर.
शा. वालाजाइ श्रीकमलाल ठे० रीचीरोड उपर पुस्तकोनी डुकाने
पा. झवेरजाइ नमेदजाइ ठे० रीचीरोड उपर पुस्तकोनी डुकाने
शा. जेठालाल दलसुखजाइ ठे० देवशाने पामे.

अमदावाद.

આ પુસ્તક મલવાના ઠેકાણાં.

- શા. જોગીલાલ તારાચંદ્ર ઠેઠ ઢાજાપટેલની પોલમાં લાંબેસર.
શા. વાલાજાઈ ત્રીકમલાલ ઠેઠ રીચીરોડ ઉપર પુસ્તકોની ડુકાને
પા. શંવેરજાઈ ઉમેદજાઈ ઠેઠ રીચીરોડ ઉપર પુસ્તકોની ડુકાને
શા. જેઠાલાલ દલસુખજાઈ ઠેઠ દેવશાને પાને.

અમદાવાદ.

